गए हैं । उत्तर प्रामाणिक हैं । मूल्य २।)

हिन्दी भवन, लाहौर

प्रभाकर परीक्षा की सहायक पुस्तकें

प्रबंध-प्रभाकर

(दूसरा संस्करण)

[ले०—श्री गुलाबराय एम० ए०]

इस पुस्तक में १६२४ से लेकर अब तक के प्रभाकर परीक्षा में आये हुए निबन्ध दिए गये हैं। साथ ही कुछ अन्य साहित्यिक लेख भी जोड़ दिये गये हैं। निबन्धों की भाषा, सरल होने पर भी परिष्कृत है, जो कि विद्यार्थियों के लिए आदर्श कही जा सकती है। मू० १॥)

मुद्राराक्षस नाटक सटिप्पण

(सं०—श्री धर्मचन्द्र विशारद)

(तीसरा संस्करण)

विद्यार्थी-उपयोगी सुसंपादित संस्करण। इसमें सब पद्यों के अर्थ, नाटक के पात्रों का परिचय, नाटक की आलोचना, नाटक-सम्बन्धी परिभाषाएँ, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की विस्तृत जीवनी तथा उनकी अन्य रचनाओं का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। विद्यार्थियों के लिए यह सर्वोत्तम संस्करण है। इसके लेने पर अन्य किसी सहायक पुस्तक की आवश्यकता नहीं रहती। पुस्तक लेते समय श्री धर्मचन्द्र विशारद का नाम देख लें। मूल्य केवल १)

हिन्दी भवन, लाहौर

विशेषतः विद्यार्थियों के लिए

प्राचीन गद्य

सम्पादक—

सन्त गोकुलचन्द्र

हिन्दी भवन

लाहौर

दूसरा संस्करण जून १९३९ मूल्य १।।)

प्रकाशक—

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

विश्व साहित्य ग्रन्थमाला

हस्पताल रोड, लाहौर

मुद्रक—

लाला प्रकाशचंद

विरजानन्द प्रेस

मोहनलाल रोड, लाहौर

विषय-सूची

दो चार प्रारम्भिक शब्द

हिन्दी-उत्पत्ति का इतिहास

संसार परिवर्तनशील है। उसकी प्रत्येक वस्तु अनादि काल से अदल बदल रही है। किसी वस्तु की सत्ता के इतिहास सम्बन्धी खोज करने से पता लगेगा कि जो रूप उसका वर्तमान में है पहले उसका वह रूप न था, तथा इस रूप में आने से पूर्व उसे अनेकानेक रूप बदलने पड़े होंगे।

मनुष्य की आकृति को ही लीजिए। डार्विन के सिद्धान्त के अनुसार उसमें कितना परिवर्तन होकर यह आकृति बनी है! कहाँ बन्दर और कहाँ मनुष्य! कितना अन्तर है!

जो सिद्धान्त अन्यान्य पदार्थों में लागू है, भाषा में भी वही लागू है। उसका इतिहास जटिल तो है सही, परन्तु चित्ताकर्षक और मनोरंजक भी है। जो भाषा जितनी प्राचीन होती है उसमें उलट फेर भी अधिक होते हैं।

भारतवर्ष की सभ्यता प्राचीनतम है, अतः इसकी भाषायें भी प्राचीनतम हैं। इसी कारण इन्हें विकास-सिद्धान्तानुसार कई

परिस्थितियों में से गुज़रते और परिवर्तन प्राप्त करते यह स्वरूप मिला होगा।

यह स्मरण रहे कि अन्यान्य देश और जातियों के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिवर्तनों का प्रभाव देश और जातियों पर पड़ने के साथ साथ उनकी भाषाओं पर भी पड़ता है। भिन्न २ जातियों से संसर्ग होने पर उनको सभ्यता और आचार विचारों में विनिमय, संघर्ष और आदान प्रदान तो होते ही हैं, साथ ही उनकी भाषाओं के मिश्रण से नये नये शब्द बन जाते हैं और कभी कभी भाषा में भी नयापन आ जाता है।

इस लिए भारत की भाषाओं के प्राचीनतम और वर्तमान रूप में यदि इतना महान् अन्तर हो गया हो तो इसमें कोई विस्मय की बात नहीं। भाषाओं की परिवर्तन-गति की समता एक ऐसी नदी से की जा सकती है जो हिमालय के शुद्ध स्रोत से निकल सहस्रों कोसों का मार्ग पार कर समुद्र में गिरी हो। स्रोत से निकलते ही उसका जो शुद्ध रूप होता है उसकी तुलना उसके उस कलुषित रूप से जो उसका समुद्रपतन के समय होता है—हो सकती है? उन दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर होता है। यही दशा भाषाओं की होती है। उत्पत्ति के समय उनका जो रूप होता है, वह हज़ारों वर्षों के बाद नहीं रहता।

उदाहरणार्थ—संस्कृत को ही लीजिये। संसार की प्राचीनतम पुस्तक वेद हैं। उनकी भाषा और अर्वाचीन काल की संस्कृत

भाषा में कितना भेद है ! बीच बीच में ब्राह्मग्रन्थों, उपनिषदों, पुराण और आख्यायिकाग्रन्थों की भाषाओं से संस्कृत का विकास किस गति से हुआ है, इसका ज्ञान हो सकता है।

पीछे कहा जा चुका है कि अन्य देश और जातियों के संमिश्रण से नयी भाषाएँ उत्पन्न हो जाती हैं। संस्कृत के साथ भी ऐसे ही हुआ। वैदिक भाषा से संस्कृत उत्पन्न हुई और अनार्यों के संपर्क से प्राकृत भाषाएँ बनीं।

यह तो सर्वसम्मत बात है कि प्रतिदिन के व्यवहार और बोल चाल की भाषा में जितना शीघ्र परिवर्तन होता है उतना शीघ्र साहित्य की भाषा में नहीं होता। जब उपरोक्त प्राकृत भाषा भी संस्कृत की तरह साहित्य में प्रयुक्त होने लगी तो और शिष्टसमुदाय के पठन-पाठन के ग्रन्थों की भाषा बन गई, तब बोलचाल की भाषा का प्रवाह स्वतन्त्र रूप से अपनी चाल चलता रहा। उसमें काल-क्रम से कई परिवर्तन भी होते रहे। इस भाषा को 'अपभ्रंश' संज्ञा दी गई। हिन्दी इसी 'अपभ्रंश' की पुत्री मानी गई है।

भिन्न भिन्न कालों में विकासवश हिन्दी में जो भेद होते रहे हैं तदनुसार इसके मुख्य चार प्रकार हैं—राजस्थानी, अवधी, व्रजभाषा और खड़ीबोली। एक बुन्देलखंडी भाषा भी मानी गई है, पर वह व्रजभाषा के ही अन्तर्गत है।

१–राजस्थानी की चार बोलियाँ हैं—मारवाड़ी, जयपुरी, मेवाड़ी और मालवी।

मारवाड़ी—मारवाड़ी का पुराना साहित्य डिंगल नाम से प्रसिद्ध है। दादूदयाल और उनके शिष्यों की वाणी जयपुरी भाषा में है।

मेवाती और मालवी में कोई साहित्य नहीं—कम से कम अब तक मिला नहीं। मेवाती व्रजभाषा से और मालवी बुन्देलखंडी से बहुत मिलती जुलती है।

२—अवधी—अवधी भाषा का प्रचार अवध, आगरा, बुन्देलखंड, छोटा नागपुर और मध्य प्रदेश के कई भागों में है। अवधी की तीन बोलियाँ मानी गई हैं—अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी।

अवधी और बघेली में कोई विशेष अन्तर नहीं, परन्तु छत्तीसगढ़ी पर मराठी और उड़िया का प्रभाव पड़ने से यह अवधी से कुछ भिन्न हो गई है।

३—व्रजभाषा—व्रजभाषा शौरसेनी प्राकृत और शौरसेनी अपभ्रंश से निकली है। इसका मुख्य केन्द्र व्रजमण्डल है, किन्तु इसका प्रचार दक्षिण की ओर आगरा, भरतपुर, धौलपुर और करौली में तथा ग्वालियर के पश्चिमी भाग और जयपुर के पूर्वी भाग में है और उत्तर की ओर गुड़गाँव ज़िले के पूर्वी भाग तक बोली जाती है।

इसका केन्द्र स्थान मथुरा है और वहीं की भाषा शुद्ध व्रजभाषा है। इस स्थान से वह जिधर जिधर चली है वहीं वहीं के संसर्ग से इसके रूप में कुछ कुछ विकार होते गये हैं।

४—खड़ी बोली—खड़ी बोली का इतिहास बहुत जटिल और रोचक है। यह भाषा मेरठ के चारों ओर बोली जाती थी, पर भारत में मुसलमानों के आक्रमण और राज्य स्थापन के कारण उन्होंने दिल्ली की भाषा को, जो उस समय उनके शासन का केन्द्र थी, अपनाया। पहले पहल अरब, फारस और तुर्किस्तान से आये हुये सिपाहियों को परस्पर भाव-विनिमय में बड़ी कठिनता होती थी। न वे यहाँ की 'हिन्दवी' को समझते थे और न भारतीय उनकी भाषाओं को। परिणाम वही हुआ जो साधारणतः हुआ करता है। 'दोनों' ने एक दूसरे की भाषाओं में कुछ कुछ शब्द सीख कर किसी प्रकार आदान-प्रदान का रास्ता निकाला। यों मुसलमानों की उर्दू (छावनी) में पहले पहल एक खिचड़ी पकी, जिसमें दाल चावल सब खड़ी बोली के थे, सिर्फ नमक आगन्तुकों ने मिलाया। आरम्भ में तो वह निरी बाज़ारू बोली थी, पर धीरे-धीरे व्यवहार बढ़ने पर और मुसलमानों को यहाँ की भाषा के ढाँचे का ठीक ज्ञान हो जाने पर इसका रूप कुछ कुछ स्थिर हो चला।……मुसलमानों ने अपनी संस्कृति के प्रचार का सबसे बड़ा साधन मान कर इस भाषा को खूब उन्नत किया और जहाँ फैलते गये वे इस भाषा को साथ लेते गये। उन्होंने इसमें केवल फारसी तथा अरबी के शब्दों की ही उनके शुद्ध रूप में अधिकता नहीं कर दी, बल्कि उसके व्याकरण पर भी फारसी, अरबी व्याकरण का रंग चढ़ाना आरम्भ कर दिया। इस अवस्था में

इसके दो रूप हो गए, एक तो हिन्दी ही कहलाता रहा, और दूसरा उर्दू नाम से प्रसिद्ध हुआ। दोनों के प्रचलित शब्दों को ग्रहण करने पर व्याकरण का सङ्गठन हिन्दी के ही अनुसार रख कर, अँगरेजों ने इसका तीसरा रूप 'हिन्दुस्तानी' बनाया। अतएव इस समय इस खड़ी बोली के तीन वर्तमान रूप हैं—(१) शुद्ध हिन्दी—जो हिन्दुओं की साहित्यिक भाषा है और जिसका प्रचार हिन्दुओं में है। (२) उर्दू—जिसका प्रचार विशेषकर मुसलमानों में है और जो उनके साहित्य की और शिष्ट मुसलमानों तथा कुछ हिन्दुओं की घर के बाहर की बोल चाल की भाषा है। (३) हिन्दुस्तानी—जिसमें साधारणतः हिन्दी, उर्दू दोनों के शब्द प्रयुक्त होते हैं और जिसका सब लोग बोलचाल में व्यवहार करते हैं। (हिन्दू और मुसलमानों की सार्वदेशिक भाषा के सम्बन्ध में अड़चन को मिटाने के लिए हिन्दुस्तानी को ही उस पद पर प्रतिष्ठित करने को आजकल जोर दिया जा रहा है।)

हिन्दी-साहित्य-विकास

साहित्य ही किसी देश की जनता की मनोवृत्ति का प्रतिबिंब होता है। अतः मनोवृत्ति में समय समय पर परिवर्तन आने पर साहित्य में भी वैसा परिवर्तन आता रहता है। इसलिए साहित्य की प्रगति का पूरा ज्ञान नहीं हो सकता जब तक जनता की मनोप्रगति का पूर्ण ज्ञान न हो। हर समय में लोगों में किसी न किसी विचार-प्रवाह का प्राबल्य रहता है, अतः उस समय उनकी मनो-

वृत्ति एकतो-मुख होकर उधर ही चलती है। इन सब बातों को विचार कर विद्वानों ने हिन्दी भाषा के समय को इन चार भागों में बाँटा है--

आदि काल, (वीरगाथाकाल, संवत् १०५०—१३७५)

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल, संवत् १३७५—१७००)

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल, संवत् १७००—१९००)

आधुनिक काल (गद्यकाल, संवत् १९००—१९८४)

यह समय-विभाग रचनाओं की विशेष प्रवृत्ति के अनुसार किया गया है, इसका अर्थ यह न समझना चाहिये कि किसी विशेष काल में दूसरे प्रकार की रचना होती ही न थी। वीरगाथा-काल में भी कई भक्ति के कविताग्रन्थ मिलेंगे। इसी तरह भक्ति-काल या दूसरे कालों में भी वीरगाथा पर अच्छे-अच्छे कविताग्रन्थ मिलेंगे। आशय यह है कि उस समय उस प्रकार की रचनाओं का बाहुल्य होता था।

यहाँ पर एक बात और बताना आवश्यक है। प्राचीनतम समय से भी जनता की साहित्यिक भाषा प्रायः पद्यमयी ही रही है। हमारे प्राचीनतम ग्रन्थ वेद पद्य में हैं। इनके अतिरिक्त अठारहों पुराण, रामायण, महाभारत, स्मृतियाँ आदि सभी आर्षग्रन्थ पद्य में हैं। हिन्दी के प्राचीनतम ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' आदि पद्य में ही हैं।

ईसा के बाद लगभग एक हज़ार वर्ष तक कोई गद्यग्रन्थ नहीं उपलब्ध होता।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि लोगों की बोलचाल की भाषा भी पद्यमयी थी। वे लोग भी बोलचाल में गद्य का प्रयोग वैसे ही करते थे जैसे हम करते हैं।

आदि काल (वीरगाथाकाल)

पीछे कहा गया है कि अपभ्रंश से हिन्दी का जन्म हुआ। अपभ्रंश अवस्था से हिन्दी के अभ्युदय का काल संवत् १०५० के लगभग माना गया है।

वह समय ऐसा था कि कवियों को राजाश्रित हो कर अपने आश्रयदाता की वीरताओं का वर्णन करना पड़ता था। बड़ी बड़ी सभाओं में उनकी वीरगाथाएँ पढ़ी जाती थीं। उन्हीं पर कवियों को बड़े-बड़े पारितोषिक वितरण होते थे।

ऐसा भी मालूम हुआ है कि राजकवि युद्धक्षेत्र में जाकर स्वयं तलवार चलाते थे और सैनिकों को वीरकविताएँ सुना कर उत्तेजित करते थे।

इस काल के कुछ मुख्य कवि ये हैं—खुमानरासो, बीरबल-रासो, चन्द बरदाई आदि।

पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल)

भारत में जब मुसलमान राज्य प्रतिष्ठित हो गया तो हिन्दुओं के हृदयों में से आत्म-गौरव, अभिमान और देशीयता के भाव उठ गये। इसलिए वीरगीतों के गाने की न उन्हें स्वतन्त्रता थी और न उत्साह था। किन्तु कवि के हृदयोद्गार रुक नहीं सकते।

उन्होंने निकलने का दूसरा मार्ग खोज लिया। उन्होंने भगवान् की ओर मुख किया और उसे ही अपनी विपदाओं का निवारक मान उसकी भक्ति में सान्त्वना प्राप्त करने लगे और वे कर ही क्या सकते थे! हिन्दी के प्रसिद्ध प्रसिद्ध कवि इसी काल में हुए हैं। उनमें कुछ मुख्य ये हैं—कबीर, गुरु नानक, दादूदयाल, मलिक मुहम्मद जायसी, गोस्वामी तुलसीदास, नाभादास, सूरदास, रसखान, रहीम आदि।

उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल)

इस समय हिन्दीकाव्य पूर्ण प्रौढ़ हो चुका था। उस समय से पूर्व प्रचलित भक्तिकाव्य-गंगा का प्रवाह अब भी लाखों करोड़ों नर-नारियों की ज्ञान-पिपासा को शान्त कर रहा है। तुलसीदास और सूरदास अब भी काव्यनभोमण्डल पर शशी और सूर की तरह देदीप्यमान हैं।

हिन्दी की ऐसी प्रौढ़ अवस्था में इसकी स्वतन्त्र चालों को रोकने के लिए इसे रस, अलंकार तथा छन्द आदि की शृङ्खलाओं में बाँधने की आवश्यकता पड़ी। इसके पूर्व भी सं० १५९८ में कवि कृपाराम रस का कुछ निरूपण कर चुके थे। इसके पश्चात् १६१५ में रामभूषण और अलङ्कार-चन्द्रिका नाम की दो पुस्तकें निकलीं। उनमें अलङ्कारों का निरूपण था। इस प्रकार कतिपय और ग्रन्थ भी इन्हीं विषयों पर निकलते रहे, किन्तु रीतिग्रन्थों का अखण्डित और अविरल प्रवाह

इसी काल में चला। इस काल के कुछ मुख्य मुख्य कवि ये हैं—

चिन्तामणि त्रिपाठी, बिहारीलाल, मतिराम, भूषण, देव, श्रीपति, भिखारीदास, पद्माकर, वृन्द।

आधुनिक काल (गद्यकाल)

रीतिकाल के पूर्व भाग में भारत में वस्तुतः मुसलमानों का ही आधिपत्य था, पर उत्तरकाल में ब्रिटिश राज्य की प्रतिष्ठा हो रही थी। रीतिकाल की समाप्ति पर तो भारत में अँगरेज़ी राज्य पूर्णतया स्थापित हो चुका था।

अपने राज्य की नींव को दृढ़ बनाने और उसे चलाने के लिए अँगरेज़ों को यहाँ की शिक्षाप्रणाली की ओर भी ध्यान देना पड़ा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारतीयों को अँगरेज़ी में शिक्षा देने का निश्चय किया। कलकत्ता में अँगरेज़ी पढ़ाने के लिए संस्थाएँ खुलीं। वहीं पर लोग अँगरेज़ी पढ़ पढ़ कर सरकारी नौकरियाँ पाने लगे। उस समय अँगरेज़ी की ही तूती बोलती थी। देशी भाषाओं की कोई सुनता न था। कुछ थोड़ा बहुत प्रचार था तो संस्कृत और अरबी का था।

पर अँगरेज़ी भाषा जनसाधारण की भाषा न थी। जनता के साथ संपर्क और व्यवहार के लिए उन्हें देशी भाषा की आवश्यकता पड़ी। इस लिए स्कूलों में देशी भाषा (हिन्दुस्तानी आदि) को पढ़ाने की व्यवस्था की गई।

अँगरेज़ों से पहले यहाँ के शासक मुसलमान थे। इसलिए उन्हीं की प्रचलित भाषा उर्दू को दफ्तरों और अदालतों में स्थान प्राप्त हुआ। फिर भी एक भयंकर अड़चन आ पड़ी। उर्दू न जनसाधारण की भाषा थी और न साहित्य की। अतः जनता को जिस प्रकार उर्दू की आवश्यकता थी उसी प्रकार अपनी भाषा की भी थी। एक कठिनता और थी। यहाँ की साहित्य-भाषा व्रजभाषा थी, पर वह व्रजभूमि के बाहर बोली न जाती थी। इसलिए परस्पर व्यवहार करने के लिए खड़ी बोली का आश्रय लेना पड़ा।

उस समय दशा यह थी कि साहित्य तो था व्रजभाषा में, पर बोल-चाल की भाषा खड़ी बोली थी। तब तक साहित्य केवल पद्य में ही था। अतः गद्य का साहित्य में कोई स्थान न था। इसका यह आशय नहीं कि गद्य का साहित्य में नितान्त अभाव था। अकबर के समय में गंग कवि ने "चन्द छन्द बरनन की महिमा" नामक पुस्तक खड़ी बोली में इस प्रकार के गद्य में लिखी थी—

"सिद्धि श्री १०८ श्री श्री पातसाहि जी श्री दलपति जी अकबर साह जी आम खास में तख़्त पर विराजमान हो रहे। और आम खास भरने लगा है जिसमें तमाम उमराव आय आय कुर्निश बजाय जुहार करके अपनी अपनी बैठक पर बैठजाया करे अपनी अपनी मिसल से।"

इसके भी पहले—

१४०७ में गोरखनाथ जी ने 'सिष्ट प्रमाण' नाम का ग्रन्थ गद्य में रचा। इसमें से कुछ अंश दिया जाता है—

"सो वह पुरुष संपूर्ण तीर्थस्नान करि चुकौ अरु संपूर्ण पृथ्वी ब्राह्मननि कौ दै चुकौ अरु सहस्र जज्ञ करि चुकौ अरु देवता सर्व पूजि चुकौ अरु पितरनि कौ संतुष्ट करि चुकौ स्वर्गलोक प्राप्त करि चुकौ जा मनुष्य को मन छनमात्र ब्रह्म के बिचार बैठो।"

हिन्दी में यह प्रथम गद्यग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। इसलिए गोरखनाथ जी को हिन्दी का प्रथम गद्यलेखक माना गया है। गोरखनाथ जी के शिष्यों के लिखे कई अन्य ग्रन्थ—गोरखनाथ की बानी, गोरखनाथ के पद, ज्ञानसिद्धान्त जोग—आदि मिलते हैं। जिनका निर्माणकाल पन्द्रहवीं शताब्दी का आरम्भ है। उनमें से कुछ अंश नीचे उद्धृत हैं—

"श्री गुरु परमानन्द तिनको दण्डवत है। हैं कैसे परमानन्द, आनन्द स्वरूप है सरीर जिन्हि को। तिन्हि के नित्य गाएतें सरीर चेतन्नि अरु आनन्दमय होतु है। मैं जु हौं गोरिष अरु मछन्दर नाथ को दण्डवत करत हौं। हैं कैसे वे मछन्दरनाथ, आत्म जोति निश्चल है अन्तहकरन जिनके अरु मूलद्वार तें छह चक्र जिनि नीकी तरह जानैं।"

इसके पश्चात् श्री वल्लभाचार्य के पुत्र गोस्वामी विठ्ठलदास

का 'शृङ्गार रस मण्डल' नाम का गद्यग्रन्थ मिला है। इनके गद्य का नमूना यह है—

"प्रथम की सखी कहतु है। श्री गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि तो इनको प्रेमामृत में डूबिकै इनके मन्दहास्य ने जीते हैं। अमृतसमूह ताकरि निकुंज विषै शृंगाररस श्रेष्ठ रसना कीनो सो पूर्ण होत भई।"

इन्हीं विट्ठलदास के पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ के तीन ग्रन्थ संवत् १६२५ और १६५० के बीच के बने मिले हैं। उनके नाम हैं—चौरासी वैष्णवों की वार्ता, दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता और वनयात्रा। उदाहरण के लिये नीचे लिखा अंश देखिये—

"सो श्री नन्दगाम में रहतो हतो। संखण्डन ब्राह्मण शास्त्र पढ्यो हतो। सो जितने पृथ्वी पर मत हैं सबको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो याही तें सब लोगन ने वाको नाम खण्डन पार्‌यो हतो। सो एक दिन श्री महाराज प्रभुजी के सेवक वैष्णव की मण्डली में आयो। सो खण्डन करन लागयो। वैष्णवन ने कही—जो तेरो शास्त्रार्थ करनो होवै तो पण्डितन के पास जा, हमारी मण्डली में तेरे आयबो को काम नहीं। इहाँ खण्डन मण्डन नाहीं। भगवद्वार्ता को काम है। भगवद्‌यश सुननो होवै तो इहाँ आवो।"

इन्होंने अपनी भाषा में व्रजभाषा के अतिरिक्त अरबी, फारसी, मारवाड़ी, गुजराती, पञ्जाबी आदि का भी निसङ्कोच प्रयोग किया है।

संवत् १६२७ में गंग ने 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक पुस्तक लिखी। इसका कुछ उद्धरण ऊपर आ चुका है।

इसके अनन्तर 'भक्तमाल' के प्रणेता नाभादास जी से रचित 'अष्टयाम' मिला है। उसकी भाषा इस प्रकार की है—

"तब श्री महाराज कुमार प्रथम श्री वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भए। फिरि अपर वृद्ध समाज तिनको प्रनाम करते भए। फिर श्रीराजाधिराज जू को जोहार करिवै श्री महेंद्रनाथ जी के निकट बैठत भए।"

इसके बाद १६८० में लिखी हुई जटमल कवि की 'गोरा बादल की कथा' गद्य में मिलती है। उसका कुछ अंश उद्धृत है—

"गोरे की आवरत आवेसा वचन सुनकर आपने पावन्द की पगड़ी हाथ में लेकर वाहा सती हुई सो सिवपुर में जाके वाहा दोनों मेल हुए। गोराबादल की कथा गुरू के बस सरस्वती कू महरबानगी से पूरन भई तिस वास्ते गुरू कूँ व सरस्वती कूँ नमस्कार करता हूँ।"

सं० १६७५ में वा इसके लगभग वैकुंठमणि ने 'वैशाख महात्म्य' और 'अगहन महात्म्य' नाम की पुस्तकें लिखीं। उनकी भाषा इस प्रकार की है—

"एक समय नारद जू ब्रह्मा की सभा तै उठिकै सुमेर पर्वत को गए। पुनि गंगा जी को प्रवाह देखि पृथ्वी विषै आए तहां सब तीरथन को दरसन करत भए।"

इन पुस्तकों के अतिरिक्त कई संस्कृत और हिन्दीग्रन्थों की टीकाएँ हिन्दी भाषा में लिखी गईं। उनकी भाषा न परिष्कृत थी और न व्यवस्थित। उनमें अर्थों और भावों को अच्छी तरह प्रकाशित करने की शक्ति न थी। 'शृंगारशतक' के एक श्लोक की भाषा-टीका देखिये।

"अंगना जु है स्त्रीसु। प्रेम के अति आवेश करि। जु कार्य करना चाहति है ता कार्य विषै ब्रह्मा ऊ। प्रत्यूहं आधातुं। अन्तराउ कीबे कहँ। कातर। काइस है। काइस कहा वै असमर्थ। जु कछु स्त्री कर्यो चाहैं सु अवश्य करहिं। ताको अन्तराउ ब्रह्म पहँ न करयो जाइ और की कितीक बात।"

यह टीका है इस श्लोक की—

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादालभन्ते यदङ्गनाः।
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः॥

अब पाठक स्वयं बतावें कि इस टीका के आधार पर इस पद्य का कुछ अर्थ उनकी समझ में आया ?

रामचन्द्रिका का एक दोहा है—

राघव शर लाघव गति छत्र मुकुट यों हयो।
हंससबल अंसु सहित मानहु उडिकै गयो॥

इसकी टीका देखिए—

"सबल कहैं अनेक रंग मिश्रित है, अंसु कहैं किरण जाके ऐसे जे सूर्य हैं तिन सहित मानों कलिंद गिरि शृंगतें हंस कहे हंस

समूह उड़ गयो है। यहां जाति विषै एक वचन है हंसन के सदृश श्वेत छत्र है और सूर्यन के सदृश अनेक रङ्ग जटित मुकुट है।"

इस प्रकार की गद्यभापा टीकाओं में मिलतो है।

खड़ी बोली का वास्तविक आरंभकाल सम्वत् १८६० के लगभग है। उस गद्य को आरंभ करने वाले ये चार सज्जन थे—मुंशी सदासुख लाल, लल्लूलाल, इंशाअल्लाखाँ और सदल मिश्र।

मुंशी सदासुख लाल—इनका उपनाम नियाज़ था। ये दिल्ली के रहने वाले थे। इनका जन्म सं० १८०३ ई० हुआ था। पहले ये कंपनी के किसी दफ्तर में नौकर थे और १८१० के लगभग किसी अच्छे पद पर पहुँच गये थे। ये अच्छे कवि थे। उर्दू तथा फारसी में उन्होंने कई कविताग्रन्थ लिखे।

जब इनकी आयु ६५ वर्ष की थी तो इन्होंने नौकरी छोड़कर प्रयागवास किया और अपनी शेष आयु वहीं हरिभजन में लगाई। वहीं पर संवत् १८८१ में इनका देहान्त हो गया।

मुंशी जी उर्दू और फारसी के अच्छे लेखक थे। पर श्रीमद्भागवत का स्वतन्त्र हिन्दी-अनुवाद लिखकर इन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की है। यदि वास्तव में देखा जाय तो हिन्दी के आदि गद्य लेखक ये ही हैं। लल्लूलाल और सदलमिश्र की तरह इन्होंने यह पुस्तक न किसी लोभ लालच से और न किसी अधिकारी की प्रेरणा से लिखी है। वे भगवद्भक्त थे और इस पुस्तक के निर्माण से इन्होंने अपनी भक्ति का परिचय दिया है।

इन्होंने सुखसागर में हिन्दुओं की उसी बोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग किया है जो उन दिनों सर्वत्र प्रचलित थी। जो रूप भाषा का उस समय कथावाचकों और संस्कृतपंडितों में प्रचलित था, मुंशी जी ने उसी को ही अपनाया। इस प्रकार की संस्कृत-मिश्रित हिन्दी का प्रयोग करने से उन्होंने भावी संस्कृत-साहित्य में प्रयोत्स्यमान भाषा का पूर्ण रूप दे दिया। उदाहरणार्थ उनकी भाषा का कुछ अंश नीचे दिया जाता है।

"इससे जाना गया कि संस्कार का भी प्रमाण नहीं, आरोपित उपाधि है। जो क्रिया उत्तम हुई तो सौ वर्ष में चांडाल से ब्राह्मण हुए और जो क्रिया भ्रष्ट हुई तो वह तुरंत ही ब्राह्मण से चांडाल होता है। यद्यपि ऐसे विचार से हमें लोग नास्तिक कहेंगे, हमें इस बात का डर नहीं। जो बात सत्य होय उसे कहा चाहिए, कोई बुरा माने कि भला माने। विद्या इस हेतु पढ़ते हैं कि तात्पर्य इस का (जो) सतोवृत्ति है वह प्राप्त हो और उससे निज स्वरूप में लय हूजिए। इस हेतु नहीं पढ़ते हैं कि चतुराई की बातें कहके लोगों को बहकाइए और फुसलाइए और सत्य छिपाइए व्यभिचार कीजिए और सुरापान कीजिए और धन-द्रव्य इक ठौर कीजिए और मनको कि तमोवृत्ति से भर रहा है, निर्मल न कीजिए। तोता है सो नारायण का नाम लेता है, परन्तु उसे ज्ञान तो नहीं है।"

"धन्य कहिए राजा दधीची को कि नारायण की आज्ञा अपने सीस पर चढ़ायी, अपने हाड ऐसे कामी कुटिल अहँकारी को

दे दिये कि उसने उन हाड़ों को वज्र बनाय कर वृत्रासुर से ज्ञानी से युद्ध किया और उसे मारा । जो महाराज की आज्ञा और दधीच के हाड़ वज्र न होता तो ग्यारह जन्म ताँई वृत्रासुर से युद्ध में सरबर और प्रबल न होता और जय पाता ।"

इस प्रकार के उदाहरण एक दो स्थानों पर मिलते हैं, पर श्री सदासुखलाल का सुखसागर उपलभ्य नहीं । इस लिए इन पंक्तियों से ही उनकी गद्यरचनाशैली का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये । (जो 'सुखसागर' नाम की पुस्तकें आजकल मिलती हैं, वे मुं० सदासुखलाल की बनी नहीं हैं, अन्यान्य लेखकों की हैं ।)

सैयद इंशाअल्ला खाँ—इनके पिता हकीम मीर माशा अल्लाखाँ नजाफ़ी जफरी दिल्ली के रहने वाले थे । वे कवि थे और उनका कविता-उपनाम 'मसदर' था । इनके पूर्वज समरकंद निवासी थे और किसी कारण से समरकंद छोड़ काश्मीर में आ बसे थे । किन्तु माशाअल्ला खाँ नवाब जुल्फिकार खाँ के समय में काश्मीर छोड़ दिल्ली चले आये थे । कुछ समय के बाद वे दरबारी हकीम हो गये और वहीं स्थायी तौर पर रहने लगे ।

कुछ समय बाद ये दिल्ली छोड़ मुर्शिदाबाद चले आये और वहीं पर इंशाअल्ला खाँ का जन्म हुआ । रईसपुत्र होने के कारण इनका पालन पोषण उसी ढंग से हुआ जैसे रईसों के पुत्रों का होता है । अपने चारों ओर शान और शौकत के सामान होने पर भी इनका चित्त कभी विद्याभ्यास से विमुख न होता था । ये बड़े

मेधावी युवक थे, अत: थोड़े समय में ही इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त कर ली। स्वभाव से ही ये अति चञ्चल और चुलबुली प्रकृति के थे। कविता की ओर इनकी अधिक प्रवृत्ति थी, इसलिए ये उसी की ओर झुके। फिर क्या था! थोड़े ही समय में ये अच्छे कवि बन गए।

जब बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला मारे गए और मुर्शिदाबाद में गड़बड़ मच गई तो ये मुर्शिदाबाद छोड़ कर दिल्ली चले आए। उस समय दिल्ली सम्राट्, शाह आलम द्वितीय के अधिकार में थी। बादशाह स्वयं भी कवि थे, इस लिए उन्हें इँशाअल्ला खाँ की कविता बहुत पसन्द आई। तब से ये बादशाह के दरबार में रह कर उनके कृपापात्र बने रहे।

दिल्ली में उस समय कई और नामी कवि भी थे। उन्हें इँशा-अल्ला खाँ का बादशाह का कृपापात्र होना बहुत बुरा मालूम हुआ। परिणाम-स्वरूप वे इनसे द्वेष करने लगे और इनकी कविताओं में दोष निकालने लगे।

संवत् १८४५ में गुलाम कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया और शाहे आलम को अंधा कर डाला। वहाँ की परिस्थिति बदलती देख कर इँशाअल्ला खाँ लखनऊ चले आए। वहाँ पर नवाब आसफुद्दौला के दान और गुणग्राहिकता की धूम मच रही थी। इन्होंने भी वहाँ जाकर अपने भाग्य की परीक्षा करनी चाही। वहाँ पर इन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई और धीरे धीरे मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के कृपापात्र बन गए।

कुछ समय बाद इनका भाग्य और चमका। अपने एक मित्र की सहायता से नवाब सआदत अली खाँ से इनका परिचय हो गया। थोड़े ही समय में नवाब उन पर मुग्ध हो गए और वे सदा नवाब के साथ रहने लगे।

सयद इँशाअल्ला हँसोड़ भी बड़े थे। इनका रंग गोरा और शरीर मोटा था। किसी पर्व के दिन एक काश्मीरी ब्राह्मण का स्वाँग बना कर घाट पर जा बैठे और लोगों से दान लेने लगे।

सभी दिन एक से नहीं रहते। सयद साहिब और नवाब में किसी बात पर वैमनस्य हो गया। परिणाम यह हुआ कि नवाब ने इनका वेतन बन्द कर दिया। उन्हीं दिनों इनके एक पुत्र की भी मृत्यु हुई थी। इन दोनों विपत्तियों को सयद साहिब न सह सके और उनका दिमाग़ बिगड़ गया। धीरे धीरे सब ऐश्वर्य विलीन हो गया और रोटी के लिए भी पराधीन हो गए। अन्तिम दिनों में घर के एक कोने में नंगे बदन घुटनों पर सिर रखे बैठे रहते थे। आगे राख का ढेर और टूटा हुआ हुक्का रखा रहता था। अन्त में ऐसा कष्टमय जीवन बिताते उनका सं० १८७५ में देहान्त हो गया।

इनकी उर्दू कविताओं के अनेक संग्रह हैं। सयद इँशाअल्ला खाँ उर्दू के विद्वान तो थे ही, हिन्दी भी उन्हें अच्छी आती थी। हिन्दी-गद्य के चार प्रारंभिक लेखकों में इनका भी स्थान है।

इन्होंने हिन्दी में 'उदैभान-चरित्र या रानी केतकी की कहानी'

लिखी है। इस कहानी के विषय में वे स्वयं लिखते हैं—"एक दिन बैठे बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिन्दी की छुट और किसी बोली की पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल की कली की तरह खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो।......हिन्दवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो।"

संभवतः यह कहानी संवत १८५५ और १८६० के बीच लिखी गई है। उनके कहने के अनुसार इसकी हिन्दी ठेठ है। इसमें न भाखापन (संस्कृत-मिश्रित हिन्दी को भाखा कहते थे) है और न किसी और बोली की पुट है।

आरंभकाल के चारों लेखकों में इंशा की भाषा सब से चटकीली, मटकीली और मुहावरेदार और चलती है। इसका उदाहरण देखिये—

"इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछताओगी और अपना किया पाओगी। मुझ से कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती, पर यह बात मेरे पेट में नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो, तुमने अभी कुछ देखा नहीं।"

इँशा ने कृदन्त क्रियाओं और विशेषणों के साथ भी बहुवचन-सूचक चिह्नों का प्रयोग किया है। जैसे-आतियाँ जातियाँ जो सांसें हैं, 'घर वालियां बहलातियां है, धूमें मचातियां, अँगड़ातियां जँमा-

तियां उंगलातियां नचातियां और दुली पड़तियां थीं। इस पुस्तक में रंडियां शब्द खिलवाड़ स्त्रियों के लिए आगया है। इसका अश्लील अर्थ नहीं।

लल्लूलाल–लल्लूलाल आगरे के रहने वाले एक गुजराती ब्राह्मण थे। इनका जन्म संवत १८२० और मृत्यु संवत् १८८२ में हुई थी। ये संस्कृताभिज्ञ नहीं थे, पर कविता अच्छी कर लेते थे। इनकी कविताओं के नमूने इनके रचे 'प्रेमसागर' में यत्र तत्र मिलते हैं। ये पं० सदल मिश्र के साथ ही फोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में अध्यापनकार्य के लिए नियुक्त थे। वहीं पर अपने अध्यक्ष जान गिलक्राइस्ट के आदेश से इन्होंने भागवत के दशमस्कंध का हिन्दी में अनुवाद किया। उस पुस्तक का नाम 'प्रेमसागर' रक्खा। इँशा के समान केवल ठेठ हिन्दी ही लिखने का प्रण तो इन्होंने नहीं किया था, पर अपनी पुस्तक में इन्होंने किसी विदेशी शब्द को भूलकर भी नहीं आने दिया।

मुंशी सदासुखलाल और इनकी भाषा में बहुत भेद है। मुंशी जी की भाषा साफ सुथरी खड़ी बोली है। पर लल्लूलाल जी की भाषा में व्रजभाषा की काफी पुट है। सम्मुख जाय, सिर नाय, कीजै, निरख, सोई-आदि अनेकों शब्द जो इन्होंने प्रयुक्त किए हैं, व्रजभाषा में प्रयुक्त होते हैं। इनका गद्य अकबर के समय के गंग-कवि के गद्य से मिलता है, यद्यपि गंग ने फारसी तथा अरबी

शब्दों का कहीं कहीं प्रयोग किया है, पर लल्लूलाल ने उनसे बचने का यत्न किया है। इनके वाक्य अनुप्रासान्त हैं।

उदाहरणार्थ नीचे के वाक्य देखिये—

लगे देवता जय जयकार कर फूल [वर्षाने,] विद्याधर, गन्धर्व, किन्नर हरिगुण [गाने]।......हरि की स्तुति कर बिदा [किया] और वृकासुर को मोक्ष [दिया]।...... इस प्रसंग को जो [सुनावेगा] सो..........परमपद [पावेगा]।

इस प्रकार के वाक्यों की प्रेमसागर में भरमार है।

लल्लूलाल ने हिन्दी में ही गद्य पुस्तक नहीं लिखी, इन्होंने उर्दू में भी कई पुस्तकें लिखी हैं। इनकी सिंहासन बत्तीसी, वैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक आदि कतिपय पुस्तकें उर्दू में हैं और राजनीति नाम का हितोपदेश की कहानियों का अनुवाद व्रजभाषा में है।

इन्होंने अपना प्रेस—संस्कृतप्रेस कलकत्ते में खोला। जब ये सं० १८८१ में कालेज से पेंशन लेकर आगरा में आये तो अपना प्रेस भी साथ लेते आये। पर प्रेस को अधिक समय तक चला न सके, सं० १८८२ में इनका देहान्त हो गया।

पंडित सदल मिश्र—ये विहारनिवासी और लल्लूलाल जी के समकालीन थे। जिस समय लल्लूलाल जो कलकत्ता कालेज में काम करते थे, उस समय ये भी वहीं अध्यापक थे। इन्होंने भी लल्लूलाल जी की तरह खड़ी बोली में गिलक्राइस्ट साहिब के कहने

से नासिकेतोपाख्यान का अनुवाद किया था। पर दोनों की भाषा में बहुत भेद है। लल्लूलाल के समान इनकी भाषा में व्रजभाषा के शब्दों की भरमार नहीं है। इन्होंने व्यवहारोपयोगी भाषा लिखने का प्रयास किया है और खड़ी बोली का व्यवहार भी यथाशक्ति किया है, पर इनकी भाषा साफसुथरी खड़ी बोली नहीं। इसमें कहीं कहीं पर व्रजभाषा के शब्द और स्थान स्थान पर पूरबी बोली के शब्द घुस आये हैं। चहुँ दिस, सुनि-आदि शब्द व्रजभाषा के हैं और इहाँ, मतारी, जौन-आदि पूरबी भाषा के हैं।

हिन्दी गद्य की प्रतिष्ठा करने वाले इन चार सज्जनों में से आधुनिक हिन्दी गद्य का आभास मुन्शी सदासुखलाल और पं० सदल मिश्र की भाषा में मिलता है। व्यवहारोपयोगी भाषा भी इन्हीं की है। सयद इँशाअल्लाखाँ तथा लल्लूलाल जी की भाषा का प्रयोग उनके सिवा न किसी ने आज तक किया है। न और आगे को करने की संभावना है। लल्लूलाल जी की भाषा कथा-वाचकों के लिए अत्युपयुक्त है। इसी कारण प्रेमसागर का प्रचार अब भी हो रहा है।

इन चारों में मुन्शी सदा सुखलाल ने गद्य लिखने के लिए अपनी कलम पहले उठाई थी, इसलिए उन्हीं को आधुनिक गद्य का प्रधान प्रतिष्ठापक मानना चाहिए।

संवत् १८६० के लगभग हिन्दी की प्रतिष्ठा तो हो गई थी, परन्तु उसका आगे का प्रसार बन्द सा हो गया। उसके लगभग

पचास वर्ष बाद राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह के समय में इसकी रुकी हुई गति फिर आगे को बढ़ी। बीच के पचास वर्ष हिन्दी के प्रचार की दृष्टि से बिलकुल शून्य ही समझने चाहिएँ। कारण यह था कि इसी समय में लार्ड मेकाले ने भारतीय शिक्षा की नई योजना तैयार की थी। उसमें अंग्रेज़ी को बहुत व्यापक स्थान दिया गया था। परिणाम यह हुआ कि भारतीय भाषाओं की उन्नति में रुकावट होने लगी।

मेकाले की नई योजना के अनुसार शिक्षणालयों में हिन्दी का स्थान न रहा, पर एक और प्रकार से इसमें कुछ उन्नति हुई।

अंग्रेज़ी शासन के साथ ही अंग्रेज़ों का धर्म (ईसाई धर्म) भी भारत में घुसने लगा। ईसाई लोग उसके प्रचार में व्यग्रता दिखाने लगे। उन्होंने अपने धर्म-ग्रन्थ बाइबल का अनुवाद हिन्दी में करवाया, क्योंकि बिना इसके काम न चल सकता था। उन दिनों सिरामपुर ईसाइयों का मुख्य अड्डा था। यहीं पर पाद्री केरे ने स्वयं बाइबल का अनुवाद हिन्दी में किया। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य पुस्तकों का अनुवाद भी हिन्दी में हुआ। इनके अनुवाद की भाषा सदासुखलाल और लल्लूलाल की विशुद्ध हिन्दी थी, उसमें उर्दू या फारसी अरबी का सम्मिश्रण न था, नमूना देखिए—

"यीशु ने उसको उत्तर दिया कि अब ऐसा होने दे क्योंकि इसी रीति से सब धर्म को पूरा करना चाहिए। यीशु बपतिस्मा लेय तुरन्त जल के ऊपर आया और देखो उसके लिये स्वर्ग खुल

गया और उसने ईश्वर की आत्मा को कपोत की नाईं उतरते और अपने ऊपर आते देखा।"

ईसाइयों को अपने धर्म के प्रचारार्थ शिक्षणालय भी खोलने पड़े। उनमें पाठनार्थ कई पाठ्य पुस्तकें हिन्दी में तैयार करवाईं। सारांश यह है कि जब हिन्दी की उन्नति सब ओर रुकी हुई थी उस समय ईसाई ही इस प्रकार इसका कुछ न कुछ प्रसार करते रहे।

अपने धर्म के प्रचार के लिए तो अंग्रेज़ों ने जनसाधारण की बोलचाल की भाषा हिन्दी का ही आश्रय लिया, परन्तु अदालती भाषा उर्दू ही रही। इसका परिणाम यह होने लगा कि लोगों की हिन्दी सीखने की प्रवृत्ति दिनों दिन घटने लगी। जो कुछ हिन्दी का थोड़ा बहुत प्रचार हो रहा था वह इन पादरियों के कारण था, या तुलसी रामायण की चौपाइयों, या सूर के भजनों के कारण था। अन्यथा उर्दू का प्रचार बढ़ रहा था और हिंदी का कम हो रहा था।

संवत् १८९० में उर्दू का पहला समाचारपत्र दिल्ली में प्रकाशित हुआ। इसके बाद १९०२ में राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अखबार' नाम का पत्र काशी से निकाला। इसकी भाषा तो प्रायः उर्दू ही थी, पर लिपि देवनागरी थी। इसके कुछ वर्ष पश्चात् १९०७ में बनारस ही से 'सुधाकर' नाम का एक और समाचारपत्र निकला। इसकी भाषा ठेठ हिन्दी थी, पर यह कुछ समय बाद ही बन्द हो गया।

इसके अनन्तर १९०९ में आगरे से एक और पत्र 'बुद्धिप्रकाश'

निकला जो कई वर्ष चलता रहा। इस पत्र की भाषा बहुत शुद्ध और सरल होती थी। उसमें से थोड़ा सा उद्धरण नीचे दिया है-

"स्त्रियों में संतोष और नम्रता और प्रीत यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किये हैं. केवल विद्या की न्यूनता है, जो वह भी हो तो स्त्रियाँ अपने सारे ऋण से चुक सकती हैं और लड़कों को लिखाना पढ़ाना जैसा उनसे बन सकता है वैसा दूसरे से नहीं।"

संवत् १६११ में सर चार्लस उड ने शिक्षा के प्रचार के लिए एक आयोजन तैयार किया। उस समय उर्दू और हिन्दी का प्रश्न फिर उपस्थित हुआ। उर्दू को अदालतों में स्थान मिल चुका था, पर भारतीय साहित्य हिन्दी में था। अतः न हिन्दी की वर्णमाला और न उसके साहित्य को छोड़ना सम्भव था। फलस्वरूप उसे भी शक्षाविधान में स्थान देना पड़ा। अब एक और कठिनता उपस्थित हुई। हिन्दी का जितना भी प्रमुख साहित्य था वह सब पद्य में था, अतः गद्य की भाषा के सम्बन्ध में कुछ खींचातानी होने लगी। इसी समय में राजा शिवप्रसाद और राजा लक्ष्मणसिंह मैदान में निकले।

संवत् १६१३ में—विद्रोह के एक वर्ष पूर्व राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग के इंस्पेक्टर बने। उर्दू के पक्षपाती मुसलमानों के विरोध में उन्हें हिन्दी की रक्षा के लिए बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। विरोधियों का आग्रह था कि हिन्दी कठिन है। अतः राजा साहिब को ऐसी हिन्दी भाषा का आश्रय लेना पड़ा जिसमें

कुछ फारसी और अरबी के चलते चलते शब्द आ जायें। यदि वे इस नीति का अवलंबन न करते तो इन्हें अपने ध्येय में कदापि सफलता न मिलती। उनके सामने एक और बाधा उपस्थित थी। हिन्दी में पाठ्यपुस्तकें न थीं, जो थीं भी, वे सब ईसायत की सम्प्रदायता से भरी हुई थीं। इस लिए इस अभाव को दूर करने के लिए वे और उनके कुछ मित्र पाठ्यपुस्तकों की तैयारी में लग गये, और उन्हें तैयार कर दिया।

राजा शिवप्रसाद ने ऐसे कठिन समय में हिन्दी की जो सेवा की है, उसके लिए हिन्दीभाषी जनता को उनका चिरऋणी रहना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त राजा साहिब ने कुछ और पुस्तकें भी लिखी हैं। उसमें से कुछ ये हैं—इतिहासतिमिरनाशक, मानव धर्मसार। इस संग्रह में प्रकाशित 'राजा भोज का सपना' और 'रानी भवानी' उन्हीं की कृतियाँ हैं।

राजा शिवप्रसाद की खिचड़ी भाषा से उस समय काम भी निकल आया और विरोधियों का मुँह भी बंद हो गया, पर वास्तविक हिन्दी-प्रेमी इससे सन्तुष्ट न थे।

ऐसी परिस्थिति में हिन्दी का असली नमूना लेकर राजा लक्ष्मणसिंह साहित्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए।

उन्होंने संवत १६१८ में प्रजाहितैषी नाम का पत्र आगरे से प्रकाशित किया और १६१६ में कालिदास की 'अभिज्ञान-शाकुन्तल' का अनुवाद सरस और शुद्ध हिन्दी में जनता के सामने रखा।

'शकुन्तला' की बहुत प्रशंसा हुई। राजा साहिब खिचड़ी हिन्दी को हिन्दी ही न मानते थे। अपने अनुवादित 'रघुवंश' की भूमिका में उन्होंने भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार यों प्रकट किये हैं—

"हमारे सन्बन्ध में हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी हैं। हिन्दी इस देश के हिन्दू बोलते हैं और उर्दू यहाँ के मुसलमान और फारसी पढ़े हुए हिन्दुओं की बोलचाल है। हिन्दी में संस्कृत के पद बहुत आते हैं, उर्दू में अरबी में फारसी के, परन्तु कुछ अवश्य नहीं है कि अरबी फारसी के शब्दों के बिना हिन्दी न बोली जाय और न हम इस भाषा को हिन्दी कहते हैं जिसमें अरबी फारसी के शब्द भरे हों।"

राजा लक्ष्मणसिंह कम्पनी के एक उच्च कर्मचारी थे। उन्हें अपना ही काम काज बहुत रहता था, तो भी वे कभी हिन्दी की सेवा से नहीं हिचकिचाये।

जिस प्रकार संयुक्त प्रान्त में राजा शिवप्रसाद शिक्षाविभाग में रहकर हिन्दी की सेवा कर रहे थे, उसी प्रकार पञ्जाब में एक बङ्गाली महाशय नवीनचन्द्र राय इसकी सेवा में लीन थे। इन्होंने भी संवत् १६२० और सं० १६३७ के बीच कितने ही विषयों पर हिन्दी की पुस्तकें तय्यार कीं और करवाईं। आपकी बनाई कई पुस्तकें बहुत काल तक पञ्जाब की पाठ्यप्रणाली में नियत रही हैं। उन्होंने एक शिक्षाविषयक पत्रिका

'ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका' नाम से निकाली थी। इनका हिन्दी-गद्य शुद्ध था। उर्दू फारसी के झमेलों में इन्होंने हिन्दी को नहीं आने दिया।

नवीन बाबू की 'विधवाविवाह व्यवस्था' नामक पुस्तक से एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

' विधवाविवाह शास्त्रसम्मत अथवा शास्त्र विरुद्ध कर्म है। इस विषय की मीमांसा में प्रवृत्त होना हो तो पहिले यह निरूपण करना आवश्यक है कि वह शास्त्र कौनसा है जिसके सम्मत होने से विधवाविवाह कर्तव्य समझा जावे और जिसके विरुद्ध होने से अकर्तव्य समझा जावे। व्याकरण काव्य अलंकार दर्शन-प्रभृति शास्त्र इस विषय के शास्त्र नहीं हैं।"

नवीनचन्द्र जी के समय में ही पञ्जाब में पण्डित सुखदयालु शास्त्री हुए हैं। ये लाहौर के ओरियेंटल कालेज में अध्यापक थे। इन्होंनें 'न्यायबोधनी' नाम की एक पुस्तक लिखी थी। उसमें से कुछ अंश नीचे उद्धृत हैं—

"यद्यपि मनुष्य जगत् के पदार्थों का प्रत्यक्ष में ही निश्चय कर सकता है तो भी बहुत पदार्थ परमाणु आदि ऐसे हैं जो युक्तिसिद्ध हैं मानने तो अवश्य पड़ते हैं, परन्तु प्रत्यक्ष उनका नहीं होता और जानना संपूर्ण पदार्थों का अभीष्ट है। इसलिये इन सब पदार्थों के मिले हुए और भिन्न भिन्न ऐसे ऐसे धर्म जानना चाहियें कि जो धर्म जिस वस्तु का हो वह उस सारी वस्तु

में रहे कोई स्थान रीता न छोड़े और उस वस्तु से भिन्न वस्तु में कहीं न रहे ऐसे धर्म का नाम लक्षण है। जिसका लक्षण करना अभीष्ट है उसे लक्ष्य कहते हैं।

यह वह समय था जब ईसाईमत का प्रचार ज़ोरों पर था। उसकी आती हुई बाढ़ को रोकने की आवश्यकता थी। समय ने स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण किया। संवत् १९१० से उन्होंने नगर नगर घूम कर वैदिक मत का प्रचार और आर्यसमाजों का संस्थापन किया। स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी, पर वे हिन्दी के कट्टर पक्षपाती थे। इसी भाषा को वे सार्वदेशीय भाषा बनाने के पक्ष में थे। उनकी प्रतिभा का चमत्कार इसी से ज्ञात होता है कि गुजराती भाषा-भाषी होने पर भी उन्होंने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे हैं। इनका रचा हुआ 'सत्यार्थप्रकाश' अब तक लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुका है। आपकी हिन्दी भी शुद्ध है, पर कहीं कहीं उस पर गुजराती का प्रभाव खटकता है।

स्वामी जी का पंजाब में बहुत प्रभाव पड़ा। उर्दू के गढ़ पंजाब में उनके हिन्दी प्रचार को आशातीत सफलता मिली है। आर्यसमाजी स्कूलों के द्वारा हिन्दी का खूब प्रचार हो रहा है। आर्य-समाज के प्रभाव को रोकने के लिए सनातन धर्म सभाओं की प्रतिष्ठा हुई। उन्होंने भी आर्यसमाज की कार्यप्रणाली

का ही अवलम्बन किया। अब उनके द्वारा भी हिन्दी की अच्छी उन्नति हो रही है।

आर्यसमाज के आन्दोलन के समय में संवत् १६२० में एक विलक्षण प्रतिभाशाली विद्वान् पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी के व्याख्यानों की पंजाब में बड़ी धूम थी। ये ईसाईमत के विरोधी थे और अपने व्याख्यानों के द्वारा उसके प्रभाव को कम कर रहे थे। इनकी महाभारत और रामायण की कथाएँ अत्यन्त रोचक होती थीं। सहस्रों मनुष्य उन्हें सुनने को एकत्रित होते थे। इनकी भाषा बड़ी ज़ोरदार होती थी। इन्होंने अपने सिद्धान्तों का एक ग्रन्थ 'सत्यामृतप्रवाह' नाम का लिखा है। इनकी प्रकृति बहुत स्वतन्त्र थी। ये स्वामी जी के कई सिद्धान्तों के विरोधी थे और कई के सम्मत। इन्होंने पीछे 'आत्म चिकित्सा' 'तत्वदीपक' 'धर्म रक्षा', 'उपदेश संग्रह' आदि कई धर्मपुस्तकें लिखी हैं। इन्होंने एक अपना जीवनचरित्र भी लिखा था जो अब उपलब्ध नहीं। इनकी मृत्यु सं० १६३८ में हुई। जनता इनको हिन्दी लिखने में हरिश्चन्द्र के समकक्ष मानती थी।

राजा लक्ष्मणसिंह के समय में हिन्दीगद्य अपने भावी रूप का आभास दे चुका था। अब आवश्यकता थी ऐसे प्रतिभा-सम्पन्न शक्तिशाली लेखकों की जो उसे सुव्यवस्थित और परिमार्जित कर सत्साहित्योपयोगी बनावें। ठीक ऐसी परिस्थिति में हरिश्चन्द्रजी का साहित्य-क्षेत्र में उदय हुआ।

हरिश्चन्द्र जी की जीवनी के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना है कि बचपन में ही इनमें एक भावुक और प्रतिभाशाली लेखक होने के लक्षण दीखने लग गये थे। जो भाग इन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य को एक सुन्दर सरणी में चलाने में लिया है वह अनुपम है। इन्होंने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके उसे बहुत चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नवीन मार्ग पर ला दिया। उनकी चलाई भाषा-परिपाटी को सबने अपनाया है, इसलिए वे वर्तमान हिन्दी गद्य के अद्वितीय प्रवर्तक माने गये हैं। 'मुंशी सदासुखलाल की भाषा साफ होते हुए भी पण्डिताऊपन लिए थी, लल्लूलाल में ब्रजभाषापन और सदल मिश्र में पूरबीपन था, राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही परिमित न था, वाक्य-विन्यास तक घुसा था। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, आगरे की बोलचाल की पुट उसमें कम न थी। पर भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ। भारतेन्दु ने पद्य की ब्रजभाषा का भी बहुत कुछ संस्कार किया। पुराने पड़े हुए शब्दों को हटाकर काव्य-भाषा में भी वे बहुत कुछ चलतापन और सफाई लाए।

सबसे बड़ा काम उन्होंने यह किया कि साहित्य के मुख को पुराने मार्ग से हटा कर नये मार्ग की ओर किया। जनता और

साहित्य में समता स्थापित की। नई शिक्षा के लोगों की विचार-धारा बदल दी। उनमें नई आशाएँ और नई उमंगें उठ चुकी थीं। भारतेन्दु ने उनकी आशाओं के अनुकूल साहित्य का निर्माण किया। बंगला का साहित्य बहुत उन्नति कर रहा था, उसमें अच्छे अच्छे नाटक और उपन्यासों का आविर्भाव हो रहा था, पर हिन्दी में वही अनन्त काल से चली आती भक्ति और शृंगार की धारा बह रही थी। भारतेन्दु ने उसको मोड़ कर हमारे जीवन की अनुगामिनी कर दिया। इस प्रकार हमारे जीवन और साहित्य में जो विच्छेद पड़ा था, उसे उन्होंने दूर किया। इस कारण हिन्दी भाषा और साहित्य के एक मात्र उद्धारक भारतेन्दु ही थे।

संवत् १९२२ में वे सपरिवार जगन्नाथ यात्रा को गये। उसी यात्रा में उन्हें बंगला साहित्य का परिचय हुआ। बंगला साहित्य उन दिनों नित्य नये उपन्यास, नाटक, इतिहास ग्रन्थों से भरा जा रहा था। भारतेन्दु को उसके साम्मुख्य में हिन्दी की दशा बहुत हीन जँची। यात्रा से लौटते ही वे इस अभाव को दूर करने की ओर अग्रसर हुए। सं० १९२५ में उन्होंने 'विद्यासुन्दर' नाटक का बंगला से अनुवाद किया। उसी वर्ष 'कविवचनसुधा' नाम की एक हिन्दीपत्रिका भी निकाली, जिसमें उत्तमोत्तम कविताएँ और गद्य-लेख निकलने लगे। संवत् १९३० में उनकी 'हरिश्चन्द्र-मेगज़ीन' निकली, पीछे इसका नामकरण संस्कार 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नाम से हुआ। इस चन्द्रिका में भारतेन्दु स्वयं तो लिखते

ही थे, पर कई एक अन्य लेखक भी इनसे उत्साहित होकर अपने अपने लेख उसमें प्रकाशित कराने लगे।

सम्वत् १९३० में उन्होंने 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' नाम का मौलिक नाटक लिखा और सम्वत् १९३१ में 'बालाबोधिनी' पत्रिका निकाली।

'वैदिकी हिंसा' के बाद उनके 'कर्पूरमंजरी', 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'चन्द्रावली नाटिका', 'मुद्राराक्षस, 'भारत दुर्दशा', 'अंधेर नगरी', 'नील-देवी' आदि बहुत से नाटक निकले।

इन नाटकों के अतिरिक्त उन्होंने 'काश्मीर-कुसुम' और 'बादशाह-दर्पण' नामक दो इतिहास-ग्रन्थ भी रचे।

इनका देहान्त सं० १९४१ में हुआ। पैंतीस वर्ष की इतनी छोटी आयु और अठारह वर्ष के साहित्यिक जीवन में हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की इतनी सेवा की है जो दूसरों से सैकड़ों वर्षों में भी सम्भव नहीं।

हरिश्चन्द्र ने अपने जीवन काल में ही अपने प्रभाव से अपने चारों ओर हिन्दी-कवियों और लेखकों की एक खासी मण्डली तैयार कर ली थी। साथ ही हिन्दी के कतिपय पत्र भी निकलने लग गये थे। इनमें बिहार-बन्धु, भारत-बन्धु, हिंदी-प्रदीप, आनन्द-कादंबिनी, पीयूष-प्रवाह, भारत-जीवन उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों में से बहुतों का सम्बन्ध किसी न किसी पत्रिका से था। उनमें कुछ तो हिंदी के अच्छे लेखक माने जाते हैं। पण्डित बदरीनारायण

चौधरी, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, बाबू तोताराम, ठाकुर जगमोहन सिंह, श्री निवासदास, बालकृष्ण भट्ट, केशवराय भट्ट, राधाचरण गोस्वामी—ये सब भारतेन्दु के समकालीन थे। अपने अपने साहित्यिक क्षेत्र में इन्होंने हिन्दी की अच्छी सेवा की है।

इस लेख का उद्देश्य केवल हिन्दी के प्राचीन गद्य का इतिहास देना है। प्राचीन लेखकों की श्रेणी स्वामी दयानन्द सरस्वती तक ही समाप्त हो जाती है। उनके बाद हरिश्चन्द्र जी का उदय होता है। हरिश्चन्द्र जी नवीन शैली के प्रवर्तक और संस्थापक और प्राचीन गद्य और नवीन गद्य में सम्बन्ध स्थापित करने वाले हैं। इनके समय में हिंदी की अच्छी उन्नति हुई।

इसके बाद एक और समय आया। उस समय हिन्दी की प्रतिष्ठा हो चुकी थी, उसके अच्छे लिखने वाले भी थे, पर अंगरेज़ी पढ़े लिखे विद्वानों का झुकाव अभी उधर न हुआ था। फिर कुछ मित्रों के कहने सुनने से और कुछ अपनी लगन से वे लोग हिंदी की ओर झुके और उसका साहित्य बढ़ाने लगे। पर उनकी भाषा त्रुटि पूर्ण थी। वे लोग संस्कृत और बंगला के शब्दों के आगे विभक्ति-चिन्ह लगा कर वाक्य बना देना ही हिंदी लिखना समझते थे। उनकी हिंदी व्याकरण-नियमों से कोसों दूर थी। ऐसी परिस्थिति देख कर आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' में लेख लिख-लिख कर उन लेखकों का ध्यान उधर आकर्षित किया। परिणाम यह हुआ कि हिंदी का रूप बहुत कुछ सुधर गया।

इसके उपरान्त हिन्दी की ओर लोगों की रुचि बढ़ने लगी। नाटकों, उपन्यासों, गल्पों, और हिन्दी में दूसरे विषयों की पुस्तकों को पढ़ने के लिए लोग उत्सुक थे।

प्रकृति का नियम है कि जब किसी वस्तु की माँग होती है तो उसे पूरा करने के साधन भी निकल आते हैं। समय ने श्री-जयशंकर प्रसाद से नाटककार, स्वर्गीय प्रेमचन्द जी से उपन्यास-कार, प्रेमचन्द, सुदर्शन और कौशिक जैसे गल्पकार, आचार्य द्विवेदी जैसे समालोचक और दूसरे अपने अपने विषय के धुरंधर पण्डित--कई लेखकों को जन्म दिया। उनकी कृपा से हिन्दी-साहित्य-भण्डार दिनों दिन भरा जा रहा है। इस समय हमें हिन्दी का भविष्य समुज्ज्वल दीखता है। आशा है कि जिस तरह आज यह भारत की समस्त भाषाओं में मुख्य और सार्वजनिक भाषा का पद प्राप्त करने के योग्य समझी जा रही है उसी तरह समय आने वाला है जब यह समग्र भूमण्डल की भाषाओं में उच्च पद पाकर अपना और इस वृद्ध भारत का मुख उज्ज्वल करेगी। किन्तु तब और केवल तब, जब इसके सुपुत्र इसकी सेवा में तन-मन से निरत रहेंगे।

एक दो और शब्द

प्रस्तुत पुस्तक में यह दिखाने का यत्न किया गया है कि गोरख-नाथ जी के समय से लेकर भारतेन्दु के उदय तक हिन्दी की गद्य-

शैली में किस प्रकार विकास होता चला आया है। इस पुस्तक की भूमिका में प्राचीनकाल के लेखकों की शैली के नमूने यत्र तत्र दिये गये हैं। यह भी सिद्ध किया गया है कि हिंदी-गद्य के वास्तविक प्रचारक लेखक-चतुष्टय—सदासुखलाल, इँशाअल्ला, लल्लूलाल और सदल मिश्र हैं। पर इनसे पहले भी गद्य रचना होती रही। इसलिए हमने सम्भवतः सोलहवीं विक्रम शताब्दी के मध्य में लिखी हुई गोस्वामी गोकुलदास की 'दोसौ बावन वैष्णवों की वार्ता' से सतासीवें वैष्णव की वार्ता उद्धृत की है। इससे प्राचीनतम हिन्दी गद्य का विशेष परिचय हो सकेगा। इसके पश्चात् हम सदासुखलाल जी के 'सुखसागर' से काफी उद्धरण पुस्तक के कलेवर में देना चाहते थे, पर सुखसागर की अनुपलब्धि के कारण उनके छोटे से दो उद्धरणों को भूमिका में ही देकर सन्तोष करना पड़ा। लल्लूलाल जी के 'प्रेमसागर' से, इँशाअल्ला की 'रानी केतकी की कहानी' से और सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' से काफी अंश लिये हैं। पुनः स्वामी दयानन्द तक सब लेखकों के गद्य के नमूने पर्याप्त म्याई में दे दिये हैं।

सम्पादक

प्राचीन गद्य

गोसाईं गोकुलनाथ

गोसाईंजी श्री वल्लभाचार्य के पौत्र थे। इनके पिता का नाम गोसाईं बिट्ठलदास था। बल्लभाचार्य जी सगुणोपासना की कृष्ण-भक्ति शाखा के सम्प्रदाय के आचार्य थे। उनके पुत्र और पौत्र उसी सम्प्रदाय के अनुगामी थे। गोसाईं गोकुलनाथ जी ने उसी सम्प्रदाय की महिमा को बढ़ाने वाली कथाओं का वर्णन 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' और 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' इन दो पुस्तकों में किया है। इनकी भाषा साहित्यिक नहीं, बोलचाल की है। उसमें अरबी और फारसी के शब्दों का प्रयोग भी यत्र-तत्र मिलता है इन वार्ताओं का रचनाकाल सम्वत् १६२५ और १६५० के बीच माना जा सकता है।

———

सत्तासीवें वैष्णव की वार्ता

श्री गोसाईं जी के सेवक एक व्रजवासी की वार्ता सो वे व्रजवासी श्रीनाथजीकुं परे कहेतो। सो व्रजवासी गायन की खिरक में सेवा करतो हतो और एक सीधो भण्डार मेंसु ले जातो हतो और आठ पेहेरे गायन की सेवा मन लगायके बहुत आछी करतो हतो। एक दिन कोई वैष्णवकुं श्री गुसाईं जी श्रीठाकुरजी पधराय देते हते सो वा व्रजवासीनें देख्यो फेर एक दिन श्री गुसांईजीसु वा व्रजवासीनें बीनती करी जो मोकुं श्रीठाकुरजी पधराय देवो। वाही समय श्री गुसांई जी न्हायके पधारते हते। जब आगे एक पत्थर पडयो हतो। वा पत्थरकुं श्री गुसांई जी के खड़ाउ की ठोकर लगी सो दूर जाय पड़यो और उहां वे व्रजवासी ठाडो हतो। श्रीगुसांई जी नें कही परेपरे ऐंसे कहके श्रीगुसांई जी भीतर पधारे। जब वो पत्थर व्रजवासीनें उठाय लियो फेर वा व्रजवासी नें मनमें ऐंसो समझो ये मोकुं श्रीगुसांईजीनें श्रीठाकुरजी पधराय दीये और परेपरे श्रीठाकुरजी को नाम कहि दीयो है। ऐंसो भोरो हतो सो वे पत्थरकुं ठाकुरजी मानके पधराय ले गयो फेर मनमें समझ्यो जो सीधोतो एक आवै सो परे कहा खावेगो। और मैं कहा खाउंगो ऐंसे समझके भण्डारीसुं कही अब हमकुं दो सीधा देओ। भण्डारी नें दो सीधा दिये सो फेर जायके रसोई करी और व्रजवासी भोरो बहुत हतो। जब वानें दो पात्र करदीनी फेर कही आव भाई परे

एक पातर तेरी और एक पातर मेरी जब श्रीठाकुरजी आये नहीं— तब वो ब्रजवासी कहेनलग्यो जो भाई तुं आयके अपनी पातर संभार ले। जो वरोबर है के फेर-फार है जो तुं नहीं आवेंगो तो मैं दोनों पातर तलाव में डार देउंगो तब श्रीठाकुर जी वाको शुद्धभाव जानके और भोरो जानके पधारे और साक्षात्स्वरूप धर के जीमन लगे। ऐंसे नित्य कृपा करके पधारते। एक दिन श्री गुसांईजी नें पूंछी जो तुं दो सीधा कहा करेंहैं। जब वानें कही जो आपने वो परे पधराय दीयो है सो एक पातर वे खाय है और एक पातर मैं खाउंहुं ये वात सुनके श्री गुसांईजी मुस्काय के चुप कर रहे फेर एक दिन भण्डारी नें वा ब्रजवासी सुं कही जो तुम सूरत गाँम में जाय के भेट ले आवो। जब ब्रजवासी नें कही सूरत गाम काहा होवे है। भण्डारी नें कही सूरत गाम सहेर है जब वा ब्रजवासी नें कही भेटपत्र और प्रसाद की थेली देवो तो मैं सूरत जाउं। जब उहांसु प्रसाद और पत्र लेके और रसोई करके सूरत की तैयारी करी और कही जो भैया परे मैं तो सूरत जाउंगो और तुं आवेगो के नहीं आवेंगो। जब श्री ठाकुरजी नें कही जो मैं आंवुगो जब वानें कही जो तेरे छोटे छोटे पाँव हैं। और छोटे छोटे हाथ हैं तुं कैंसे चल सकेंगो। जब श्री ठाकुरजी नें कही मैं थोड़ो थोड़ो चलुंगो। और थोड़ीवार तेरे कांधे पर बैठुंगो। ये वात कहिके श्री ठाकुरजी ब्रजवासी के साथ चले वे उहां ते ब्रजवासी चले जब दो तीन कोस आये तब श्री ठाकुरजी नें कही मैं थक गयो हुं। जब वा ब्रजवासी के कांधा

ऊपर बैठे जब थोरी दूर चले तब सांझ भई तब श्री ठाकुरजी नें कही जो आज उहां सोए रहो फेर काल सूरत चलेंगे फेर उहां सोय रहे फेर सवारे उठे सो ऐसे ठिकाणे उठे जाहांसु सूरत दोय कोश रही हती । तब उहांतें चले फेर सूरत आये उहां गाम बाहेर डेरा कीये और उहां श्री ठाकुरजीकुं बैठाय के वो व्रजवासी पत्र और प्रसाद ले गयो । गाम में वैष्णवन-कुं पूंछ के दियो । वे पत्र वांच के वैष्णवन नें विचार कियो जो एक दिन में पत्र कैसे आयो होयगो । जब ये विचार कियो यामें भेद कुछ अवश्य होयगो । तब वैष्णवन नें वाकुं सामग्री दिवाई और एक दिन में सब ठिकाने फिरके पांच हजार रुपैया एकठ्ठे करके और हुंडी करायके तब व्रजवासी कुं दीनी । सो व्रजवासी लेके और परेकुं संग लेके उहांतें चले । फेर रस्ता में आयके सोय रहे फेर सवारे उठके पेहेर दिन चढ्यो गोपालपुर में आये फेर भंडारी के पास गयो और दो सीधा मागे । जब भण्डारी ने कही सूरत क्युं गयो नहीं जब वानें कही सूरत जाय आयोहुं पत्र और वस्त्र लायोहुं । सो भण्डारीकुं दीये । जब भण्डारी नें पांच हजार की हुंडी और वस्त्र और वैष्णवन के कागद देखके चकित होय गयो । जो एक रात में कैसे गयो होयगो और कैसे आयो होयगो सो ये वात की वीनती श्री गुसांईजी के आगें करी श्री गुसांईजी सुनके ऐंसी आज्ञा करी जो ए सब श्रीनाथ जी के काम है आज पीछे या व्रजवासीकुं कछु काम मत बताईयो और

जन्म सूधी दोय सीधा याकुं नित्य दीजियो और नित्य वा ब्रजवासी-कुं बुलाय के श्री गुसांईजी परे की बातें पूंछो करते आज परे नें ये कही आज परे नें ये कही ऐंसे नित्य कथा करे सो वे ब्रजवासी भोलो हतो जन्मसु श्री ठाकुरजीकुं परे समझो करे ऐंसो कृपापात्र हतो । वार्ता संपूर्ण ।। वैष्णव ।।८७।।

(श्री गोकुलनाथ जी की "दो सौ बावन
वैष्णवों की वार्ता" में से)

लल्लूलाल

(संवत् १८२०--१८८२)

लल्लूलाल जी गुजराती ब्राह्मण थे। इनका निवासस्थान आगरा था। उर्दू और हिन्दी के ये अच्छे परिडत थे। पर संस्कृत का इन्हें विशेष ज्ञान था। ये भी परिडत सदल मिश्र के साथ फ़ोर्ट विलियम कालेज, कलकत्ता में जान गिलक्राइस्ट की अध्यक्षता में काम करते थे, उन्हीं की उत्तेजना से इन्होंने भागवत के दशम स्कन्ध का हिन्दी-अनुवाद 'प्रेमसागर' नाम से रचा।

यद्यपि इन्होंने 'प्रेमसागर' खड़ी बोली में लिखा है तो भी उसपर व्रजभाषा का काफ़ी रङ्ग चढ़ा हुआ है। इनकी भाषा का बोलचाल में प्रयोग नहीं किया जा सकता और नाहीं प्रचलित साहित्यिक भाषा को भी इससे कुछ सहायता मिल सकती है। इनकी भाषा में अनुप्रास अलंकार का प्रयोग बड़ी प्रचुरता से मिलता है। प्रेमसागर की भाषा को हम 'काव्यभास' गद्य ही कह सकते हैं जो भक्तजनों की कथावार्ता में अधिक काम आ सकती है। यही कारण है कि इस समय भी प्रेमसागर का प्रचार बहुत अधिक है।

प्रेमसागर लिखने से पूर्व इन्होंने सिंहासन बत्तीसी, वैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक, माधोनल--इन चार पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद किया है। इनके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दी 'हितोपदेश' का व्रजभाषा गद्य में अनुवाद 'राजनीति' नाम से किया है।

सन् १८८१ में कालेज से पेन्शन लेकर ये आगरा आ गये थे और वहां से अपना 'संस्कृतप्रेस' भी साथ लेते आये । पर उसे ज्यादा दिन तक चला न सके क्योंकि उसके एक साल वाद ही सन् १८८१ में इनका देहान्त कलकत्ता में हो गया ।

प्रेमसागर

अथ कथा–प्रारम्भः

पीड़ाबन्ध

महाभारत के अन्त में जब श्रीकृष्ण अन्तर्ध्यान हुए तब पाण्डव तो महादु:खी हो, हस्तिनापुर का राज्य परीक्षित को दे हिमालय गलने गये। और राजा परीक्षित सब देश जीत धर्मराज करने लगे, कितने एक दिन पीछे राजा परीक्षित आखेट को गये तो वहाँ देखा कि एक गाय और बैल दौड़े चले आते हैं, तिनके पीछे मूसल हाथ में लिए एक शूद्र मारता आता है। जब वे पास पहुँचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय दु:ख पाय झुँझलाय कर कहा अरे तू कौन है ? अपना बखान कर जो मारता है गाय और बैल को जान कर, क्या तैने अर्जुन को दूर गया जाना तिससे उसका धर्म्म नहीं पहिचाना। सुन, पाण्डु के कुल में ऐसा किसी को न पावेगा कि जिसके सोहीं कोई दीन को सतावेगा। इतना कह

कर राजा ने खड्ग हाथ में लिया। वह देख कर खड़ा हुआ फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुलाय कर पूँछा तुम कौन हो बुझा कर कहो देवता हो कि ब्राह्मण और किस लिये भागे जाते हो सो निधड़क कहो मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुःख दे।

इतनी बात सुनी तब तो बैल शिर झुका कर बोला--महाराज ये पापरूप, काले वर्ण, डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख खड़ा है सो कलियुग है, इसी के आने से में भागा जाता हूँ। यह गाय रूप पृथ्वी है, सो भी इसी के डर से भाग चली और मेरा नाम धर्म है, चार पाँव रखता हूँ--तप, सत्य, दया और शौच, सतयुग में मेरे चरण बीस विस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार विस्वे रहा, इसमें कलि के बीच चल नहीं सकता। धरती बोली--धर्म्मावतार! मुझ से इस युग में रहा नहीं जाता; क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म मेरे ऊपर करेंगे तिनका बोझ में न सह सकूँगी। इस भय से मैं भी भागती हूँ। यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा--मैं तुझे अभी मारता हूँ, वह थरथरा राजा के चरणों पर गिर गिड़गिड़ा कर कहने लगा कि, पृथ्वीनाथ! अब तो मैं तुम्हारी शरण आया मुझे कहीं रहने को ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चारों युग ब्रह्मा ने बनाये हैं सो किसी भाँति मेटे नहीं मिटेंगे! इतना वचन सुनते ही राजा परीक्षित ने कलियुग से कहा कि तुम इतनी ठौर रहो--जुयें, झूँठ, मद की हाट, वेश्या के घर, हत्या, चोरी और सुवर्ण में; यह सुन कलि ने तो अपने

स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म्म को अपने मन में रख लिया, पृथ्वी अपने स्वरूप में मिल गई। राजा फिर नगर में आये और धर्म्मराज करने लगे। कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समय आखेट को गये और खेलते खेलते प्यासे भये, शिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था उसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया, राजा प्यास के मारे कहाँ आते हैं कि जहाँ लोमश ऋषि आसन मारे नयन मूँदे हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे, उन्हें देख राजा परीक्षित मन में कहने लगे कि इन्होंने अपने तप के घमण्ड से मुझे देख आँखें मूँद ली हैं, ऐसे कुमति ठान एक मरा साँप वहाँ पड़ा था सो धनुष से उठा ऋषि के गले में डाल अपने घर आया। मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कञ्चन में कलियुग का वास है यह मेरे शीश पर था इससे मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया सो मैं अब समझा कि कलि ने मुझसे पलटा लिया, इस महापाप से कैसे छूटूँगा। वरन् धन, जन, स्त्री और राज मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूँ किस जन्म में यह अधर्म्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है। राजा परीक्षित तो यहाँ इस अथाह शोक-सागर में डूब रहे थे और जहाँ लोमश ऋषि थे तहाँ कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले, मरा साँप उनके गले में देख अचम्भे में रहे और घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई कोई इनके पुत्र से जाकर कहदे, जो उपवन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है, एक सुनते ही दौड़ा वहीं गया जहाँ

शृङ्गी ऋषि छोकरों के साथ खेलता था। कहा बन्धु तुम यहाँ क्या खेलते हो, कोई दुष्ट मरा साँप तुम्हारे पिता के कण्ठ में डाल गया है। सुनते ही शृंगी ऋषि के नेत्र लाल हो आये, दाँत पीस-पीस लगा थर-थर काँपने और क्रोध कर कहने कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अन्धे हो गये हैं दुःखदायी, अब मैं उनको देहूँ शाप, वही मीच पावैगा आप। ऐसे कह शृंगी ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित को शाप दिया कि यही सर्प सातवें दिन तुमको डसेगा। इस भाँति राजा को शाप दे अपने बाप के पास आ गले से साँप निकाल कहने लगा कि हे पिता, तुम अपनी देह सँभालो, मैंने उसे शाप दिया है जिसने आपके गले में मरा सर्प डाला था। यह बात सुनते ही लोमश ऋषि ने चैतन्य हो नयन उघाड़ अपने ज्ञान, ध्यान से विचार के कहा--अरे पुत्र! तूने यह क्या किया? क्यों शाप राजा को दिया? उसके राज्य में हम सुखी थे और कोई पशु पक्षी भी दुःखी न था। ऐसा धर्म्मराज था कि सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते। हे पुत्र! जिनके देश में हम बसे थे क्या हुआ तिनके हाथ से मरा हुआ साँप डाला गया, उसे शाप क्यों दिया? तनक दोष पर ऐसा शाप तैंने दिया, बड़ा ही पाप किया, कुछ विचार मन में न किया। गुण छोड़ा औगुण लिया, साधु को चाहिए शील स्वभाव से रहे, आप कुछ न कहै और की सुन ले सब का गुण ले अवगुण तजै। इतना कह लोमश ऋषि ने एक चेले को बुला कर कहा तुम राजा परीक्षित को जाके चिता दो जो तुम्हें शृंगी ऋषि ने शाप दिया है भले लोग तो

दोष देहींगे पर वह सुन सावधान तो हो जाय। इतना वचन गुरु का मान चेला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा सोच करता था, आते ही कहा--महाराज! तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा, अब तुम अपना कार्य्य करो जिससे कर्म्म की फाँसी से छूटो। राजा सुनते ही प्रसन्न हो हाथ जोड़ कहने लगा कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो शाप दिया--क्योंकि मैं माया मोह के अपार शोक-सागर में पड़ा था सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य विदा हुआ तब राजा ने आप बैराग लिया और जनमेजय को बुलाय राज पाट देकर कहा--बेटा गौ ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो। इतना कह आये रनिवास, देखी नारी सभी उदास, राजा को देखते ही रानियाँ पाँवों पर गिर रो रो कहने लगीं--महाराज! तुम्हारा वियोग हम अबला न सह सकेंगी इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला। राजा बोला--सुनो स्त्री को उचित है कि जिसमें अपने पति का धर्म्म रहै सो करे, उत्तम कार्य्य में बाधा न डाले। इतना कह धन जन कुटुम्ब और राज्य की माया तज निर्मोही हो अपना योग साधने को गंगा के तीर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय २ कर पछताय २ बिन रोये न रहा और जब ये समाचार मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित शृंगी ऋषि के शाप से मरने को गङ्गा के तीर आ बैठा है। तब व्यास, वशिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, जमदग्नि, आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आये, और आसन बिछाय २ पाँत २ बैठ गये और अपने २ शास्त्र विचार २ अनेक

भाँति के धर्म सुनाने लगे कि इतने में राजा की श्रद्धा देख पोथी काँख में लिए दिगम्बर भेष श्री शुकदेव जी भी आ पहुँचे। उनको देखते ही जितने मुनि थे सब के सब उठ खड़े हुए, और राजा परीक्षित भी हाथ बाँध खड़ा हो विनती कर कहने लगा। हे कृपानिधान मुझ पर बड़ी दया की जो इस समय मेरी सुध लिया। इतनी बात कही तब शुकदेव मुनि भी बैठे तो राजा ऋषियों से कहने लगे कि महाराज शुकदेव व्यास जी के तो बेटे और पराशर जी के पोते तिनको देख तुम बड़े२ मुनीश होके उठे सो तो उचित नहीं इसका कारण कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय। तब पराशर मुनि बोले--हे राजा जितने हम बड़े २ ऋषि हैं पर ज्ञान में शुकदेव जी से छोटे हैं, इसलिये सब ने शुक का आदर मान किया, किसी ने इस आश पर कि ये तारणतरण हैं क्योंकि जब से जन्म लिया है तबही से उदासी हो बनवास करते हैं और राजा तेरा भी बड़ा पुण्य उदय हुआ जो शुकदेवजी आये, ये सब धर्मों से उत्तम धर्म्म कहेंगे तिस से तू जन्म मरण से छूट भवसागर पार होगा। यह बचन सुन राजा परीक्षित ने श्री शुकदेवजी को दण्डवत् कर पूँछा कि, महाराज ! मुझे धर्म्म समझाय के कहो कि किस रीति से कर्म्म के फन्दे से छूटूँगा, सात दिन में क्या करूंगा ! अधर्म्म है अपार, कैसे भवसागर हूँगा पार। श्रीशुकदेव जी बोले--राजा तू थोड़े दिन मत समझ, मुक्ति तो होती है एक ही घड़ी के ध्यान में, जैसे खट्वाङ्ग राजा को नारद मुनि ने ज्ञान बताया था और उसने दो ही घड़ी में मुक्ति पाई थी तुझे तो सात दिन बहुत हैं। जो एकचित होके ध्यान से सब

समझो अपने ही ज्ञान से, कि क्या है देह किसका है बास कौन करता है इसमें प्रकाश। यह सुन राजा ने हर्ष कर पूँछा, हे महाराज! सब धर्म्मों से उत्तम धर्म्म कौनसा है सो कृपा कर कहो। तब शुकदेव जी बोले--हे राजा! जैसे सब धर्म्मों में वैष्णव धर्म्म बड़ा है तैसे पुराणों में श्रीमद्भागवत। जहाँ हरिभक्त यह कथा सुनावें हैं, तहाँ ही सर्व्व तीर्थ और धर्म्म आवें हैं: जितने हैं पुराण पर नहीं हैं भागवत के समान, इस कारण मैं तुझे बारह स्कन्ध महापुराण सुनाता हूँ जो व्यास मुनि ने मुझे पढ़ाया है, तू श्रद्धा समेत आनन्द से चित्त दे सुन। तब तो राजा परीक्षित प्रेम से सुनने और शुकदेव जी मन से सुनाने लगे।

नवमस्कन्ध की कथा जब मुनि ने सुनाई तब राजा ने कहा-- हे दीनदयाल अब दयाकर कृष्णावतार की कथा कहिये, क्योंकि हमारे सहायक और कुलपूज्य वही हैं। शुकदेव जी बोले--हे राजा! मैं उग्रसेन के भाई देवक की कथा कहता हूँ कि उसके चार बेटे और छः बेटियाँ थीं सो छहों बसुदेव को ब्याह दीं, सातवीं देवकी हुई जिसके होने से देवताओं को प्रसन्नता हुई और उग्रसेन के भी दश पुत्र थे पर सब से कंस ही बड़ा था, जब से जन्मा तब से यह उपाधि करने लगा कि नगर २ जाय छोटे २ लड़कों को पकड़ लावे और पहाड़ की खोह में मूँद २ मार डाले, जो बड़े होएँ तिनकी छाती पर चढ़ गला घोंट जी निकाले। इस दुःख से कोई न निकलने पावे सब अपने २ लड़कों को छिपाये, प्रजा कहैं दुष्ट यह कंस, उग्रसेन का नहीं है वंश, कोई महापापी जन्म ले आया है जिसने सारे नगर को सताया है, यह बात सुन उग्रसेन ने

उसे बुलाकर बहुत सा समझाया पर इसका कहना कंस के जी में कुछ भी न आया, तब दुःख पाय पछताय के कहने लगा कि ऐसे पूत होने से मैं अपूत ही क्यों न हुआ, कहते हैं जिस समय कुपूत घर में आता है तिसी समय यश धर्म्म जाता है। जब कंस आठ वर्ष का हुआ तब मगध देश पर चढ़ गया। वहाँ का राजा जरासन्ध बड़ा योधा था तिससे मिल इससे मल्लयुद्ध किया, तो उसने कंस का बल लखि लिया, तब हार मान अपनी दो छोटी बेटियाँ ब्याह दीं--उनको ले पहिले मथुरा में आया और उग्रसेन से बैर बढ़ाया। एक दिन कोपकर अपने पिता से बोला कि तुम राम नाम कहना छोड़ दो, और महादेव का जप करो। इसने कहा--मेरे तो कर्त्ता दुःख-हर्त्ता वही हैं जो उनको नहीं भजूँगा तो अधर्मी हो कैसे भवसागर पार हूँगा। यह सुन कंस ने खुनसाय बाप को पकड़ कर सारा राज्य ले लिया, और नगर में डौंड़ी फेर दी कि कोई यज्ञ, दान, तप, धर्म्म और राम का नाम लेने न पावै। ऐसा अधर्म्म बढ़ा कि, गौ ब्राह्मण और हरि के भक्त दुःख पाने लगे और धरती अति बोझ से मरने लगी। जब कंस सब राजाओं का राज्य ले चुका तब एक दिन अपना दल ले राजा इन्द्र पर चढ़ चला, तहाँ मंत्री ने कहा कि महाराज इन्द्रासन बिन तप किये नहीं मिलता, आप बल का गर्व्व न करिये देखो गर्व्व ने रावण, कुम्भकर्ण को कैसा खो दिया कि जिनके कुल में एक भी न रहा।

इतनी कथा कह शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जब पृथ्वी पर अति अधर्म्म होने लगा तब पृथ्वी दुःख पाय,

घबराय गाय का रूप बना, डकारती देवलोक में गई और इन्द्र की सभा में जा शिर झुकाय उसने अपनी सब पीर कही कि महाराज संसार में असुर अति पाप करने लगे तिनके डर से धर्म तो उठ गया यदि मुझे आज्ञा हो तो नरपुर छोड़ रसातल को जाऊँ। तब इन्द्र सब देवताओं को साथ ले ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा सुन सब को महादेव जी के निकट ले गये, महादेव भी सब को साथ ले वहाँ गये जहाँ क्षीर-समुद्र में नारायण सो रहे थे। उनको सोते जान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र सब देवताओं को साथ ले खड़े हो हाथ जोड़ विनती कर देव स्तुति करने लगे--महाराजाधिराज! आपकी महिमा कौन कहि सकै, मत्स्यरूप हो वेद डूबते निकाले, कच्छपरूप बन पीठ पर गिरि धारण किया, वाराह बन भूमि को दाँत पर रख लिया, वामन होके राजा बलि को छला, परशुराम अवतार ले क्षत्रियों को मार पृथ्वी कश्यप मुनि को दी, रामावतार लिया तब महा दुष्ट रावण का वध किया, और जब-जब तुम्हारे भक्तों को दैत्य दुःख देते हैं तब-तब आप विनकी रक्षा करते हैं। नाथ! अब कंस के सताने से अति व्याकुल हो पुकार करती है तिसकी वेग सुधि लीजै, असुरों को मार साधुओं को सुख दीजै, ऐसे गुणगाय देवताओं ने कहा तब आकाशवाणी हुई, सो ब्रह्मा देवताओं को समझाने लगे यह जो वाणी हुई सो तुम्हें आज्ञा दी है कि तुम सब देवी देवता ब्रजमण्डल जाय मथुरा नगरी में जन्म लो, पीछे चार स्वरूप धर हरि भी अवतार लेंगे, वसुदेव के घर देवकी की कोख में, और बाल लीला कर नन्द यशोदा को सुख देंगे। इसी रीति से जब ब्रह्मा ने बुझा कर कहा तब सुर मुनि

किन्नर गन्धर्व्व सब अपनी स्त्रियों समेत जन्म ले ले ब्रजमण्डल में यदुवंशी और गोप कहाये। और जो चारों वेद की ऋचाएँ थीं सो ब्रह्मा से कहने लगीं कि हम भी गोपी हो ब्रज में अवतार लें वासुदेव की सेवा करें इतना कह वे भी व्रज में आईं और गोपी कहलाईं। जब सब देवता मथुरापुरी में आ चुके तब क्षीर-समुद्र में हरि विचार करने लगे कि पहिले तो लक्ष्मण हो बलराम, पीछे वासुदेव हो मेरा नाम, भरत प्रद्युम्न, शत्रुघ्न अनिरुद्ध और सीता रुक्मिणी का अवतार लें।

देवकीविवाह, बालकवध

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा --हे महाराज! कंस तो इस अनीति से मथुरा में राज्य करने और उग्रसेन दुःख भरने लगा। देवक जो कंस का चाचा था उस की कन्या देवकी जब ब्याहने योग्य हुई तब उसने जा कंस से कहा कि यह लड़की किसको दें? वह बोला सूरसेन के पुत्र वसुदेव को दीजिये। इतनी बात सुनते ही देवक ने एक ब्राह्मण को बुलाया शुभ लग्न मुहूर्त ठहराय सूरसेन के घर टीका भेज दिया। तब तो सूरसेन भी बड़ी धूमधाम से बरात ले सब देश-देश के नरेश साथ ले मथुरा में वसु देव को ब्याहने आये, बरात नगर के निकट आई, सुन उग्रसेन देवक और कंस अपना दल ले आगे बढ़ नगर में ले गये, अति आदर मान से अगौनी कर, जनवासा दिया। खिलाय पिलाय सब बरातियों को मढ़े के नीचे ले जा बैठाया और वेद की विधि से कंस ने वसुदेव को कन्यादान दिया। तिसके

यौतुक में पन्द्रह सहस्र घोड़े, चार हज़ार हाथी, अठारह सौ रथ, दास-दासी अनेक दे कञ्चन के थाल वस्त्र आभूषण रत्नजटित से भर-भर अनगिनत दिये, और सब बरातियों को भी अलङ्कार सहित बागे पहिराय सब मिल, पहुँचावने को गये। तिस समय देववाणी हुई कि अरे कंस जिसको तू पहुँचाने चला है तिसका आठवाँ गर्भ तेरा काल उपजेगा, उसके हाथ तेरी मौत है। यह सुनते ही कंस डर के मारे काँपने लगा और क्रोध कर देवकी के झोंटे पकड़ रथ से नीचे खैंच लाया और खड्ग हाथ में ले दाँत पीस पीस कहने लगा कि जिस पेड़ को जड़ ही से उखाड़िये तिसमें फूल फल काहे को लगेगा। अब इसी को मारूँ तो निर्भय राज्य करूँ, यह देख सुन वसुदेव मन में कहने लगे कि इस मूर्ख ने सन्ताप दिया। यह पुण्य और पाप नहीं जानता है। जो मैं अब क्रोध करता हूँ, तो कार्य्य बिगड़ेगा, तिससे इस समय क्षमा करना ही योग्य है।

चौ०—जो वैरी खैंचे तलवार। करै साधु तिसकी मनुहार ॥
समझ मूढ़ सोई पछताय। जैसे पानी आग बुझाय ॥

यह सोच समझ वसुदेव कंस के सन्मुख जा हाथ जोड़ बिनती कर कहने लगे कि सुनो पृथ्वीनाथ तुम सा बली संसार में कोई नहीं और सब तुम्हारी छाँह तले बसते हैं। ऐसे शूर हो स्त्री पर शस्त्र करना यह अति अनुचित है, और बहिन के मारने से महापाप होता है, तिस पर भी मनुष्य अधर्म्म तो करे जो जानें कि मैं कभी नहीं मरूँगा। इस संसार की तो यही रीति है, इधर जन्मा उधर मरा, फिरोड़ यत्न से पाप पुण्य कर कोई इस देह को पोषे पर यह कभी अपनी न होयगी और धन यौवन

राज्य भी न आवेगा काम, इससे मेरा कहा मान लीजै और अपनी अबला आधीन बहिन को छोड़ दीजै, इतना सुन वह अपना काल जान घबरा कर और भी झुँझलाया। तब वसुदेव सोचने लगे कि यह पापी तो असुरबुद्धि किए अपने हठ की टेक पर है। जिससे इसके हाथ से यह बचे सो उपाय किया चाहिये। ऐसे विचार मन में कहने लगे अब तो इससे यों कह देवकी को बचाऊँ कि जो पुत्र मेरे होगा सो तुम्हें दूँगा। पीछे किसने देखी है लड़का हो न होय, कि यही दुष्ट मरे, यह अवसर तो टलै फिर समझी जायगी। इस भाँति मन में ठान वसुदेव ने कंस से कहा--महाराज ! तुम्हारी मृत्यु इसके पुत्र के हाथ न होगी क्योंकि मैंने एक बात ठहराई है, कि देवकी के जितने लड़के होंगे तितने मैं तुम्हें ला दूँगा। यह वचन मैंने तुम को दिया, ऐसी बात जब वसुदेव ने कही तब समझ के कंस ने मान ली और देवकी को छोड़ कहने लगा--हे वसुदेव ! तुमने अच्छा विचार किया जो ऐसे भारी पाप से मुझे बचा लिया। इतना कह विदा किये और अपने घर गये।

कितने एक दिन मथुरा में रहते भये जब पहला पुत्र देवकी के हुआ; तब वसुदेव ले कंस पै गये और रोता हुआ लड़का आगे धर दिया। देखते ही कंस ने कहा, वसुदेव ! तुम बड़े सत्यवादी हो मैंने आज जाना क्योंकि तुमने मुझ से कपट न किया। निर्मोही हो अपना पुत्र ला दिया इससे डर मुझे कुछ नहीं है यह बालक मैंने तुझे दिया। इतना सुन बालक ले दण्डवत् कर वसुदेव जी तो अपने घर आये और उसी समय नारद मुनि जी ने

जाय कंस से कहा--राजा ! तुमने यह क्या किया जो बालक उलटा फेर दिया, क्या तुम नहीं जानते कि वसुदेव की सेवा करने को सब देवतओं ने व्रज में आय जन्म लिया है, और देवकी के आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण जन्म ले सब राक्षसों को मार भूमि का भार उतारेंगे। इतना कह नारद मुनि ने आठ लकीरें खैंच गिनवाई जब आठ ही आठ गिनती में आई तब डर कर कंस ने लड़के समेत वसुदेव जी को बुलाय भेजा नारद मुनि तो यों समुझाय बुझाय चले गये और कंस ने वासुदेव से बालक ले मार डाला। ऐसे जब २ पुत्र हुये तब २ वसुदेव ले आवें और कंस मार डाले, इसी रीति से छः बालक मारे तब सातवें गर्भ में शेषरूप जो श्रीभगवान् तिन्हों ने आ वास किया। यह कथा सुन राजा परीक्षित ने शुकदेव मुनि से पूछा महाराज ! नारद मुनि जी ने जो अधिक पाप करवाया तिसका ब्योरा समझा कर कहो, जिससे मेरे मन का सन्देह जाय। श्री शुकदेव जी बोले--राजा ! नारद जी ने तो अच्छा विचारा कि यह अधिक अधिक पाप करे तो श्रीभगवान् तुरन्त ही प्रकट होवें॥

गर्भस्तुति

फिर शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि राजा जैसे गर्भ में हरि आये और ब्रह्मादिक ने गर्भस्तुति करी और देवी जिस भाँति बलदेव जी को गोकुल ले गई तिसी रीति से कथा कहता हूँ। एक दिन राजा कंस अपनी सभा में आय बैठा और जितने दैत्य उसके थे उनको बुलाकर कहा सुनो सब देवता पृथ्वी

में जन्म ले आये हैं तिन्हीं में कृष्ण भी अवतार लेगा यह भेद मुझ से नारद मुनि समुझाय के कह गये हैं इस से अब उचित यही है कि तुम जाकर सब यदुवंशियों का ऐसा नाश करो जो एक भी जीता न बचे।

यह आज्ञा पा सब के सब दण्डवत् कर चले, नगर में आ ढूँढ़-ढूँढ़ पकड़-पकड़ लगे बाँधने, खाते-पीते, खड़े-बैठे, सोते-जागते, चलते-फिरते, जिसे पाया तिसे न छोड़ा, घेर के एक ठौर लाये और जला जला डुबो २ पटक २ दुःख दे २ सब को मार डाला, इसी रीति से छोटे बड़े भयावने भाँति २ के भेष बनाये नगर २ गाँव गाँव गली-गली, घर-घर खोज-खोज लगे मारने और यदुवंशी दुःख पाय-पाय देश छोड़-छोड़ जी ले-ले भागने लगे।

उसी समय वसुदेव की जो और स्त्रियाँ थीं सो भी रोहिणी समेत मथुरा से गोकुल में आईं जहाँ वसुदेव जी के परम मित्र नन्द जी रहते थे उन्होंने अति हित से आशा भरोसा दे रक्खा; वे आनन्द से रहने लगीं जब कंस देवताओं को यों सताने और अति पाप करने लगा तब विष्णु ने अपनी आँखों से एक माया उपजाई, सो हाथ बाँध सम्मुख आई उससे कहा तू अभी संसार में जा मथुरापुरी के बीच अवतार ले, जहाँ दुष्ट कंस मेरे भक्तों को दुःख देता है और कश्यप अदिति जो वसुदेव-देवकी हो ब्रज में गये हैं तिनको मूँद रक्खा है। छः बालक तो तिनके कंस ने मार डाले अब सातवें गर्भ में लक्ष्मण जी हैं। उनको देवकी के कोख से निकाल गोकुल में ले जाकर इस रीति से रोहिणी के पेट में रख दीजो कि कोई दुष्ट न जाने और सब वहाँ के लोग तेरा यश बखानें।

इस भाँति माया को समझाय श्रीनारायण बोले कि तू तो पहले जाकर यह कार्य्य करके नन्द के घर में जन्म ले पीछे वसुदेव के यहाँ अवतार ले, मैं भी नन्द के घर आता हूँ। इतना सुनते ही माया झट मथुरा में आई और मोहनी का रूप बन वसुदेव के गेह में पैठ गई।

चौ०—जो छिपाय गर्भ हर लिया। जाय रोहिणी को सो दिया॥
जामें सब पहिला आधान। भये रोहिणी के भगवान॥

इसी रीति से श्रावण सुदी चौदस बुधवार को बलदेव जी ने गोकुल में जन्म लिया और माया ने वसुदेव देवकी को जा स्वप्न दिया, कि मैंने तुम्हारा पुत्र गर्भ से जाय रोहिणी को दिया है, सो किसी बात की चिन्ता मत कीजौ। सुनते ही वसुदेव देवकी जाग पड़े और आपस में कहने लगे यह तो भगवान् ने भला किया पर कंस को इसी समय जताना चाहिये, नहीं तो क्या जानिये पीछे क्या दुःख दे, यों सोच समझ रखवालों से बुलाकर कहा। उन्होंने कंस को जा सुनाया कि, महाराज! देवकी का गर्भ अधूरा गया बालक कुछ न पूरा भया। सुनते ही कंस घबरा कर बोला कि तुम अबकी बेर चौकसी करियो क्योंकि मुझे आठवें गर्भ का डर है जो आकाश वाणी कह गई है।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजन्! बलदेव जी तो यों प्रगटे और जब श्रीकृष्ण देवकी के गर्भ में आये तभी माया ने जा नन्द की रानी यशोदा के पेट में वास लिया। दोनों गर्भ से थीं कि एक पर्व में देवकी यमुना नहाने गई, वहाँ संयोग से

यशोदा भी आन मिली तो आपस में दुःख की चर्चा चली निदान यशोदा ने देवकी को वचन दे कहा कि तेरा बालक मैं रक्खूँगी अपना तुझे दूँगी। ऐसे वचन दे यह अपने घर आई और वह अपने आई। जब कंस ने जाना कि देवकी का आठवाँ गर्भ रहा, तब जा वसुदेव का घर घेरा चारों ओर दैत्यों की चौकी बैठा दी और वसुदेव को बुलाकर कहा, कि अब तुम मुझ से कपट मत कीजो। अपना लड़का ला दीजो तब तो मैंने तुम्हारा ही कहना मान लिया था।

ऐसे कह वसुदेव देवकी के बेड़ी हतकड़ी पहिराय एक कोठे में मुँदकर ताले पर ताले दे निज मन्दिर में आ, मारे डर के उपास कर सो रहा। फिर भोर होते ही वहीं गया, जहाँ वसुदेव देवकी थे, गर्भ का प्रकाश देख कहने लगा कि इस यमगुफा में मेरा काल है, मार तो डालूँ पर अपयश से डरता हूँ, क्योंकि अति बलवान् हो स्त्री को हनना योग्य नहीं, भला इसके पुत्र ही को मारूँगा। यों कह बाहर आ गज, सिंह, श्वान और अपने बड़े-बड़े योद्धा वहाँ चौकी को रखाये और आप भी नित चौकसी कर आवे पर एक पल भी कल न पड़े जहाँ देखे आठ पहर चौंसठ घड़ी कृष्ण-रूप काल ही दृष्टि आवे तिसके भय से रात दिन चिन्ता में गँवावे।

इधर कंस की तो यह दशा थी, उधर वसुदेव और देवकी पूरे दिनों महाकष्ट में श्रीकृष्ण ही को मनाते थे कि इसी बीच भगवान् ने आ उन्हें स्वप्न दिया और इतना कह उनके मन का शोच दूर किया—हम वेग ही जन्म ले तुम्हारी चिन्ता मेटते हैं, तुम अब मत

पड़िताओ। यह सुन वसुदेव-देवकी जाग पड़े तो इतने में ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादिक सब देवता अपने-अपने विमान अधर में छोड़ अलख-रूप बन वसुदेव के गृह में आये और हाथ जोड़-जोड़, वेद गाय-गाय, गर्भस्तुति करने लगे। तिस समय उनको तो किसी ने न देखा पर वेद की ध्वनि सब ने सुनी। यह अचरज देख सब रखवाले अचम्भे में रहे और वसुदेव देवकी को निश्चय हुआ, कि भगवान् वेग ही हमारे पीर हरेंगे।

श्री कृष्ण-जन्म, और कन्या-ग्रहण

श्रीशुकदेव जी बोले—राजा जिस समय श्रीकृष्णचन्द्र जन्म लेने लगे, तिस काल सब ही के जी में ऐसा आनन्द उपजा कि दुःख नाम को भी न रहा। हर्ष से बन उपबन लगे हरे हो-हो फलने फूलने, नदी नाले सरोवर भरने, तिन पर भाँति-भाँति के पक्षी कलोलें करने और नगर-नगर, गाँव-गाँव, घर-घर, मङ्गलाचार होने, ब्राह्मण यज्ञ रचने, दशों दिशा के दिक्पाल हर्षने, बादल ब्रजमण्डल पर फिरने, देवता अपने-अपने विमानों में बैठ आकाश से फूल बर्षाने, विद्याधर, गंधर्व, चारण, ढोल दमामे भेरी बजाय-बजाय गुण गाने लगे, और एक ओर उर्वशी आदि सब अप्सरा नाच रही थीं कि ऐसे समय भादों बदी अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्र में आधी रात को श्रीकृष्णचन्द्र ने जन्म लिया, और मेघवर्ण, चन्द्रमुख, कमल-नयन हो, पीताम्बर काछे मुकुट धरे, बैजन्ती माल और रत्न-जटित आभूषण पहरे चतुर्भुजरूप किये शङ्ख चक्र गदा पद्म लिये वसुदेव देवकी को दर्शन दिया। देखते ही अचम्भे में हो उन दोनों ने ज्ञान

से विचारा तो आदि पुरुष को जाना, तब हाथ जोड़ विनती कर कहा—हमारे बड़े भाग्य जो आपने दर्शन दिया, और जन्म मरण का निबेड़ा किया।

इतना कह पहिली कथा सब सुनाई, जैसे-जैसे कंस ने दुःख दिया था। तब श्रीकृष्णचन्द्र बोले—तुम अब किसी बात की चिन्ता मन में न करो, क्योंकि मैंने तुम्हारे दुःख दूर करने ही को अवतार लिया है, पर इस समय मुझे गोकुल पहुँचा दो, और इसी बिरियाँ यशोदा के लड़की हुई है, सो कंस को ला दो, अपने जाने का कारण कहता हूं सो सुनो।

दो०--नन्द यशोदा तप कियो, मोही सों मन लाय।
देख्यो चाहत बाल सुख, रहौं कछू दिन जाय॥

फिर कंस को मार आन मिलूँगा, तुम अपने मन में धैर्य्य धरो, ऐसे वसुदेव देवकी को समझाय श्रीकृष्ण बालक बन रोने लगे, और अपनी माया फैला दी। तब तो वसुदेव देवकी का ज्ञान गया और जाना कि हमारे पुत्र भया। यह समझ दश सहस्र गाय मन में सङ्कल्प कर लड़के को गोद में उठा छाती से लगा लिया, उसका मुख देख-देख दोनों लम्बी साँसें भर-भर आपस में कहने लगे—जो किसी रीति से इस लड़के को भगा दीजै तो कंस पापी के हाथ से बचे। वसुदेव बोले—

चौ० बिधना बिन राखे नहिं कोई। कर्म लिखा सोई फल होई॥
तब कर जोर देवकी कहे। नन्द मित्र गोकुल में रहे॥
पीर यशोदा हरे हमारी। नारि रोहिणी तहाँ तिहारी॥

इस बालक को वहाँ ले जाओ, यों सुन वसुदेव अकुला कर

कहने लगे कि इस कठिन बन्धन से छूट कैसे ले जाऊँ? ज्यों इतनी बात कही त्यों सब बेड़ी हथकड़ी खुल पड़ी। चारों ओर के किवाड़ खुल गये, पहरुये अचेत नींदवश भये। तब तो वसुदेव जी ने श्रीकृष्ण को सूप में रख शिर पर धर लिया और झटपट ही गोकुल को प्रस्थान किया।

सो०--ऊपर बरसे देव, पीछे सिंह जु गुञ्जरे।
शोचत है वसुदेव, यमुना देखि प्रवाह अति॥

नदी तीर खड़े हो वसुदेव विचारने लगे कि पीछे तो सिंह बोलता है, और आगे अथाह यमुना बह रही है अब क्या करूँ ऐसा कह भगवान का ध्यान धर यमुना में पैठे। ज्यों ज्यों जाते थे, त्यों त्यों नदी बढ़ती थी जब नाक तक पानी आया तब तो ये निपट घबराये, इनको व्याकुल जान श्रीकृष्ण ने अपना पाँव बढ़ाय हुँकार दिया। चरण छूते ही यमुना थाह हुई वसुदेव पार हो नन्द के पौर पर जा पहुँचे। वहाँ किवाड़ खुले पाये भीतर धस के देखें तो सब सोये पड़े हैं। देवी ने ऐसी मोहनी डाली थी कि यशोदा को लड़की के होने की भी सुधि न थी। वसुदेवजी ने कृष्ण को तो यशोदा के निकट सुला दिया और कन्या को ले चल अपना पन्थ लिया। नदी उतर फिर आये जहाँ बैठी देवकी शोचती थी तहाँ कन्या दे वहाँ की कुशल कही। सुनते ही देवकी प्रसन्न हो बोली--हे स्वामी! हमें कंस अब मार डाले तो कुछ चिन्ता नहीं क्योंकि इस दुष्ट के हाथ से पुत्र तो बचा।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने

लगे कि जब वसुदेव लड़की को ले आये तब किवाड़ ज्यों के त्यों भिड़ गये, और दोनों ने हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहर लीं, कन्या रो उठी। रोने की धुनि सुन पहरुये जागे तो अपने-अपने शस्त्र ले-ले सावधान हो, लगे तुपक छोड़ने, तिनका शब्द सुन लगे हाथी चिंघाड़ने, सिंह धहाड़ने और कुत्ते भौंकने। तिसी समय अंधेरी रात के बीच बर्षते में एक रखवाले ने हाथ जोड़ के कंस से कहा--महाराज! तुम्हारा वैरी उपजा, यह सुन कंस मूर्छित हो गिरा।

कंस-उपद्रव

बालक का जन्म सुनते ही कंस डरता काँपता उठ खड़ा हुआ, और खड्ग हाथ में ले गिरता पड़ता दौड़ा। छूटे बालों पसीने में डूबा धुकुड़ पुकुड़ करता जा बहिन के पास पहुँचा। जब उसके हाथ से लड़की छीन ली, तब वह हाथ जोड़ बोली--अब भैया! यह कन्या तेरी भानजी है इसे मत मार, यह मेरी पेट पोंछनी है। मारे हैं बालक छः तिनका दुःख मुझे अति सताता है, बिन काज कन्या को मार क्यों पाप बढ़ाता है। कंस बोला--जीती लड़की तुझे न दूँगा, जो इसे ब्याहेगा सो मुझे मारेगा। इतना कह बाहर आ ज्यों चाहे कि फिराय कर पत्थर पर पटके त्योंही हाथ से छूट कन्या आकाश को गई और पुकार के यह कह गई--अरे कंस मेरे पटकने से क्या हुआ? तेरा वैरी कहीं जन्म ले चुका, अब तू न बचेगा।

यह सुन कंस अछता पछता वहाँ आया जहाँ वसुदेव देवकी थे, आते ही उनके हाथ पाँव की हथकड़ी बेड़ी काट दी और हाथ जोड़ कर कहने लगा कि मैंने बड़ा पाप किया जो तुम्हारे पुत्र मारे। यह कलंक कैसे छूटेगा ? किस जन्म में मेरी गति होगी ? तुम्हारे देवता झूँठे हुए जिन्होंने कहा था कि देवकी के आठवें गर्भ में लड़का होगा। सो न हुआ लड़की हुई, वह भी हाथ से छूट स्वर्ग को गई। अब दया कर मेरा दोष जी में मत रक्खो क्योंकि कर्म्म का लिखा कोई मेट नहीं सकता। इस संसार में आये से जीना-मरना, संयोग-वियोग मनुष्य का नहीं छूटना, जो ज्ञानी हैं सो मरना जीना समान ही जानते हैं और अभिमानी मित्र शत्रु कर मानते हैं। तुम तो बड़े साधु सत्यवादी हो जो हमारे हेतु अपने पुत्र ले आये।

ऐसे कह जब कंस बार बार हाथ जोड़ने लगा तब वसुदेव जी बोले--महाराज ! तुम सच कहते हो इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं, विधाता ने यही हमारे कर्म्म में लिखा था। यों सुन कंस प्रसन्न हो अति हित से वसुदेव देवकी को अपने घर ले आया और भोजन करवाय वस्त्र पहिराय बड़े आदर भाव से दोनों को फेर वहीं पहुँचाय दिया और मन्त्री को बुला कर कहा कि देवी कह गई है तेरा वैरी जग में जन्मा। इससे अब देवताओं को जहाँ पाओ तहाँ मारो, क्योंकि उन्होंने मुझसे झूँठी बात कही थी कि आठवें गर्भ में तेरा शत्रु होगा। मन्त्री बोला--महाराज ! उनका मारना क्या बड़ी बात है वे तो जन्म के भिखारी हैं। जब आप कोपियेगा तभी वे भाग जायँगे, उनकी क्या सामर्थ्य है,

जो तुम्हारे सन्मुख हों; ब्रह्मा आठ पहर ज्ञान ध्यान में रहता है, महादेव भांग धतूरा खाय, इन्द्र का न कुछ तुम पर बशाय, रहे नारायण सो संग्राम नहीं जानै लक्ष्मी के साथ रहते हैं सुख माने।

कंस बोला--नारायण को कहाँ पावें और किस विधि जीतें सो कहो। मंत्री ने कहा--महाराज! जो नारायण को जीता चाहते हो तो जिनके घर में आठ पहर उनका बास है तिन ही का अब विनाश करो, ब्राह्मण, वैष्णव, योगी, यती, तपस्वी, संन्यासी, वैरागी आदि जितने हरि के भक्त हैं तिनमें लड़के से ले बूढ़े तक एक भी जीता न रहे यह सुन कंस ने प्रधान से कहा--तुम सब को जा मारो। आज्ञा पाकर मंत्री अनेक राक्षस साथ ले विदा हो नगर में जा गौ, ब्राह्मण, बालक और हरिभक्तों को छल-छलकर ढूँढ़ ढूँढ़ मारने लगा।

कृष्ण-जन्मोत्सव

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले--महाराज! एक समय नन्द यशोदा ने पुत्र के लिए बड़ा तप किया! तहाँ श्री नारायण आय वर दिया कि तुम्हारे यहाँ जन्म लेंगे। जब भादों वदी अष्टमी बुधवार को आधी रात के समय श्रीकृष्ण आये, तब यशोदा ने जागते ही पुत्र का मुख देख नन्द को बुला अति आनन्द मना और अपना जीवन सुफल जाना। भोर होते ही उठ नन्द जी ने पण्डित ज्योतिषियों को बुला भेजा, वे अपनी-अपनी पोथी पत्रे ले आये, तिन को आसन दे आदर मान से बैठाया। उन्होंने शास्त्र की विधि

से संवत्, महीना, तिथि, दिन, नक्षत्र, योग, करण ठहराय। लग्न विचार मुहूर्त साधके कहा--महाराज! हमारे शास्त्र के विचार में तो ऐसा ही आता है, कि यह लड़का दूसरा विधाता हो, सब असुरों को मार ब्रज का भार उतार गोपीनाथ कहावेगा, सारा संसार इसी का यश गावेगा।

यह सुन नन्द जी ने कञ्चन के शृङ्ग, रूपे के खुर, तामे की पीठ समेत दो लाख गौ पाटम्बर उढ़ाय सङ्कल्प कीं और अनेक दान ब्राह्मणों को दे आशीश ले २ विदा किया। तब नगर के सब मङ्गला-मुखियों को बुलाया, वे आय-आय अपना-अपना गुण प्रकाश करने लगे। बाजन्त्री बजाने, नर्तक नाचने, गायक गाने ढाढ़ी ढाढ़िन यश बखानने, और जितने गोकुल के गोप ग्वाल थे, वे भी अपनी रानियों के शिर पर दहेड़ियाँ लिवाय भाँति भाँति के भेष बनाये, नाचते गाते नन्द को बधाई देने आये। आते ही ऐसा दधिकाँदौ किया कि सारे गोकुल में दही २ कर दिया, जब दधिकाँदौ खेल चुके, तब नन्द जी ने सब को खिलाय पिलाय वस्त्र पहिराय तिलक कर पान दे विदा किया।

इसी रीति से कई दिन तक बधाई रही। इसी बीच नन्द जी से जिसने जो २ आय आय माँगा सो २ पाया। बधाई से निश्चिन्त हो नन्द जी ने सब ग्वालों को बुलाय के कहा--भाइयो! हम ने सुना है कि कंस बालक पकड़ मँगवाता है, न जानिये कोई दुष्ट कुछ बात लगा दे, इस से उचित है कि सब मिल भेंट ले चलें और बरसौड़ी दे आवें। यह वचन मान सब अपने २ घर से दूध दही, माखन और रुपये लाये, गाड़ी में लाद २ नन्द के

साथ हो गोकुल से चल मथुरा आये, कंस से भेंट कर भेंट दी, कौड़ी २ चुकाय अपनी विदा हो अपनी बाट ली।

ज्योंही यमुना तीर पै आये, त्योंही समाचार सुन वसुदेव जी आ पहुँचे, नन्द जी से मिल कुशल क्षेम पूँछ कहने लगे तुम सा सगा और मित्र हमारा संसार में कोई नहीं क्योंकि जब हमें भारी विपत्ति भई, तब गर्भवती रोहिणी तुम्हारे यहाँ भेज दी, उसके लड़का हुआ सो तुमने पाल बड़ा किया, हम तुम्हारा गुण कहाँ तक बखानें इतना कह फेर पूछा कहो राम कृष्ण और यशोदा रानी आनन्द से हैं ? नन्द जी बोले--आप की कृपा से सब भले हैं, और हमारे जीवनमूल तुम्हारे बलदेव जो भी कुशल से हैं, कि जिन के होते ही तुम्हारे पुण्य प्रताप से हमारे पुत्र हुआ पर एक तुम्हारे ही दुःख से हम दुःखी हैं। वसुदेव कहने लगे--मित्र ! विधाता से कुछ न वश आवै, कर्म्म की रेखा किसी से मेटी न जाय, इस से संसार में आय दुःख पीर पाय, कौन पछताय, ऐसा ज्ञान जनाय के कहो।

चौ०--तुम घर जाहु वेग आपने। कीन्हें कंस उपद्रव घने॥
बालक ढूँढ़ मँगावे नीच। हुई साधु पर जाकी मीच॥

तुम तो सब यहाँ चले आये हो, और कंस के दूत ढूँढते फिरते हैं। न जानिये कोई दुष्ट जाय गोकुल में उपाधि मचावे। यह सुनते ही नन्द जी अकुला कर सब को साथ लिए शोचते मथुरा से गोकुल को चले।

विश्व-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले—हे राजा! एक दिन वसुदेव जी ने गर्ग मुनि को जो बड़े ज्योतिषी और यदुवंशियों के पुरोहित थे, बुला कर कहा कि तुम गोकुल जा लड़के का नाम रख आओ।

दो०—गई रोहिणी गर्भ सों, भयो पूत है ताहि।
कितो आयु कैसा वली, कहा नाम ता आहि॥

और नन्द जी का पुत्र हुआ है सो भी तुम्हें बुलाय गये है। सुनते ही गर्ग मुनि प्रसन्न हो चले और गोकुल के निकट जा पहुंचे। तिसी समय किसी ने नन्द जी से आ कहा कि यदुवंशियों के पुरोहित गर्ग मुनि जी आते हैं। यह सुन नन्द जी आनन्द से ग्वाल बाल संग कर भेंट ले उठधाये। और पाटम्बर के पाँवड़े डालते बाजे गाजे से ले आये। पूजा कर आसन पर बैठाय, चरणामृत ले, स्त्री पुरुष हाथ जोड़ कहने लगे—महाराज! बड़े भाग्य हमारे जो आपने दया कर दर्शन दे घर पवित्र किया। तुम्हारे प्रताप से दो पुत्र हुए हैं, एक रोहिणी के एक हमारे, कृपा कर तिनका नाम धरिये। गर्ग मुनि बोले—ऐसे नाम रखना उचित नहीं, क्योंकि जो यह बात फैले कि गर्ग मुनि गोकुल में लड़कों के नाम धरने गये हैं, और कंस सुन पावै तो वह यह जानेगा कि देवकी के पुत्र को वसुदेव के मित्र के यहाँ कोई पहुँचा आया है। इसी लिये गर्ग पुरोहित गया है, यह समझ मुझे पकड़ मँगावेगा। और न जानिये तुम पर भी क्या उपाधि लावै, इससे तुम फैलाव कुछ मत करो, चुपचाप घर में नाम धरवा लो।

नन्द बोले--गर्ग जी ! तुमने सच कहा। इतना कह घर के भीतर ले जाय बैठाया। तब गर्ग जी ने नन्द जी से दोनों की जन्म-तिथि और समय लग्न साध नाम ठहराय कहा--सुनो नन्द जी ! वसुदेव की नारी रोहिणी के पुत्र के तो इतने नाम होयँगे--संकर्षण, रेवतीरमण, बलदाऊ, बलराम, कालिन्दीभेदन, हलधर, बलवीर ! और कृष्ण-रूप जो तुम्हारा लड़का है उसके नाम तो अगणित हैं, पर किसी समय वसुदेव के यहाँ जन्मा इससे वासुदेव नाम हुआ। और मेरे विचार में आया है कि, ये दोनों बालक तुम्हारे चारों युगों में जब जन्मे हैं तब साथ ही जन्मे हैं।

नन्द जी बोले--इनके गुण कहो। गर्ग मुनि ने उत्तर दिया--ये दूसरे विधाता हैं। इनकी गति कुछ जानी नहीं जाती, पर मैं यह जानता हूँ, कंस को मार भूमि का भार उतारेंगे। ऐसे कह गर्ग मुनि चुपचपाते चले गये, और वसुदेव से जा सब समाचार कहे।

आगे दोनों बालक गोकुल में दिन २ बढ़ने लगे, और बाल-लीला कर कर नन्द यशोदा को सुख देने लगे। नीले, पीले, झंगले पहने, माथे पर छोटी छोटी लटुरियाँ बिखरी हुईं, यंत्र गंडे बाँधे, कठले गले में डाले, खिलौने हाथों में लिये, खेलते आँगन के बीच घुटनों बल चल २ गिर गिर पड़ें और तोतली २ बातें करें। रोहिणी और यशोदा पीछे लागी फिरें, इसलिये कि कहीं लड़के किसी से डर ठोकर खा न गिरें। जब छोटे २ बछड़ों और बछियाओं की पूँछ पकड़ २ उठें और गिर २ पड़ें, तब यशोदा और रोहिणी अति प्यार से उठाय छाती से लगाय दूध पिलाय भाँति २ के लाड़ लड़ावें।

जब श्रीकृष्ण बड़े भये तो एक दिन ग्वाल बाल साथ ले व्रज में दधि माखन की चोरी को गये।

चौ०--सूने घर में ढूँढ़ैं जाय। जो पावैं सो देयँ लुटाय।।

जिनको घर में सोते पावें तिनकी धरी ढँकी दहेड़ी उठा लावैं जहाँ छीके पर रक्खा देखें, तहाँ पीढ़े पर पटरा, पटरे पै उलूखल धर साथी को खड़ा कर उसके ऊपर चढ़ उतार लें, कुछ खावें और कुछ लुटाय दें, ऐसे गोपियों के घर घर नित्य चोर कर आवै।

एक दिन सब ने मता किया, और गेह में मोहन को आने दिया। ज्यों घर भीतर पैठा चाहैं, कि माखन दही चुरावैं, तो गोपियों ने जाय पकड़ कर कहा--दिन २ आते थे निशि भोर; अब कहाँ जाओगे माखन चोर! यों कह सब गोपी मिल कन्हैया को लिये यशोदा के पास उलहना देने चलीं, तब श्रीकृष्ण ने ऐसा छल किया कि उसके लड़के का हाथ उसे पकड़ा दिया, और आप दौड़ अपने ग्वाल बालों का संग लिया। वे चलीं २ नन्दरानी के निकट आय पाँवों पड़ बोलीं--जो तुम बुरा न मानो तो हम कहैं, जैसी कुछ उपाधि कृष्ण ने ठानी है।

दो०--दूध दही माखन मही, बचै नहीं व्रज मांझ।
ऐसी चोरी करत हैं, फिरत भोर अरु सांझ।।

जहाँ कहीं धरा पाते हैं, तहाँ से निधड़क उठा लाते हैं, कुछ खाते हैं और लुटाते हैं, जो कोई इनके मुख में दही लगा बतावे उसे उलट कर कहते हैं, तूनेई तो लगाया है। इस भाँति नित चोरी कर आते थे। आज हमने पकड़ पाया, सो तुम्हें

दिखाने लाई हैं। यशोदा बोली--बहिन तुम किसका लड़का पकड़ लाई, कल से तो मेरा कुँवर कन्हाई घर से बाहर भी नहीं निकला। ऐसा ही सच बोलती हो? यह सुन और अपना ही बालक हाथ में देख, वह हँस कर लजाय रही, तब यशोदा जी ने कृष्ण को बुलाय के कहा--पुत्र! तुम किसी के यहाँ मत जाओ जो चाहिये सो घर में से ले खाओ।

चौ०-सुन के कान्ह कहत तुतराय। मत मैया तू इन्हैं पतियाय॥
झूंठी गोपी झूंठी बोलैं। मेरे पीछे लागी डोलैं॥

कभी दोहनी बछड़ा पकड़वाती हैं। कभी घर की टहल कराती हैं, मुझे द्वारे रखवाली बैठाय अपने काज को जाती हैं। झूठ मूठ आय तुम से बातें लगाती हैं। यह सुन गोपी हरि मुख देख देख मुस्करा कर चली गई।

आगे एक दिन कृष्ण बलराम सखाओं के संग घर में खेलते थे, कि जो कान्ह ने मट्टी खाई, तो एक सखा ने यशोदा से जा लगाई। यह क्रोध कर हाथ में छड़ी ले उठ धाई, माँ को रिस भरी आती देख मुँह पोंछ कर डर कर खड़े हो रहे, इन्होंने जाते ही कहा, क्यों रे तूने माटी क्यों खाई? कृष्ण डरते काँपते बोले--माँ! तुझ से किसने कहा? ये बोली तेरे सखा ने? तब मोहन ने कोप कर सखा से पूँछा--क्यों रे मैंने मट्टी कब खाई है? वह डरि कर बोला--भैया! मैं तेरी बात कुछ नहीं जानता, क्या कहूँगा? जो कान्ह सखा से बतराने लगे, तो यशोदा ने उन्हें जा पकड़ा। तब कृष्ण कहने लगे—मैया तू मत रिसाय, कहीं मनुष्य भी मट्टी खाते हैं? वह बोली—मैं तेरी अटपटी बात नहीं

सुनती जो सच्चा है, तो अपना मुख दिखा। ज्यों श्रीकृष्ण ने मुख खोला तो उस में तीन लोक दृष्टि आये, तब यशोदा को ज्ञान हुआ, तो मन में कहने लगी, कि मैं बड़ी मूर्ख हूँ, जो त्रिलोकी के नाथ को अपना सुत कर मानती हूँ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी राजा परीक्षित से बोले— हे राजा! जब नन्दरानी ने ऐसा जाना, तब हरि ने अपनी माया फैलाई, इतने में मोहन को यशोदा प्यार कर कण्ठ लगाय घर ले आई।

दाम-बन्धन

एक दिन दही मथने की बिरियाँ जान भोर ही नन्दरानी उठीं, और सब गोपियों को जगाय बुलाय ले आय झाड़ बुहार लीप पोत अपनी मथनियाँ ले ले दही मथने लगीं। तहाँ नन्द महरि भी एक बड़ा सा कोरा चरुआ ले एडुए पर रख चौकी बिछनेती रई मँगाय टटकी २ दहेड़ियाँ बाँछ बाँछ रामकृष्ण के लिये बिलोवन बैठी। तिस समय नन्द के घर में ऐसा शब्द दही मथने का हो रहा था, कि जैसे मेघ गरजता हो। इतने में कृष्ण जागे तो रो रो माँ माँ कर पुकारने लगे। उनका पुकारना किसी ने न सुना तब आप ही यशोदा के निकट आये, और आँखें डबडबाय अनमने हो सुसक सुसक तुतलाय तुतलाय कहने लगे कि माँ, तुझे कै बेर बुलाया? पर मुझे कलेऊ देने न आई, तेरा काज अब तक नहीं निबड़ा। इतना कह मचल पड़े, रई चरुए से निकाल दोनों हाथ डाल लगे माखन काढ़ काढ़

फेंकने, आँगन लथेड़ने और पाँव पटक पटक आँचल खैंच २ रोने; तब नन्दरानी घबराय झुँझलाय के बोली—बेटा यह क्या चाल निकाली है।

चौ०—चल उठ तुझे कलेऊ दूँ। कृष्ण कहै अब मैं नहिं लूँ॥
पहिले क्यों नहिं दीनों माय। अब तो मेरी लेय बलाय॥

निदान यशोदा ने फुसलाय प्यार से मुँह चूँम गोद में उठा लिया! और दधि माखन रोटी खाने को दिया, हरि हँस २ खाते थे नन्द महरि अँचल के ओट किये खिला रही थी, इसलिये कि मत किसी की दीठ लगे।

इस बीच एक गोपी ने आ कहा कि तुम तो यहाँ बैठी हो वहाँ चूल्हे पर से सब दूध उफन गया। यह सुनते ही झट कृष्ण को गोद से उतार उठ धाई और जाके दूध बचाया। यहाँ कान्ह दही मही के भाजन फोड़ रई तोड़ माखन भरी कमोरी ले ग्वाल बालों में आये। एक उलूखल औंधा धरा पाया तिस पर जा बैठे। और चारों ओर सखाओं को बैठाय लगे आपस में हँस २ बाँट २ माखन खाने।

इतने में यशोदा दूध उतार आय देखें तो आँगन और तिवारे में दही मही की कीच हो रही है। तब तो सोच समझ हाथ में छड़ी ले निकली. और ढूँढ़ती २ वहाँ आई जहाँ श्रीकृष्ण मण्डली बनाये, माखन खाय खिलाय रहे थे, जाते ही पीछे से जो कर धरा, तो हरि माँ को देखते ही रोकर हा हा खाय लगे कहने कि माँ गोरस किसने लुटाया, मैं नहीं जानूँ मुझे छोड़दे। ऐसे दीन वचन सुन यशोदा हँस कर हाथ से छड़ी डाल, और आनन्द में

मग्न हो रिस के मिस कण्ठ लगाय, घर लाय कृष्ण को ऊखल मे बाँधने लगी। तब श्रीकृष्ण ने ऐसा किया कि जिस रस्सी मे बाँधे वही छोटी होय। यशोदा ने सारे घर की रस्सियाँ मँगाई तौ भी बाँधे न गये। निदान माँ को दुःखित जान आप ही बँधाई दिये। नन्दरानी बाँध गोपियों को खोलने की सौंह दे फिर घर की टहल करने लगी।

प्रलम्ब-वध

इतनी कथा कह शुकदेव जी बोले—महाराज! अब मैं ऋतु वर्णन करता हूँ, कि जैसे श्री कृष्णचन्द्र ने तिन में लीला करी सो चित्त दे सुनों,प्रथम ग्रीष्म ऋतु आई, उसने आते ही सब संसार का सुख ले लिया, और धरती आकाश को तपाय अग्निसम किया, पर कृष्ण के प्रताप से वृन्दावन में सदा बसन्त ही रहै, जहाँ घने २ कुञ्जों के वृक्षों पर वेलें लहलहा रहीं, वर्ण २ के फूल फूले हुए तिन पर भौंरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, आमों की डालियों पर कोयल कुहुक रही। ठण्डी २ छाहीं में मोर नाच रहे, सुगन्ध लिए मीठी २ पवन बह रही, और एक ओर बन के यमुना न्यारी हो शोभा दे रही थी। तहाँ कृष्ण बलराम गाय छोड़ सब सखा समेत आपस में अनूठे २ खेल खेल रहे थे कि इतने में कंस का पठाया ग्वाल का रूप बनाय प्रलम्ब नाम राक्षस आया। उसे देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र ने बलराम जी को सैन से कहा।

चौ०--अपनो सखा नहीं बल बीर। कपट रूप यह असुर शरीर॥

याके बध को करो उपाय। ग्वाल रूप मारो नहिं जाय॥
जब यह राखै रूप आपनो। तब तुम याही तत्च्छण हनो॥

इतनी बात बलदेव जी को जनाय कृष्ण जी ने प्रलम्ब को हँस कर पास बुलाय हाथ पकड़ के कहा।

चौ०--सबते नीको भेष तिहारो। भलो कपट बिन मित्र हमारो।

यों कह उसे साथ ले आधे ग्वालबाल बाँट लिये। और आधे बलराम जी को दे, दो लड़कों को बैठाय लगे फल फूलों का नाम बताने और पूँछने। इसमें बताते २ कृष्ण हारे, बलदेव जीते। तब कृष्ण की ओर वाले बलदेव जी के साथियों को काँधे पर चढ़ाय ले चले, तहाँ प्रलम्ब बलराम जी को सब के आगे ले भागा और बन में जाय उसने अपनी देह बढ़ाई। तिस समय उस काले २ पहाड़ से राक्षस पर बलदेव जी ऐसे शोभायमान थे, जैसे श्याम घटा पर चन्द्रमा और कुण्डल की दमक बिजली सी चमकती थी, पसीना मेह सा बर्षता था। शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि--महाराज! ज्यों अकेला पाय वह बलराम जी को मारने को हुआ त्यों ही उन्होंने मारे घूँसों के उसे मार गिराया।

वर्षा-शरद ऋतु वर्णन

श्रीशुकदेव मुनि बोले--महाराज! ग्रीष्म की अति अनीति देख नृप पावस प्रचण्ड पृथ्वी के पशु पक्षी जीव जन्तुओं की दया विचार चारों ओर से दल बादल साथ ले लड़ने को चढ़ आया। तिस समय घन जो गर्जता था सोई तौ धौंसा बाजता था और वर्ण २ की घटा जो घिर आई थीं, सोई शूरवीर रावत थे,

तिनके वीच बिजली की दमक शस्त्र की सी चमक थी, बगपाँत ठौर २ ध्वजा सी फहराय रही थी, दादुर मोर कड़खेतों की सी भाँति यश वखानते थे और बड़ी २ बूँदों की सी झड़ी लगी। इस धूम-धाम से पावस को आते देख, ग्रीष्म खेत छोड़ अपना जी ले भागा। उस काल वृन्दावन की भूमि ऐसी सुहावनी लगती थी कि जैसे शृङ्गार किये कामिनी और जहाँ तहाँ नदी, नाले, सरोवर भरे हुये तिन पर हंस, सारस शोभा दे रहे, ऊँचे-ऊँचे रुखों की डालियाँ झूम रहीं, उनमें पिक, चातक, कपोत, कीर, बैठे कोलाहल कर रहे थे और ठाँव-ठाँव सूहे कुसुम्भे जोड़े पहरे गोपी ग्वाल झूलों पर झूल-झूल ऊँचे सुरों से मलारें गाते थे। उनके निकट जाय २ श्रीकृष्ण बलराम भी वाललीला कर २ अधिक सुख दिखाते थे। इस आनन्द से वर्षा ऋतु बीती, तब श्रीकृष्ण ग्वालबालों से कहने लगे—कि भैया अब तो सुखदाई शरद ऋतु आई।

चौ०—सबको सुख भारी अब जान्यो। स्वाद सुगन्ध रूप पहिचान्यो॥
निशि नक्षत्र उज्ज्वल आकाश। मानहुँ निर्गुण ब्रह्म प्रकाश॥
चारि मास जो बिरमें गेह। भये शरद तिन तजे सनेह॥
अपने अपने काजन धाये। भूप चढ़े तकि देश पराये॥

वरुणलोकगमन, वैकुण्ठ चरित्र

शुकदेव जी बोले कि—महाराज! एक दिन नन्द जी ने संयम कर एकादशी व्रत किया, दिन तो स्नान, ध्यान, भजन, जप, पूजा में काटा और रात्रि जागरण में बिताई। जब छः घरी रात रही

और द्वादशी भई तब उठ के देह शुद्ध कर भोर हुआ जान धोती अँगोछा झारी ले यमुना नहाने चले तिनके पीछे कई एक ग्वाल भी हो लिये। तीर जाय प्रणाम कर कपड़े उतार नन्द जी जो नीर में बैठे तो वरुण के सेवक जो जल की चौकी देते थे कि कोई रात को नहाने न पावे, उन्होंने जा वरुण से कहा कि--महाराज! कोई इस समय यमुना में नहाय रहा है हमें क्या आज्ञा होती है? वरुण बोला--उसे अभी पकड़ लाओ। आज्ञा पाते ही सेवक फिर वहाँ आये जहाँ नन्द जी स्नान कर जल में खड़े तप करते थे। आते ही अचानक नाग फाँस डाल नन्द जी को वरुण के पास ले गये तब नन्द जी के साथ जो ग्वाल गये थे तिन्होंने आय कृष्ण से कहा कि–महाराज! नन्दराय जी को वरुण के गण यमुना तीर से पकड़ वरुणलोक को ले गये। इतनी बात के सुनते ही श्री गोविन्द क्रोध कर धाये और पल भर में वरुण के पास जा पहुँचे, इन्हें देखते ही वह उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ विनती कर बोला:—

चौ०–सुफल जन्म है आज हमारो। पायो यदुपति दरश तुम्हारो॥
कीजै दोष दूर सब मेरे। नन्द पिता इस कारण घेरे॥
तुमको सबके पिता बखाने। तुम्हरे पिता नहीं हम जाने॥

रात को नहाते देख अनजाने गण पकड़ लाये, भला इसी मिस मैंने दर्शन आपका पाया। अब दया कीजै, मेरा दोष चित्त में न लीजै। ऐसे अति दीनता कर बहुत सी भेंट लाय नन्द और कृष्ण के आगे धर जब वरुण हाथ जोड़ शिर नाय सन्मुख खड़ा हुआ तब कृष्ण भेंट ले पिता को साथ लेकर वहाँ से चल वृन्दाबन आये,

इनको देखते ही सब व्रजवासी आय मिले। तिस समय बड़े गोपों ने नन्दराय से पूँछा कि, तुम्हें वरुण के सेवक कहाँ ले गये थे? नन्द जी बोले—सुनो, वे वहाँ से पकड़ मुझे वरुण के पास ले गये तोंही यहाँ से कृष्ण पहुँचे इन्हें देखते ही वह सिंहासन से उतर पाँवों पर गिर विनती कर कर कहने लगा— नाथ! मेरा अपराध क्षमा कीजै मुझसे अनजाने यह दोष हुआ, सो चित्त में न लीजै। इतनी बात नन्द जी के मुख से सुनते ही गोप आपस में कहने लगे—कि भाई! हमने तो यह तभी जाना था, जब कृष्णचन्द्र ने गोवर्द्धन धारण कर व्रज की रक्षा करी कि नन्द महर के घर में आदि पुरुष ने आ अवतार लिया है।

ऐसे आपस में बतराय फिर सब गोपों ने हाथ जोड़ कृष्ण से कहा कि—महाराज! आपने हमें बहुत दिन भरमाया पर अब सब तुम्हारा भेद पाया, तुम्हीं जगत् के करता दुःखहर्त्ता हो, त्रिलोकी-नाथ दया कर वह हमें वैकुण्ठ दिखाइये। इतना वचन सुन कृष्ण जी ने क्षण भर में वैकुण्ठ रच उन्हें व्रज ही को दिखाया। देखते ही व्रजवासियों को ज्ञान हुआ, तो कर जोड़ सिर झुकाय के बोले—हे नाथ! तुम्हारी महिमा अपरम्पार है। हम नहीं कह सकते, पर आपकी कृपा से आज हमने यह जाना कि तुम नारायण हो भूमि का भार उतारने को संसार में जन्म ले आये हो शुकदेव जी बोले कि—महाराज! जब व्रजवासियों ने इतनी बात कही तभी कृष्णचन्द्र ने सबको मोहित कर जो वैकुण्ठ की रचना रची थी सो उठाय ली, और अपनी माया फैलादी, तो सब गोपों ने अपना सा जान और नन्द जी ने माया के वश हो कृष्ण को अपना पुत्र ही कर माना।

कंस नारद-संवाद

शुकदेव जी बोले कि—महाराज! एक दिन कृष्णचन्द्र बलराम साँझ समय धेनु चराय बन से घर को आते थे, इस बीच एक असुर अति बड़ा बैल बन आय गायों में मिला।

चौ०—आकाश लौं देह तिह धरी। पीठ कड़ी पाथर सी करी॥
बड़े सींग तीक्ष्ण दोउ खरे। रक्त नयन अति ही रिस भरे॥
पूँछ उठाय डकारत फिरै। रहि रहि भूतल गोबर करै॥
फड़के कन्ध हिलावै कान। भजे देव सब छोड़ि विमान॥
खुर सों खोदे नदी करारे। पर्वत उथल पीठ सों डारे॥
सब को त्रास भयो तिहिं काल। काँपै लोक पाल दिग पाल॥
पृथ्वी हलै शेष थर हरैं। त्रिय औ धेनु गर्भ भू परैं॥

उसे देखते ही सब गायें जिधर तिधर फैल गईं, और ब्रजवासी दौड़ वहाँ आये, जहाँ सब से पीछे कृष्ण बलराम चले आते थे। प्रणाम कर कहा—महाराज! आगे एक बड़ा बैल खड़ा है। उससे हमें बचाओ, इतनी बात के सुनते ही अन्तर्य्यामी श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, तुम कुछ मत डरो उससे, वह नीच हमसे अपनी मीच चाहता है, वृषभ का रूप बनकर आया है। इतना कह आगे जाय उसे देख बोले बनमाली, कि आव हमारे पास, तू और किसी को क्यों डराता है, मेरे निकट किस लिए नहीं आता है। जो वैरी सिंह का कहावता है सो मृग पर नहीं धावता। देख मैं हूँ कालरूप गोविन्द. मैंने तुझ से बहुतों को मार दिया है।

यों कह फिर ताल ठोंक ललकारे, आ मुझसे संग्राम कर। यह वचन सुनते ही असुर ऐसा क्रोध कर धाया कि मानों इन्द्र का वज्र आया। ज्यों ज्यों हरि उसे हटाते थे, त्यों त्यों वह सँभल सँभल बढ़ा आता था। एक बार त्योंही उन्होंने उसे दे पटका, त्योंही खिजला कर उठा और दोनों सीगों में उसने हरि को दबाया, तब तो श्रीकृष्ण जी ने भी फुरती से निकल झट पाँव पर पाँव दे उसके सींग पकड़ यों मरोड़ा कि जैसे कोई भीगे चीर को निचोड़े। निदान वह पछाड़ खाय गिरा और उसका जी निकल गया। तिस समय सब देवता लगे अपने अपने विमानों में बैठ आनन्द से फूल वर्षाने और गोपी गोप कृष्ण यश गाने। इस बीच राधिका जी ने आ हरि से कहा कि--महाराज! वृषभ रूप जो तुमने मारा इसका पाप हुआ। इससे अब तुम तीर्थ नहाय आवो, तब किसी को हाथ लगाओ। इतनी बात के सुनते ही प्रभु बोले कि, सब तीर्थों को मैं ब्रज ही में बुलाय लेता हूँ। यों कह गोवर्द्धन के निकट जाय दो औंड़े कुण्ड खुदवाये, तहीं सब तीर्थ देह धर आये, और अपना अपना नाम कह उनमें जल डाल २ चले गये। तब कृष्णचन्द्र उनमें स्नान कर बाहर आ अनेक गोदान दे बहुत से ब्राह्मण जिमाय शुद्ध हुये। और उसी दिन से कृष्णकुण्ड राधाकुण्ड करके वे प्रसिद्ध हुए।

यह प्रसंग सुनाय शुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! एक दिन नारद मुनि जो कंस के पास आये। और उसका कोप बढ़ाने को जब उन्होंने बलराम और श्याम के होने और माया के आने और कृष्ण के जाने का भेद समझा कर कहा,

तब कंस क्रोध करके बोला—नारद जी, तुम सत्य कहते हो:—

दो०--प्रथम दियो सुत आनि कै, मन परतीत बढ़ाय।
ज्यों ठग कछू दिखाइ कै, सर्वस ले भजि जाय॥

इतना कह वसुदेव को बुलाय पकड़ बाँधा और खाँड़े पर हाथ रख अकुला कर बोला:—

चौ०--मिला रहा कपटी तू मुझे। भला साधु जाना मैं तुझे॥
दिया नन्द के कृष्ण पठाय। देवी हमें दिखाई आय॥
मन में कछू कहौ मुख और। आज अवशि मारूँ यहि ठौर॥
मित्र सगा सेवक हितकारी। करे कपट सो पापी भारी॥

दो०--मुख मीठा मन विष भरा, रहै कपट के हेत।
आप काज परद्रोहिया, उससे भला जो प्रेत॥

ऐसे बक झक फिर कंस नारद जी से कहने लगा कि—महाराज! कुछ इनके मन का भेद हमने न पाया, लड़का हुआ और कन्या को ला दिखाया। जिसे कहा अधूरा गया, सोई जा गोकुल में बलदेव भया। इतना कह क्रोध कर होठ चबाय खड्ग उठाय जो चाहा कि वसुदेव को मारूँ, तो नारद मुनि ने हाथ पकड़ कर कहा--राजा! वसुदेव को तू आज रख, और जिसमें कृष्ण बलदेव आवें सो काज कर। ऐसे समुझाय बुझाय जब नारद मुनि चले गये तब कंस ने वसुदेव देवकी को तो एक कोठरी में मूँद दिया और आप भयातुर हो केशी नाम राक्षस को बुलाके बोला:-

चौ०--महाबली तू साथी मेरा। बड़ा भरोसा मुझको तेरा।
एक बार तू ब्रज में जा। राम कृष्ण हति मुझे दिखा॥

इतना वचन सुनते ही, केशी तो आज्ञा पा विदा हो दण्डवत् कर वृन्दावन को गया, और कंस ने शल, तोशल, चाणूर, अरिष्ट, व्योमासुर आदि जितने मंत्री थे, सबको बुलाय भेजा। वह आय तिन्हें समझा कर कहने लगा कि मेरा बैरी पास आय बसा है। तुमने अपने जी में सोच विचार करके मेरे मन का शूल जो खटकता है निकालो। मंत्री बोले—पृथ्वीनाथ! आप महाबली हो किससे डरते हो, राम कृष्ण का मारना क्या बड़ी बात है। कुछ चिन्ता मत करो। जिस छल बल से ये यहाँ आवें सोई हम मता बतावें।

पहिले तो यहाँ भली भाँति से एक ऐसी सुन्दर रङ्गभूमि बनवावें, कि जिसकी शोभा सुनते ही देखने को नगर २ गाँव २ के लोग उठ धावें। पीछे महादेव का यज्ञ कराओ, होम के लिये बकरे भैंसे मंगवाओ, यह समाचार सुन सब व्रजवासी भेंट लावेंगे, जिनके साथ राम कृष्ण भी आवेंगे। तभी कोई मल्ल पछाड़ेगा, कै कोई और ही बली पौर पै मार डालेगा, इतनी बात के सुनते ही,

सो०—कहै कंस सन लाय, भलो मती मन्त्री दियो।
लीने मल्ल बुलाय, आदर कर बीरा दियो॥

फिर सभा कर अपने बड़े २ राक्षसों से कहने लगा कि, जब हमारे भानजे राम कृष्ण यहाँ आवें तब तुम में से कोई उन्हें मार डालियो, जो मेरे जी का खटका जाय। उन्हें यों समझाय पुनि महावत को बुलाय के बोला कि तेरे वश में मतवाला हाथी है तू द्वार पर लिए खड़ा रहना। जब वे दोनों आवें द्वार में पाँव दें तब

तुम हाथी से चिरवा डालियो। किसी भाँति भागने न पावें, जो दोनों को मारेगा सो मुँह माँगा धन पावैगा।

ऐसे सब को सुनाय समझाय बुझाय, कार्तिक वदि चौदस को शिव का यज्ञ ठहराय, कंस ने साँझ समय अक्रूर को बुलाय अति भाव भक्ति कर घर के भीतर ले जाय एक सिंहासन पर अपने पास बैठाय, हाथ पकड़ अति प्यार से कहा कि तुम यदुकुल में सब से बड़े ज्ञानी धर्म्मात्मा धीर हो, इस लिए तुम्हें सब जानते मानते हैं, ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें देख सुखी न होय। इससे जैसे इन्द्र का काज वामन ने जा किया, जो छल कर बलि का सारा राज्य ले लिया। और राजा बलि को पाताल पठाया, तैसे तुम हमारा काम करो, तो एक बेर वृन्दावन जाओ और देवकी के दोनों लड़कों को जैसे बने तैसे छल बल कर यहाँ ले आओ। कहा है जो बड़े हैं, सो आप दुःख सह पराया काज करते हैं, तिस में तुम्हें तो सब बात की लाज हमारी है, अधिक क्या कहें, जैसे बने तैसे उन्हें ले आओ, तो यहाँ सहज ही में मारे जायँगे। कै तो चाणूर पछाड़ेगा, कै कुवलयापीड़ गज पकड़ चीर डालेगा। नहीं तो मैं ही उठ मारूँगा अपना काज अपने हाथ सवाँरूँगा, और उन दोनों को मार पीछे उग्रसेन को हनूँगा, क्योंकि वह बड़ा कपटी है, मेरा मरना चाहता है। फिर देवकी के पिता देवक को आग से जलाय पानी में डुबोऊँगा, साथ ही उसके वसुदेव को मार हरिभक्तों को जड़ से खोऊँगा, तब निष्कण्टक राज्य कर जरासन्ध जो मेरा प्रचण्ड मित्र है उसके त्रास से नवखण्ड काँपते हैं और नरकासुर, बाणासुर आदि बड़े २ महाबली राक्षस जिसके

सेवक हैं, तिससे जा मिलूँगा। जो तुम राम कृष्ण को ले आओ।

इतनी बातें कह कंस फिर अक्रूर को समझाने लगा कि, तुम वृन्दावन में जाय नन्द के यहाँ कहियो कि शिव का यज्ञ है, धनुष धरा है, और अनेक २ प्रकार के कुतूहल वहाँ होयेंगे। यह सुन नन्द उपनन्द गोपों समेत बकरे भैंसे ले भेंट देने आवेंगे, तिनके साथ देखने को कृष्ण बलदेव भी आवेंगे। यह तो मैंने तुम्हें उनके लाने का उपाय बताय दिया। आगे तुम सज्ञान हो जो और उचित बनि आवै सो करियो, अधिक तुम से क्या कहें, कहा:—

सो०—होय विचित्र वसीठ, जाहि बुद्धिबल आपनो।
पर कारज पर दीठ, करहिं भरोसो ताहि को।।

इतनी बात के सुनते ही पहले तो अक्रूर ने अपने जी में विचारा कि जो मैं अब इसे कुछ भली बात कहूँगा, तो यह न मानेगा। इससे उत्तम यही है कि इस समय इसके मनभाती सुहाती बात कहूँ, ऐसे और भी ठौर कहा है, कि वही कहिये जो जिसे सुहाय। यों सोच विचार अक्रूर हाथ जोड़ शिर झुकाय बोला—महाराज! तुमने भला मता किया, यह वचन हमने भी शिर चढ़ाय मान लिया, होनहार पर कुछ वश नहीं चलता। मनुष्य अनेक मनोरथ कर धावता है, पर कर्म का लिखा ही फल पावता है। सोचते कुछ हैं और होता कुछ है, और किसी के मन का चेता होता नहीं। आगम बाँध तुमने यह बात विचारी है, न जानिये कैसी होय, मैंने तुम्हारी बात मान ली। कल भोर को जाऊँगा,

और रामकृष्ण को ले आऊँगा। ऐसे कह कंस से विदा हो अक्रूर अपने घर आया।

अक्रूर-वृन्दावन गमन

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! कार्त्तिक वदि त्रयोदशी को भोर के तड़के ही अक्रूर कंस के पास आय विदा हो रथ पर चढ़ अपने मन में यों विचारता वृन्दावन को चला कि ऐसा मैंने क्या जप, तप, यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत किया है, कि जिसके पुण्य से यह फल पाऊँगा, अपने जान तो इस जन्म भर कभी हरि का नाम नहीं लिया, सदा कंस की संगति में रहा, भजन का भेद कहाँ पाऊँ। हाँ, अगले जन्म कोई बड़ा पुण्य किया हो उस धर्म के प्रताप का यह फल हो तो हो। जो कंस ने मुझे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्द कन्द के लेने को भेजा है, तो अब जाय उनका दर्शन पाय जन्म सुफल करूँगा।

महाराज! ऐसे विचार फिर अक्रूर अपने मन में कहने लगा कि, कहीं मुझे वे कंस का दूत न समझें? फिर आप ही सोचा कि जिनका नाम अन्तर्य्यामी है, वे तो मन की प्रीति मानते हैं, और सब मित्र शत्रु को पहचानते हैं। ऐसा कभी न समझेंगे, वरन् मुझे देखते ही गले लगाय दया कर अपना कोमल कमल सा कर मेरे शरीर पर धरेंगे। और मैं उस चन्द्रबदन की शोभा इकटक निरख अपने नयन चकोरों को सुख दूँगा, कि जिसका ध्यान ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता सदा करते हैं।

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा

कि, महाराज! इस भाँति सोच बिचार करते रथ हाँक इधर से तो अक्रूर जी गये। और उधर बन से गौ चराय ग्वालबालों समेत कृष्ण बलदेव भी आये तो इनसे उनसे वृन्दावन के बाहर ही भेंट भई, हरि छवि दूर से देखते ही, अक्रूर रथ से उतर अति अकुलाय दौड़ उनके पाँवों पर जा गिरा। और ऐसा मगन हुआ कि मुँह से बोल न आया, महा आनन्द कर नयनों से जल वर्षावने लगा। तब श्रीकृष्ण जी उसे उठाय अति प्यार से मिल हाथ पकड़ घर लिवाय ले गये। वहाँ नन्दराय अक्रूर जी को देखते ही प्रसन्न हो उठकर मिले, और बहुत सा आदर मान किया, पाँव धुलवाय आसन दिया।

चौ०–लिये तेल मर्दनियाँ आये। उबटि सुगन्ध चुपरि अन्हवाये॥
चौका पटा यशोदा दियो। षट्रस रुचि सों भोजन कियो॥

जब अचवाय के पान खाने बैठे, तब नन्द जी उनकी कुशल क्षेम पूँछ बोले कि, तुम तो यदुवंशियों में बड़े साधु हो सदा अपनी बड़ाई से रहे हो। कहो अब कंस दुष्ट के पास कैसे रहते हो, और वहाँ के लोगों की क्या गति है सो सब भेद कहो, अक्रूर जी बोले:—

चौ०–जबतें कंस मधुपुरी भयो। तब तें सब ही को दुख दयो॥
पूँछौ कहा नगर कुशलात। परजा दुखी होत हैं गात॥
जौलों है मथुरा में कंस। तौलों कहाँ बचैं यदुवंस॥

दो०–पशु मेढ़े छेरीन कों, ज्यों खटीक रिपु होइ॥
त्यों परजा को कंस है, दुःख पावै सब कोइ॥

इतना कह फिर बोले कि, तुम तो कंस का व्यौरा जानते हो हम अधिक क्या कहैंगे।

अक्रूर-दर्शन

श्रीशुकदेव जी बोले कि पृथ्वीनाथ! जब नन्द जी बातें कर चुके तब अक्रूर को कृष्ण बलराम सैन से बुलाय अलग ले गये।

चौ०–आदर कर पूछी कुशलात। कहौ कका मथुरा की बात ॥
हैं वसुदेव देवकी नीके। राजा बैर परयो तिनहीं के ॥
अति पापी है मामा कंस। जिन खोयो सिगरो यदुबंस ॥

कोई यदुकुल का महारोग जन्म ले आया है, तिसी ने सब यदुवंशियों को सताया है। और सत्य पूछो तो वसुदेव देवकी हमारे लिये इतना दुःख पाते हैं, जो हमें न छिपाते तो वे इतना दुःख न पाते, यों कह कृष्ण फिर बोलेः—

चौ०–तुमसों कहा चलत उन कह्यो। तिनको सदा ऋणी हौं रह्यो ॥
करत होयँगे सुरत हमारी। संकट में पावत दुख भारी ॥

यह सुन अक्रूर जी बोले कि—कृपानाथ! तुम सब जानते हो क्या कहूँगा कंस की अनीति, उसकी किसी से नहीं है प्रीति, वसुदेव और उग्रसेन को नित्य मारने का विचार किया करता है। पर वे आज तक अपने प्रारब्ध से बच रहे हैं, और जब से नारद मुनि आय आपके होने का सब समाचार बुझाय के कह गए हैं, तब से वसुदेव जी को बेड़ी हथकड़ी दे महा दुःख में रक्खा है, और कल उसके यहाँ महादेव का यज्ञ है और धनुष धरा है, सब कोई देखने को आवेंगे, सो तुम्हें बुलाने को मुझे भेजा है। यह कह कर

कि तुम जाय राम कृष्ण समेत नन्दराय को यज्ञ की भेंट समेत लिवाय लाओ, सो मैं तुम्हें लेने को आया हूँ। इतनी बात अक्रूर जी से सुन राम कृष्ण ने आय नन्द से कहा:—

चौ०—कंस बुलायो है सुन तात। कहि अक्रूर कथा यहि बात॥
गोरस मेढ़े छेरी लेऊ। धनुष यज्ञ है ताको देऊ॥
सब मिलि चलो साथ आपने राजा। बोले रहत न बने॥

जब ऐसे समझाय बुझाय कर श्रीकृष्णचन्द्र जी ने नन्द जी से कहा—तब नन्दराय जी ने उसी समय ढंढोरिये को बुलवाय सारे नगर में यों कह कर डोंडी फिरवा दी, कि कल सबेरे ही सब मिल कर मथुरा को जायँगे। राजा ने बुलाया है, इस बात को सुनने से भोर होते ही भेंट ले ले सकल व्रजवासी आन पहुँचे और नन्द जी भी दूध, दही, माखन मेढ़े, बकरे, भैंसे ले सकट जुतवाय उनके साथ हो लिये और कृष्ण बलदेव भी अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रथ पर चढ़े।

चौ०—आगे भये नन्द उपनन्द। सब पाछे हलधर गोविन्द॥

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ! एकाएकी श्रीकृष्णचन्द्र का चलना सुन सब व्रज की गोपियाँ अति घबराय व्याकुल हो घर छोड़ हड़बड़ाय उठ धाईं और कुढ़ती झुकती गिरती पड़तीं वहाँ आईं, जहाँ श्रीकृष्णचन्द्र का रथ था, आते ही रथ के चारों ओर खड़ी हो हाथ जोड़ विनती कर कहने लगीं—हमें किस लिये छोड़ते हो व्रजनाथ! सर्वस्व दिया तुम्हारे हाथ। साधु की तो प्रीति कभी घटती नहीं, कर की सी रेखा सदा रहती है, और मूढ़ की प्रीति नहीं ठहरती है, जैसे बालू की भीति; ऐसा तुम्हारा क्या अपराध

किया है ? जो हमें पीठ दिए जाते हो। यों श्रीकृष्णचन्द्र को सुनाय फिर गोपियाँ अक्रूर की ओर देख बोलीं:—

चौ०—यह अक्रूर क्रूर है भारी। जानी कछु न पीर हमारी ॥
जा बिन छण सब होत अनाथ। तेहि ले चले आपने साथ ॥
कपटी क्रूर कठिन मन भयो। वृथा अक्रूर नाम किन दियो ॥
हे अक्रूर कुटिल मति हीन। क्यों दाहत अबला आधीन ॥

ऐसी कड़ी २ बातें सुनाय सोच संकोच छोड़ हरि का रथ पकड़ आपस में कहने लगीं—मथुरा की नारियाँ अति चंचल चतुर रूप गुण भरी हैं। उनके गुण और रस के वश हो वहाँ ही रहेंगे विहारी, तब काहे को करेंगे सुरति हमारी, उन्हीं के बड़े भाग हैं जो हरि के संग रहेंगी, हमारे जप तप करने में क्या ऐसी चूक पड़ी थी जिससे श्रीकृष्णचन्द्र बिछुड़ते हैं। यों आपस में कह फिर हरि से कहने लगी कि तुम्हारा तो नाम है गोपीनाथ, किस लिए नहीं ले चलते हमें अपने साथ।

चौ०—तुम बिन छण छण कैसे कटै। पलक ओट भय छाती फटै ॥
हित लगाय क्यों करत बिछोह। निठुर निर्दयी धरत न मोह ॥
ऐसे कहीं जबै सुन्दरी। सोचैं दुःख समुद्र में तरी ॥
चाहि रहीं इकटक हरि ओर। ठगी मृगी सी चंद्र चकोर ॥
परहिं नयन से आंसू टूट। रहीं बिथुर लट मुख पर छूट ॥

श्रीशुकदेव मुनि बोले राजा! उस समय गोपियों की तो यह दशा थी, जो मैंने कही! और यशोदा रानी ममता कर पुत्र को कण्ठ लगाय रो रो अति प्यार से कहती थी कि बेटा जै दिन में तुम वहाँ से फिर आओ तै दिन के लिये कलेऊ ले आओ।

तहाँ जाय किसी से प्रीति मत कीजो, वेग आय अपनी जननी को दर्शन दीजो। इतनी वात सुन श्रीकृष्ण रथ से उतर सव को समझाय बुझाय मा से विदा होय दण्डवत कर आशीश ले फिर रथ पर चढ़ चले तिस काल इधर से तो गोपियों समेत यशोदा जी अति अकुलाय रो २ कृष्ण २ कर पुकारती थीं। और उधर से श्रीकृष्ण रथ पर खड़े पुकार २ कहते जाते थे कि तुम घर जाओ, किसी वात की चिन्ता मत करो, हम पाँच चार दिन में ही, फिर कर आते हैं।

ऐसे कहते २ और देखते २ जब रथ दूर निकल गया, और धूलि आकाश तक छाई तिसमें रथ की ध्वजा भी न दिखाई दी। तब निराश हो एक बेर तो सब की सब नीर बिन मीन की भाँति तड़फड़ाय मूर्छा खाय गिरीं। पीछे कितनी एक बेर में चेत कर उठीं, और अवधि की आशा मन में धर धैर्य्य कर, इधर यशोदा जी तो सब गोपियों को ले वृन्दाबन को गईं। और उधर श्रीकृष्णचन्द्र सब समेत चले २ यमुना तीर आ पहुँचे। तहाँ ग्वालवालों ने जल पिया और हरि ने भी एक वड़ की छाँह में रथ खड़ा किया। जब अक्रूर जी ने नहाने का विचार कर रथ से उतरे, तब कृष्ण-चन्द्र ने नन्दराय से कहा कि आप सब ग्यालबालों को ले आगे चलिये, चचा अक्रूर स्नान कर लें तो पीछे से हम भी आ मिलते हैं।

यह सुन सब को ले नन्द जी आगे बढ़े और अक्रूर जी कपड़े खोल हाथ पाँव धोय आचमन कर तीर पर जाय नीर में पैठ डुबकी ले पूजा, तर्पण, जप, ध्यान कर, फिर डुबकी मार आँख खोल जल में देखैं तो वहाँ रथ समेत श्रीकृष्ण दृष्टि आये।

चौ०–पुनि उन देख्यो शीश उठाय। तिहिठाँ बैठे हैं यदुराय॥
करैं अचम्भो हिये विचारि। वे रथ ऊपर दूरि मुरारि॥
बैठे दोऊ बड़ की छाँह। तिनहीं को देखौं जल माँह॥
बाहर भीतर भेद न लहौं। साँचो रूप कौन को कहौं॥

महाराज! अक्रूर जी तो एक ही मूर्त्ति बाहर भीतर देख देख सोचते थे, कि इस बीच पहिले तो श्रीकृष्णचन्द्र जी ने चतुर्भुज हो शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण कर सुर, मुनि, किन्नर, गन्धर्व आदि सब भक्तों, समेत जल में दर्शन दिया और पीछे शेषशायी हो तो अक्रूर देख और भी भूला रहा।

अक्रूर-स्तुति करण

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! पानी में खड़े २ अक्रूर को तकिनी एक बेर में प्रभु का ध्यान करने से ज्ञान हुआ तो हाथ जोड़ प्रणाम कर कहने लगा कि, कर्ता हर्ता तुम्हीं हो। भगवन्त! भक्तों के हेतु संसार में आय धरते हो भेष अनन्त; और, नर, मुनि तुम्हारे अंश हैं। तुम्हीं से प्रकट हो तुम्हीं में ऐसे समाते हैं जैसे जल सागर से निकल सागर में समाता है। तुम्हारी महिमा है अनूप, कौन कह सके सदा रहते हो विराट स्वरूप, शिर स्वर्ग, पृथ्वी पाँव, समुद्र पेट, नाभि आकाश, बादल केश, वृक्ष रोम, अग्नि मुख, दशो दिशा कान, नयन चन्द्र और भानु, इन्द्र भुजा, बुद्धि ब्रह्मा, अहंकार रुद्र, गरजन बचन, प्राण पवन, जल वीर्य, पलक लगाना रात दिन, इस रूप से सदा बिराजते हो, तुम्हें कौन पहि-

चान सके। इस भाँति स्तुति कर अक्रूर ने प्रभु के चरण का ध्यान धर कहा--कृपानाथ ! मुझे अपनी शरण में रक्खो।

मथुरापुरी-प्रवेश

श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज ! जब श्रीकृष्णचन्द्र ने नट माया की भाँति जल में अनेक रूप दिखाय हर लिये, तब अक्रूर जी ने नीर से निकल तीर पर आ हरि को प्रणाम किया। तिस काल नन्दलाल ने अक्रूर से पूँछा कि काका शीत समय जल के बीच इतनी वेर क्यों लगी ? हमें यह अति चिन्ता थी तुम्हारी, कि चचा ने किस लिए बाट चलने की सुधि बिसारी, क्या कुछ अचरज तो जाकर नहीं देखा, यह समझाय के कहो जो हमारे मन की दुबिधा जाय।

चौ०--सुनि अक्रूर कह जोरे हाथ। तुम सब जानत हौ व्रजनाथ ॥
भली दरश दीनों जल माहीं। कृष्ण चरित को अचरज नाहीं ॥
मोहिं भरोसो भयो तिहारो। वेग नाथ मथुरा पग धारो ॥

अब यहाँ बिलम्ब न करिये शीघ्र चल कार्य कीजै। इतनी बात के सुनते ही हरि झट रथ पर वैठ अक्रूर को साथ ले चल खड़े हुए, और नन्द आदि जो सब गोप ग्वाल आगे गये थे उन्होंने जाय मथुरा के बाहर डेरे किए। और कृष्ण बलदेव की बाट देख २ अति चिन्ता कर आपस में कहने लगे, इतनी अबेर न्हाते क्यों लगी और किस लिए अब तक नहीं आए हरि ? किस इस बीच चले २ आनन्दकन्द श्रीकृष्णचन्द्र जाय मिले। उस समय हाथ जोड़ शिर झुकाय बिनती कर अक्रूर जी बोले कि व्रजराज अब

के मेरा घर पवित्र कीजै और अपने भक्तों को दर्श दिखाय सुख दीजै, इतनी बात सुनते ही हरि ने अक्रूर से कहा :—

चौ०--पहिले सोध कंस को देहु। तब आपनो दिखरावो गेहु॥
सब की बिनती कहो जु जाय। सुनि अक्रूर चले शिर नाय॥

चले २ कितनी एक बेर में रथ से उतर कर वहाँ पहुँचे जहाँ कंस सभा किए बैठा था। इनको देखते ही सिंहासन से उठ नीचे आय अति हित कर मिला, और बड़े आदर मान से हाथ पकड़ ले जाय सिंहासन पर अपने पास बैठाय इनकी कुशल क्षेम पूँछ बोला, जहाँ गए थे वहाँ की बात कहो।

चौ०—सुन अक्रूर कह्यौ समझाय। ब्रजकी महिमा कही न जाय॥
कहा नन्द की करौं बड़ाई। बात तुम्हारी शीश चढ़ाई॥
राम कृष्ण दोऊ हैं आए। भेंट सबै ब्रजवासी लाए॥
डेराकिये नदी के तीर। उतरे गाड़ा भारी भीर॥

यह सुन कंस प्रसन्न हो बोला--अक्रूर जो तुमने आज हमारा बड़ा काज किया जो रामकृष्ण को ले आये, अब घर जाय विश्राम करो।

इतनी कथा कह शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! कंस की आज्ञा पाय अक्रूर जी तो अपने घर गए, और वह सोच विचार करने लगा। और जहाँ नन्द उपनन्द बैठे थे, तहाँ उनसे हलधर और गोविन्द ने पूँछा, जो हम आप की आज्ञा पावें तो नगर देख आवें। यह सुन पहिले तो नन्दराय जी ने कुछ खाने को मिठाई निकाल दी, उन दोनों भाइयों ने मिल कर खाय ली। पीछे बोले अच्छा जाओ, देख आओ, पर विलम्ब मत कीजो।

इतना बचन नन्द महर के मुख से निकलते ही आनन्द कर दोनों भाई अपने ग्वालबाल सखाओं को साथ ले नगर देखने चले। आगे बढ़ देखें तो नगर के बाहर चारों ओर वन उपबन फूल फल रहे हैं, तिन पर पक्षी बैठे अनेक अनेक भाँति की मन भावन बोलियाँ बोलते हैं। और बड़े २ सरोवर निर्मल जल से भरे हैं, उसमें कमल खिले हुए जिन पर भौरों के झुण्ड के झुण्ड गूँज रहे, और तीर में हंस सारस आदि पक्षी कलोलें कर रहे, शीतल सुगन्ध सनी मन्द पवन बह रही, और बड़ी बड़ी बाड़ियों की बाड़ों पर पनवाड़ियाँ लगी हुई, बीच बीच वर्ण वर्ण की फूलों की क्यारियाँ कोसों तक फूली हुईं, ठौर २ इन्दारों बावड़ियों पर रहट हरोहे चल रहे, माली मीठे २ स्वरों से गाय २ जल सींच रहे हैं।

यह शोभा बन उपबन की निरख हर्ष प्रभु सब समेत मथुरापुरी में पैठे। वह पुरी कैसी है कि जिसके चारों ओर तांबे की कोट और पक्की चुआँन चौड़ी खाई, स्फटिक के चार फाटक तिनमें अष्टधाती किवाड़ कञ्चनखचित लगे हुए और नगर में वर्ण २ के राते, पीते, हरे, धोले, पचखने, सतखने, मन्दिर ऊँचे ऐसे कि घटा से बातें कर रहे हैं। जिनके सोने के कलश कलशियों की ज्योति बिजली सी चमक रही, ध्वजा पताका फहराय रही, जाली झरोखों मोखों से धूप की सुगन्ध आय रही। द्वार २ पर केले के खम्भ और सुवर्ण के कलश सपल्लव धरे हुए, तोरण बन्दनवार बँधी हुई, घर २ बाजन बाज रहे और एक ओर भाँति २ के मणिमय कञ्चन के मन्दिर राजा के न्यारे ही जगमगाव रहे।

तिनकी शोभा कुछ बरणी नहीं जाती ऐसी जो सुन्दर सुहावनी मथुरापुरी, तिसे श्रीकृष्ण बलदेव ग्वालबालों को साथ लिये देखने चले।

दो०—परी धूम मथुरा नगर, आवत नन्द कुमार।
सुन धाये पुर लोग सब, गृह को काज विसार॥

चौ०-और जो मथुरा की सुन्दरी। सुनत कान अति आतुर खरीं॥
कहैं परस्पर वचन उचारी। आवत हैं बलभद्र मुरारी॥
तिन्हें अक्रूर गये हैं लेन। चलहु सखी अब देखिय नेन॥
कोऊ खात न्हात ते भजैं। गुहत शीश कोऊ उठि तजैं॥
अपनी सुधि बुधि को बिसरावैं। उलटे भूषण वषन बनावैं॥
जैसे ही तैसे उठि धाईं। कृष्ण दरश देखन को आईं॥

सो०-लाज कान डर डार, कोऊ खिरकिन कोऊ अटन।
कोऊ खड़ी दुआर, कोउ दौरी गलियन फिरत॥

ऐसे जहाँ तहाँ खड़ि नारी। प्रभुहि बतावें बाँह पसारी॥
नील बरन गोरे बलराम। पीताम्बर ओढ़े घनश्याम॥
ये भानजे कंस के दोऊ। इनते असुर बच्यो नहिं कोऊ॥
सुनत हती पुरुषारथ जिनको। देखो रूप नयन भरि तिनको॥
पूरब जन्म सुकृत कछु कीनो। सो विधि पद दर्शन फल दीनो॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि--महाराज! इसी रीति से सब पुरवासी क्या स्त्री क्या पुरुष अनेक २ प्रकार की बातें कह २ दर्शन कर मग्न होते थे। और जिस हाट बाट चौहटे में हो सब समेत कृष्ण बलराम निकलते थे, तहीं अपने कोठों पर खड़े इन पर चोवा चन्दन छिड़क २ आनन्द से फूल वर्षाते थे।

और ये नगर की शोभा देख २ ग्वालवालों से यों कहते जाते थे, भैया! कोई भूलियो मत और जो कोई भूलै तो पिछले डेरों पर जाइयो। इसमें कितनी एक दूर जाय के देखते क्या हैं कि कंस के धोबी धोये कपड़ों की लादियाँ लादे पोटें मोटें लिये, मद पिये, रंग राते, कंस यश गाते, नगर के बाहर से चले आते हैं। उन्हें देख कृष्णचन्द्र ने बलदेव जी से कहा कि—भैया! इनके सब चीर छीन लो और आप लीजिये पहिर ग्वालबालों को पहिराय बचे सो लुटाय दीजिये। भाई को यों सुनाय सब समेत धोबियों के पास जाय हरि बोले :—

चौ०-हमको उज्ज्वल कपड़ा देहु। राजहिं मिलि आवैं फिर लेहु॥
जो पहिरावति नृप सौं पैहैं। तामें ते कुछ तुमको देहैं॥

इतनी बात के सुनते ही उनमें से जो बड़ा धोबी था सो हँस कर कहने लगा :—

सो०-राखैं खरी बनाय, ह्वै आवौ नृप द्वार लौं।
तब लीजो पट आय, जो चाहो सो दीजियो॥

चौपाई

बन २ फिरत चरावत गैया। जात अहीर कामरी उढ़ैया॥
नट को भेष बनाये आये। नृप अम्बर पहिरन मन भाये॥
जुरि के चले नृपति के पास। पहिरावन लेवे की आस॥

यह वात धोबी की सुनकर हरि ने फिर मुसकराय कहा—हम तो सूधी चाल से माँगते हैं, तुम उलटी क्यों समझते हो। कपड़े देने से कुछ तुम्हारा न बिगड़ेगा वरन् यश लाभ होगा। यह वचन सुन रजक झुँझलाय कर बोला—राजा के बागे पहिरने का मुँह तो

देखो, अरे आगे से जा, नहीं अभी मार डालता हूँ। इतनी बात के सुनते ही क्रोध कर श्रीकृष्णचन्द्र ने तिरछा कर एक हाथ मारा कि उसका सिर भुट्टा सा उड़ गया। तब जितने उसके साथी और टहलुए थे, सबके सब पोटें मोटें लादियाँ छोड़ अपना जीव ले भागे और कंस के पास जा पुकारे। वहाँ श्रीकृष्ण जी ने सब कपड़े ले लिये, और आप पहिन भाई को पहिनाय ग्वालबालों को बाँट बचे सो लुटाय दिये जिस समय ग्वालबाल अति प्रसन्न हो २ लगे उलटे पुलटे वस्त्र पहिरने।

दो०—कटि कस पग पहिरे झंगा, सूथन मेले बाँह।
वसन भेद जाने नहीं, हँसत कृष्ण मन माँह॥

जो वहाँ से आगे बढ़े तो एक सूची ने आय दण्डवत् कर खड़े होय, कर जोड़ के कहा—महाराज! मैं कहने को तो कंस का सेवक कहलाता हूँ, पर मन से सदा आप ही का गुण गाता हूँ, दया कर कहो तो बागे पहराऊँ जिससे तुम्हारा दास कहाऊँ।

इतनी बात उसके मुख से निकलते ही अन्तर्यामी श्रीकृष्ण ने उसे अपना भक्त जान निकट बुलाय के कहा, तू भले समय आया, अच्छा पहराय दे। तब तो उसने झटपट ही खोल उधेड़ कतर छाँट सी कर ठीक ठाक बनाय चुन २ रामकृष्ण समेत सब को बागे पहिराय दिये। उस काल नन्दलाल उसे भक्ति दे साथ ले आगे चले।

चौ०—तहाँ सुदामा माली आयो, आदर कर अपने घर लायो॥
सब ही को माला पहिराई, माली के घर भई बधाई॥

———

कुवलया-वध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि—महाराज! भोर ही जब नन्द उपनन्द सब बड़े २ गोप रंगभूमि की सभा में गये, तब श्रीकृष्णचन्द्र जी ने बलदेव जी से कहा कि भाई! सब गोप आय गये, अब विलम्ब न करिये, शीघ्र ग्वालबाल सखाओं को साथ ले रंगभूमि देखने चलिये।

इतनी बात के सुनते ही बलराम जी उठ खड़े हुए, और सब ग्वालबाल सखाओं से कहा कि भाइयो! चलो, रंगभूमि की रचना देख आवें। यह वचन सुनते ही तुरन्त सब साथ हो लिये, निदान श्रीकृष्ण बलराम नटवर वेष किये, ग्वालबाल सखाओं को साथ लिये, चले २ रंगभूमि की पौर पर आय खड़े हुए। जहाँ दश सहस्र हाथियों का बल वाला गज कुवलयापीड़ खड़ा झूमता था।

चौ०—देख मतंग द्वार मतवारो। गजपालहिं बलराम पुकारो॥
सुनों महावत बात हमारी। लेहु द्वार तें गज तुम टारी॥
जान देहु हम को नृप पास। नातर ह्वै है गज को नास॥
कहे देत नहिं दोष हमारो। मत जाने हरि को तू बारो॥

ये त्रिभुवनपति हैं, दुष्टों को मार भूमि का भार उतारने को आये हैं, यह सुन महावत क्रोध कर बोला—मैं जानता हूँ, गौ चराय के त्रिभुवनपति भये हैं, इसी से यहाँ आय बड़े शूर की भाँति अड़े खड़े हैं। धनुष का तोड़ना न समझियो, मेरा हाथी दस सहस्र हाथियों का बल रखता है जब तक इससे न लड़ोगे

तब तक भीतर न जाने पाओगे, तुम ने तो बहुत बली मारे हैं, पर आज इसके हाथ से बचोगे तब मैं जानूँगा कि तुम बड़े बली हो।

दो०—तबहिं कोपि हलधर कह्यो, सुन रे मूढ़ कुजात।
गज समेत पटकों अबहिं, मुख सँभार कहु बात॥

सो०—नेकु न लगि हैं बार, हाथी मरि जैहे अबहिं।
तोसों कहत पुकार, अबहुँ मान मोरो कह्यो॥

इतनी बात के सुनते ही झुँझला कर गजपाल ने गज पेला ज्यों वह बलदेव जी पर टूटा, त्यों इन्होंने हाथ घुमाया एक थपेड़ा ऐसा मारा कि वह सूँड सिकोड़ चिंघार मार पीछे हटा। यह चरित्र देख कंस के बड़े २ योद्धा जो खड़े देखते थे सो अपने जी में यों हार मान मन ही मन कहने लगे कि इन महा बलवानों से कौन जीत सकेगा, और महावत भी हाथी को पीछे हटा जान अति भय मान जी में विचार करने लगा कि जो यह बालक न मारे जायँ तो कंस भी मुझे जीता न छोड़ेगा। यों सोच समझ उसने फिर अंकुशमार हाथी को तत्ता किया और इन दोनों भाइयों पर हूल दिया, उसने आते ही सूँड से हरि को पटक पछाड़ खुनसाय ज्यों दाँतों से दबाया, त्यों प्रभु सूक्ष्म शरीर बनाय दाँतों के बीच बच रहे।

दो०—डरपि उठे तिहि काल सब, सुर मुनि पुर नर नारि।
दुहुँ दशन बिच ह्वै कढ़े, बज्र निधि प्रभु दे तारि॥

सो०—उठे गजहिं के साथ, बहुरि ख्याल हो हाँक दे।
तुरतहि भये सनाथ, देखि चरित सब श्याम के॥

चौपाई

हाँक सुनत अति कोप बढ़ायो। झटकि सूँड बहुरां गज धायो॥
रहे उदर तर दबकि मुरारी। गयो जान गज रह्यो निहारी॥
पाछे प्रकट फेर हरि टेरो। बलदाऊ आगे तें घेरो॥
लागे गजहिं खिलावन दोऊ। भौचक रहे देख सब कोऊ॥

महाराज! उसे कभी बलराम सूँड पकड़ खैंचते थे, कभी श्याम पूँछ पकड़, और जब वह इन्हें पकड़ने को आता था, तब ये अलग हो जाते थे, कितनी एक बेर ताईं उससे ऐसे खेलते रहे जैसे बछड़ों के साथ बालपन में खेलते थे। निदान हरि ने पूँछ पकड़ फिराय उसे दे पटका और मारे घूँसों के मार डाला, दाँत उखाड़ लिये, तब उसके मुँह से लोहू नदी की भाँति बह निकला। हाथी के मरते ही महावत ललकार कर आया प्रभु ने उसे भी हाथी के पाँव तले झट मार गिराया, और हँसते २ दोनों भाई नटवर भेष किये एक २ दाँत हाथी का हाथ में लिये रङ्गभूमि के बीच जा खड़े हुये। उस काल नन्दलाल को जिन २ ने जिस २ भाव से देखा, उस २ को उसी २ भाव से दृष्टि आये। मल्लों ने मल्ल माना, राजाओं ने राजा जाना, देवताओं ने अपना प्रभु बूझा, ग्वालबालों ने सखा, नन्द उपनन्द ने बालक समझा, और पुर की युवतियों ने रूपनिधान, और कंसादिक राक्षसों ने काल समान देखा। महाराज! इनको निहारते ही कंस अति भयमान हो पुकारा; अरे मल्लो! इन्हें पछाड़ मारो, मेरे आगे से टालो।

इतनी बात ज्यों कंस के मुँह से निकली त्यों सब मल्ल गुरु

सुत चेले संग लिये, वर्ण २ के भेष किये, ताल ठोंक २ भिड़ने को श्रीकृष्ण बलराम के चारों ओर घिर आये। जैसे वे आये तैसे ये भी सँभल खड़े हुये, तब उनमें से इनकी ओर देख चतुराई कर चाणूर बोला—सुनो आज हमारे राजा कुछ उदास हैं, इससे जी बहलाने को तुम्हारा युद्ध देखा चाहते हैं, क्योंकि तुमने बन में रह सब विद्या सीखी है और किसी बात का मन में सोच न कीजै, हमारे साथ मल्ल युद्ध कर अपने राजा को सुख दीजै। श्रीकृष्ण बोले—राजा जी ने बड़ी दया कर हमें बुलाया है। आज हमसे क्या सरेगा इनका काज, तुम अति बली गुणवान, हम बालक अजान, तुमसे हाथ कैसे मिलावें। कहा है ब्याह बैर और प्रीति समान से कीजै, पर राजा जी से कुछ हमारा वश नहीं चलता, इससे तुम्हारा कहा मानते हैं। हमें बचा लीजो, बल कर पटक न दीजो। अब हमें तुम्हें उचित है जिसमें धर्म रहै सो कीजिये, और मिल कर अपने राजा को सुख दीजिये।

चौ०—तब चाणूर कहै भय खाय। तुम्हारी गति जानी नहिं जाय॥
तुम बालक मानुष नहिं दोऊ। कीन्हें कपट बली हौ कोऊ॥
खेलत धनुष खण्ड द्वै करे। मारे तुरत कुबलया तरे॥
तुम से लरे हानि नहिं होय। या बातें जाने सब कोय॥

कंसासुर-वध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, पृथ्वीनाथ! कितनी एक बातें कर ताल ठोक चाणूर तो श्रीकृष्ण के सोहीं हुआ। और मुष्टिक बलराम जी से भिड़ा, उनका इनसे मल्ल युद्ध होने लगा।

दो०—शिर सों शिर भुज सों भुजा, दृष्टि दृष्टि सों जोरि।
चरण चरण गहि झपटि कै, लपटत झपट झकोरि॥

उस काल सब लोग इन्हें उन्हें देख देख आपस में कहने लगे कि, भाइयो! इस सभा में अति अनीति होती है। देखो कहाँ ये बालक रूपनिधान, कहाँ है सबल मल्ल वज्रसमान, जो बरजें तो कंस रिसाय, न बरजें तो धर्म जाय; इससे अब यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि हमारा कुछ वश नहीं चलता।

महाराज! इधर तो ये सब लोग यों कहते थे, और उधर श्रीकृष्ण बलराम मल्लों से मल्ल युद्ध करते थे। निदान इन दोनों भाइयों ने उन दोनों मल्लों को पछाड़ मारा, उनके मरते ही सब मल्ल आय टूटे प्रभु ने पल भर में तिन्हें भी मार गिराया। तिस समय हरिभक्त तो प्रसन्न हो बाजन बजाय बजाय जय जयकार करने लगे, और देवता आकाश में अपने विमानों में बैठे कृष्ण-यश गाय गाय फूल बर्षाने लगे, और कंस अति दुःख पाय व्याकुल हो रिसाय अपने लोगों से कहने लगा—अरे बाजे वाले! बाजे बजाते हो, तुम्हें क्या कृष्ण की जीत भाती है?

यों कह बोला ये दोनों बालक बड़े चञ्चल हैं, इन्हें पकड़ बाँध सभा से बाहर ले जाओ, और देवकी समेत उग्रसेन वसुदेव कपटी को पकड़ लाओ। पहिले उन्हें मार पीछे इन दोनों को भी मार डालो। इतना वचन कंस के मुख से निकलते ही भक्तों के हितकारी मुरारी सब असुरों को क्षण भर में मार, उछल के वहाँ जा चढ़े, जहाँ अति ऊँचे मञ्चपर झिलम पहने टोप दिये, फरी खाँड़ा लिये बड़े अभिमान से कंस बैठा था। वह इनको काल

समान निकट देखते ही भय खाय उठ खड़ा हुआ, और लगा थर २ काँपने।

मन से तो चाहा कि भागूँ पर मारे लाज के भाग न सका, फरी खाँड़ा सँभाल लगा चोट करने। उस काल नन्दलाल अपनी घात लगाये उसकी चोट बचाते थे। सुर नर मुनि और गंधर्व यह महायुद्ध देख २ भयमान हो यों पुकारते थे, हे नाथ ! हे नाथ ! इस दुष्ट को वेग मारो। कितनी एक बेर तक मञ्च पर युद्ध रहा, निदान प्रभु ने सब को दुखित जान उसके केश पकड़ मञ्च से नीचे पटका, और ऊपर से आप भी कूदे कि उसका जीव घट से निकल सटका। तब सब सभा के लोग पुकारे श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस को मारा, यह शब्द सुन सुर नर मुनि सब को अति आनन्द हुआ।

दो०—करि स्तुति पुनि हरष सब, बरष सुमन सुर बृन्द।
मुदित बजावन दुन्दभी, कहि जय जय नंदनंद ॥

सो०—मथुरा पुर नर नारि, अति प्रफुल्ल सब को हियो।
मनहुँ कुमुद बन चारि, बिकसित हरि मुख शशि निरखि ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि धर्मावतार ! कंस के मरते ही जो अति बलवान आठ भाई उसके थे सो लड़ने को चढ़ आये। प्रभु ने उन्हें भी मार गिराया। जब हरि ने देखा कि अब यहाँ राक्षस कोई नहीं रहा। तब कंस की लोथ को घसीट यमुना तीर पर ले आये और दोनों भाइयों ने बैठ विश्राम किया। तिस दिन से उस ठौर का नाम विश्राम घाट हुआ।

आगे कंस का मरना सुन कंस की रानियाँ देवरानियों समेत अति व्याकुल हो रोती पीटती वहाँ आईं जहाँ यमुना के तीर दोनों वीर मृतक लिये बैठे थे, और लगीं अपने पति का मुख निरख २ सुख सुमिर गुण गाय २ व्याकुल हो २ पछाड़ खाय २ गिरने, कि इस बीच करुणानिधान कान्ह करुणा कर उनके निकट जा बोले:—

चौ०—मामी सुनहु शोक नहिं कीजै। मामा जी को पानी दीजै॥
सदा न कोऊ जीवत रहै। झूंठो सो जो अपनो कहै॥
मात पिता सुत बन्धु न कोई। जन्म मरण फिरही फिर होई॥
जौलौं जों सम्बन्ध रहै। तौही लौं तासों सुख लहै॥

महाराज! जब श्रीकृष्ण ने रानियों को समुझाया, तब उन्होंने वहाँ से उठ धीर्य धर यमुना तीर पर आ पति को पानी दिया और आप प्रभु ने अपने हाथ से कंस को आग दे उसकी गति की।

———

शंखासुर-वध

श्रीशुकदेव मुनि बोले कि हे राजा! रानियाँ तो देवरानियों समेत वहाँ से नहाय धोय रोय राजमंदिर को गईं और श्रीकृष्ण बलराम वसुदेव देवकी के पास आय, उनके हाथ पाँव की हथकड़ियाँ बेड़ियाँ काट, दण्डवत् कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़े हुए। तिस समय प्रभु का रूप देख वसुदेव देवकी को ज्ञान हुआ। तो उन्होंने अपने जी में निश्चय कर जाना कि ये दोनों विधाता हैं, असुरों को मार भूमि का भार उतारने को संसार में अवतार ले आये हैं।

जब वसुदेव देवकी ने यों जाना, तब अंतर्यामी हरि ने अपनी माया फैलाय दी। उसने उनकी यह मति हरि ली। फिर तो उन्होंने इन्हें पुत्र कर समझा कि इतने में श्रीकृष्णचंद्र अति दीनता कर बोले:—

चौ०-तुम बहु दिवस लह्यो दुख भारी। करत रहे अति सुरति हमारी॥

इसमें हमारा कुछ अपराध नहीं क्योंकि जब से आप हमें गोकुल में नंद के यहाँ रख आये तब से परवश थे, हमारा वश न था, पर मन में सदा यह आता था कि जिसके गर्भ में दश महीने रह जन्म लिया, उसे कभी कुछ सुख न दिया, न हमहीं ने माता पिता का सुख देखा वृथा जन्म पराये यहाँ खोया। उन्होंने हमारे लिये अति विपत्ति सही हम से कुछ उनकी सेवा न भई, संसार में सामर्थी वेई हैं जो माँ बाप की सेवा करते हैं, हम उनके ऋणी रहे टहल न कर सके।

पृथ्वीनाथ! जब श्रीकृष्ण जी ने अपने मन का खेद यों कह सुनाया, तब अति आनंद कर उन दोनों ने इन दोनों को हितकर कण्ठ लगाया, और सुख मान पिछला दुःख सब गँवाया। ऐसे माता पिता को सुख दे दोनों भाई वहाँ से चले २ उग्रसेन के पास आये, और हाथ जोड़ कर बोले:—

चौ०--नाना जी अब कीजे राज। शुभ नक्षत्र नीको दिन आज॥

इतना हरि के मुख से निकलते ही राजा उग्रसेन उठ कर आ श्रीकृष्णचन्द्र के पाँवों पर गिर कर कहने लगे कि कृपानाथ! मेरी बिनती सुन लीजिये। जैसे आपने सब असुरों समेत कंस महादुष्ट को मार भक्तों को सुख दिया, तैसे ही सिंहासन पै बैठ अब

मधुपुरी का राज्य कर प्रजा पालन कीजिये। प्रभु बोले--महाराज! यदुवंशियों को राज्य का अधिकार नहीं, इस बात को सब कोई जानता है। जब राजा ययाति बूढ़े हुए तब अपने पुत्र यदु को उन्होंने बुलाकर कहा--अपनी तरुण अवस्था मुझे दे, और मेरा बुढ़ापा तू ले। यह सुन उसने जी में विचारा कि जो मैं पिता को युवा अवस्था दूँगा तो यह तरुण हो भोग करेगा, इससे मुझे पाप होगा, इसमें नहीं करना ही भला है। यों सोच समझ के उसने कहा कि पिता यह तो मुझसे न हो सकेगा। इतनी बात के सुनते ही राजा ययाति ने क्रोध कर शाप दिया कि जा तेरे वंश में राजा कोई न होगा।

इस बीच पुरु नाम उसका छोटा बेटा सन्मुख आ हाथ जोड़ बोला--पिता! अपनी वृद्ध अवस्था मुझे दो और मेरी तरुणाई तुम लो। यह देह किसी काम की नहीं, जो तुम्हारे काम आवै तो इससे उत्तम क्या है। जब पुरु ने यों कहा तब राजा ययाति प्रसन्न हो अपनी वृद्ध अवस्था दे उसकी युवा अवस्था ले बोले--कि तेरे कुल में राजगद्दी रहेगी, इससे नाना जी हम यदुवंशी हैं, हमें राज्य करना उचित नहीं :--

सो०--करौ बैठ तुम राज, दूर करो सन्देह सब।
हम करिहैं सब काज, जो आयसु देहौ हमें॥

चौपाई

जो न मानि है आन तिहारी। ताहि दंड करिहैं हम भारी॥
और कछू चित्त शोच न कीजै। नीति सहित परजहिं सुख दीजै॥
यादव जिते कंस की त्रास। नगर छाँड़ि के गये प्रवास॥

तिनको अब करि खोज मँगाओ। सुख दै मथुरा माँझ बसाओ॥
विप्र धेनु सुर पूजन कीजै। इनकी रक्षा में चित दीजै॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि बोले कि धर्मावतार! महाराजाधिराज भक्तहितकारी श्रीकृष्णचन्द्र ने उग्रसेन को अपना भक्त जान ऐसे समझाय सिंहासन पर बिठाय राजतिलक दिया, और छत्र फिरवाय दोनों भाइयों ने अपने हाथों चमर किया।

उस काल सब नगर के वासी अति आनन्द में मग्न हो धन्य २ कहने लगे, और देवता फूल वर्षाने। महाराज! यों उग्रसेन को राजपाट पर बिठाय दोनों भाई बहुत से वस्त्र आभूषण अपने साथ लिवाय वहाँ से चले २ नन्दराय जी के पास आये, और सन्मुख हाथ जोड़ खड़े हो अति दीनता कर बोले--हम तुम्हारी क्या बड़ाई करें, जो सहस्र जीभ होयँ तो भी तुम्हारे गुण का बखान हम से न हो सके। तुमने हमें अति प्रीति कर अपने पुत्र की भाँति पाला सब लाड़ प्यार किया, और यशोदा मैया भी बड़ा स्नेह करती और अपना हित हम ही पर रखती सदा निज पुत्र समान जानती, कभी मन से भी हमें पराया कर न मानती।

ऐसे कह फिर श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता! तुम यह बात सुन कर कुछ बुरा मत मानो। हम अपने मन की बात कहते हैं कि माता पिता तो तुम्हें ही कहेंगे, पर अब कुछ दिन मथुरा में रहेंगे, अपने जाति भाइयों को देख यदुकुल की उत्पत्ति सुनेंगे, और माता पिता से मिल उन्हें सुख देंगे; क्योंकि उन्हों ने हमारे लिये बड़ा दुःख सहा है, जो हमें तुम्हारे यहाँ न पहुँचा आते तो वे दुःख

न पाते। इतना कह वस्त्र आभूषण नन्द महर के आगे धर प्रभु ने निर्मोही हो कहा:—

चौ०—मैया सों पालागन कहियो। हम पै प्रेम करे तुम रहियो।

इतनी बात श्रीकृष्ण के मुँह से निकलते ही नन्दराय तो अति उदास हो लगे लम्बी साँसें लेने और ग्वालबाल विचार कर मन ही मन में यों कहने लगे कि यह क्या अचम्भे की बात कहते हैं इस से ऐसा समझ में आता है कि अब ये कपट कर जाया चाहते हैं। नहीं तो ऐसे निठुर वचन न कहते, महाराज! निदान उनमें से श्रीदामा नाम सखा बोला—भैया! कन्हैया अब मथुरा में तेरा क्या काम है? जो निठुराई कर पिता को छोड़ यहाँ रहता है। भला किया कंस को मारा, सब काम सम्हारा, अब नंद के साथ हो लीजिये, वृन्दाबन में चल कर राज्य कीजिये। यहाँ के राज्य देख मन में मत ललचाओ, वहाँ का सा सुख न पाओगे।

सुनो, राज्य देख कर मूर्ख भूलते हैं और हाथी घोड़े देख देख फूलते हैं। तुम वृन्दाबन छोड़ कहीं मत रहो, वहाँ सदा बसन्त ऋतु रहती है सघन वन और यमुना की शोभा मन से नहीं बिसरती। भाई, जो वह सुख छोड़ हमारा कहान मान माता पिता की माया तज यहाँ रहोगे तो इसमें तुम्हारी क्या बड़ाई होगी? उग्रसेन की सेवा करोगे, और रात दिन चिन्ता में रहोगे। जिसे तुम ने राज्य दिया उसी के आधीन होना होगा। यह अपमान कैसे सहा जायगा। इस से अब उत्तम यही है कि नन्दराय को दुःख न दीजे, इनके साथ हो लीजे—:

चौपाई

ब्रजबन नदी बिहार बिचारो। गायन को मन तें न बिसारो॥
नहीं छाँड़िहैं हम ब्रजनाथ। चलिहैं सबै तिहारे साथ॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित से कहा कि महाराज! ऐसे कितनी एक बातें कह दस बीस सखा श्रीकृष्ण बलराम जी के साथ रहे, और उन्होंने नन्दराय से बुझा कर कहा कि आप सब को ले निस्संदेह आगे बढ़िये पीछे से हम भी इन्हें साथ लिये चले आते हैं। इतनी बात के सुनते ही,

सो०— व्याकुल सबै अहीर, मानहुँ पन्नग के डसे।
हरि मुख लखत अधीर, ठाढ़े काढ़े चित्र से॥

उस समय बलदेव जी नन्दराय को अति दुःखित देख समझाने लगे कि, पिता तुम! इतना दुःख क्यों पाते हो थोड़े एक दिन में यहाँ का काज कर हम भी आते हैं, आपको आगे इसलिये विदा करते हैं कि माता हमारी अकेली व्याकुलहोती होयँगी, तुम्हारे गये से उन्हें कुछ धीर्य होगा। नंद जी बोले कि बेटा, एकबार तुम मेरे साथ चलो फिर मिल कर चले आइयो।

दो०—ऐसे कहि अति बिकल हो, रहे नन्द गहि पाय।
भई क्षीण द्युति मंद मति, नयनन जलन नहाय॥

महाराज! जब माया-रहित श्रीकृष्णचंद्र जी ने ग्वालबालों समेत नंदराय को महा व्याकुल देखा तो मन में विचारा कि ये मुझ से बिछुड़ेंगे तो जीते न बचेंगे। त्यों ही उन्होंने अपनी उस माया को छोड़ा, जिसने सारे संसार को भुला रक्खा है। उसने आते ही नंद जी को सब समेत अज्ञान किया। फिर बोले कि--

पिता ! तुम इतना क्यों पछताते हो, पहिले यही विचारो कि मथुरा और वृन्दाबन में अन्तर क्या है। तुम से हम कहीं दूर तो नहीं जाते जो इतना दुःख पाते हो, वृन्दाबन के लोग दुःखी होंगे इसलिये तुम्हें आगे भेजते हैं।

जब ऐसे प्रभु ने नन्द महर को समझाया, तब वे धीर्य धर हाथ जोड़ बोले—प्रभु जो तुम्हारे ही जी में यों आया तो मेरा क्या वश है ? जाता हूँ तुम्हारा कहा टाल नहीं सकता। इतना वचन नन्द जी के मुख से सुनते ही हरि ने ग्वालबालों समेत नन्दराय को तो वृन्दाबन विदा किया, और आप कई सखाओं समेत दोनों भाई मथुरा में रहे, उस काल नन्द सहित गोपग्वाल चले।

चौ०-चले सकल मन सोचत भारी। हारे सर्वस मनहु जुवारी॥
काहू सुधि काहू सुधि नाहीं। लटपट चरण परत मग माहीं॥
जात वृन्दाबन देखत मधुबन। विरह विथा बाढ़ी व्याकुल तन॥

इस रीति से ज्यों त्यों कर वृन्दाबन पहुँचे। इनका आना सुनते ही यशोदा रानी अति अकुलाय कर दौड़ी आई, और रामकृष्ण को न देखा महा व्याकुल हो नन्द जी से कहने लगी :—

चौ०-अहो कन्त सुत कहाँ गँवाये। पट आभूषण लीनो आये।
कंचन फेंक काँच घर राख्यो। अमृत छाँड़ि मूढ़ विष चाख्यो॥
पारस पाये अंध ज्यों डारे। फिर गुण सुने कपारहिं मारे॥

ऐसे तुमने भी पुत्र गँवाये, और वसन आभूषण उसके पलटे ले आये अब उन बिन धन क्या करोगे ? हे मूर्ख कन्त ! जिनसे पलक ओट भये छाती फटे, कहो उन बिन दिन कैसे कटे।

जब उन्होंने तुम से बिछुड़ने को कहा—तब तुम्हारा हिया कैसा रहा।

इतनी बात सुन नन्द जी को बड़ा दुःख पाया और नीचा शिर कर यह वचन सुनाया कि सत्य है, ये वस्त्र अलंकार श्रीकृष्ण ने दिये, पर मुझे यह सुधि नहीं कि किसने लिये, और मैं कृष्ण की बात कहूँगा, सुनकर तू भी दुःख पावेगी।

चौपाई

कंस मार मोपै फिर आये। प्रीति हरण कहि वचन सुनाये ॥
वसुदेव के पुत्र वे भये। कर मनुहार हँकारी गये ॥
हों तब महरि अचम्भे रह्यो। पोषण भरण हमारा कह्यो ॥
अब न महरि हरि सो सुत कहिये।ईश्वर जानि भजन करि रहिये॥

उसे तो हमने पहिले ही नारायण जाना था, पर माया वश पुत्र कर माना। महाराज! जब नन्दराय जी ने सब बातें श्रीकृष्ण की कहीं यशोदा ने सनी, तिस समय माया वश हो यशोदा रानी कभी तो प्रभु को अपना पुत्र जान मन ही मन पछताय व्याकुल हो २ रोती थीं। और कभी ज्ञान कर ईश्वर जान उनका ध्यान धर गुण गाय गाय मन का खेद खोती थी। और इसी रीति से सब वृन्दाबनवासी क्या स्त्री क्या पुरुष हरि के प्रेम रंगराते अनेक अनेक प्रकार की बात करते थे, सो मेरी सामर्थ्य नहीं जो मैं वर्णन करूँ।

———

ऊधो-वृन्दावन-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि—पृथ्वीनाथ ! श्रीकृष्णचन्द्र ने बृन्दाबन की सुरति करी सो मैं सब लीला कहता हूँ, तुम चित्त दे सुनो, कि एक दिन हरि ने बलराम जी से कहा कि, भाई ! सब वृन्दावन-बासी हमारी सुरत कर अति दुःख पाते होंगे। क्योंकि जो हमने उनसे अवधि की थी सो बीत गई। इससे अब उचित है कि किसी को वहाँ भेज दीजे, जो जाकर उनका समाधान कर आवे।

यों भाई से मता कर हरि ने उद्धव को बुलाय के कहा कि, अहो उद्धव ! एक तो तुम हमारे बड़े सखा हो, दूजे अति चतुर ज्ञानवान् और धीर, इसलिये हम तुम्हें वृन्दाबन भेजा चाहते हैं कि तुम जाकर नन्द यशोदा और गोपियों को ज्ञान दे उनका समाधान कर आओ, और माता रोहिणी को ले आओ। उद्धव जी ने कहा जो आज्ञा।

फिर श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, तुम प्रथम नन्द महर और यशोदा जी को ज्ञान उपजाय उनके मन का मोह मिटाय ऐसे समझाय कर कहियो, जो वे मुझे निकट जान दुःख तजें पुत्रभाव छोड़ ईश्वर मान भजें।

महाराज ! ऐसे उद्धव को कह दोनों भाइयों ने मिल एक पाती लिखी, जिसमें नन्द यशोदा समेत गोप ग्वालबालों को तो यथा योग्य दण्डवत प्रणाम आशीर्वाद, और सब ब्रज युवतियों को योग का उपदेश लिख उद्धव के हाथ दी। और कहा कि यह पाती

तुम्हीं पढ़ सुनाइयो, जैसे बने तैसे उन सब सब को समझाय शीघ्र आइयो।

इतना संदेशा कह प्रभु ने निज वस्त्र आभूषण मुकुट पहिराय अपने ही रथ पर बैठाय उद्धव जी को वृन्दाबन विदा किया। ये रथ हाँके कितनी एक बेर में मथुरा से चलते २ वृन्दाबन के निकट जा पहुँचे, तो वहाँ देखते क्या हैं कि सघन २ कुञ्जों के पेड़ों पर भाँति भाँति के पक्षी मन भावन बोलियाँ बोल रहे हैं। और जिधर तिधर धौली पीली भूरी काली गायें घटा सीं फिरती हैं, और ठौर २ गोपी गोप ग्वालबाल श्री कृष्ण यश गाय रहे हैं।

यह शोभा निरख हर्षते और प्रभु का बिहारस्थल जान प्रणाम करके उद्धव जी जो गाँव के गैंड़े गये तो किसी दूर से हरि का रथ पहिचान पास आय इनका नाम पूँछा। नन्द महर से जा कहा कि महाराज! श्रीकृष्ण का भेष किये उन्हीं का रथ लिये कोई उद्धव नाम मथुरा से आया है।

इतनी बात सुनते ही नन्दराय जैसे गोप मण्डली के बीच अथाई पर बैठे थे, तैसे ही उठ धाये और तुरन्त उद्धव जी के निकट आये, राम कृष्ण जी का संगी जान अति हितकर मिले और कुशल क्षेम पूँछ बड़े आदरमान से घर लिवाय ले गये पहले पाँव धुलवाय आसन बैठने को दिया, पीछे षट्रस भोजन बनवा उद्धव जी की पहुनाई की, जब वे रुचि से भोजन कर चुके तब एक सुथरी उज्ज्वल फेनसी सेज बिछवा दी तिस पर पान खाय जाय उन्होंने पौढ़ कर अति सुख पाया और मार्ग का श्रम गँवाया। कितनी एक बेर में जो उद्धव जी सो के उठे त्यों नन्द महर उनके पास जा

बैठे और पूछने लगे कि कहो उद्धव जी! शूरसेन के पुत्र हमारे परम मित्र वसुदेव जी कुटुम्ब सहित आनन्द से हैं, और हम से कैसी प्रीति रखते हैं। यों कह फिर बोले:—

चौ०—कुशल हमारे सुत की कहो। जिन के संग सदा तुम रहो॥
कबहूँ वे सुधि करत हमारी। उन बिन दुःख पावत हम भारी॥
सबहीं सों आवन कह गये। बीती अवधि बहुत दिन भये॥

नित उठ यशोदा दही बिलोय माखन निकाल हरि के लिये रखती है। उसकी और ब्रजगोपियों की जो उनके प्रेम रंग में रंगी हैं, तिनकी सुरत कभी कान्ह करते हैं कि नहीं।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि पृथ्वीनाथ! इसी रीति से समाचार पूछते और श्रीकृष्णचन्द्रकी पूर्व लीला गाते २ नन्दराय जी तो प्रेम रस भीज इतना कह प्रभु का ध्यान धर अवाक्य हुए:—

चौ०—महाबली कंसादिक मारे। अब हम काहे कृष्ण बिसारे॥

कि इस बीच अति व्याकुल हो सुधि बुधि देह की बिसारे मन मारे रोती यशोदा रानी उद्धव जी के निकट आय राम कृष्ण की कुशल पूँछ बोली—कहो उद्धव जी! हरि हम बिन वहाँ कैसे इतने दिन रहे? और क्या संदेश भेजा है, कब आयं दर्शन देंगे। इतनी बात के सुनते ही पहले तो उद्धव जी ने नन्द यशोदा जी को श्रीकृष्ण बलराम की पाती बाँच सुनाय पीछे समझा कर कहने लगे कि जिनके घर में भगवान् ने जन्म लिया और बाललीला कर सुख दिया, तिनकी महिमा कौन कह सके। तुम बड़े भाग्यवान् हो, क्योंकि जो आदि पुरुष अविनाशी शिव विरञ्चि के कर्ता जिनके

माता न पिता न भाई न वन्धु तिसे तुम अपना पुत्र जान मानते हो और सदा उसी के ध्यान में मन लगाये रहते हो वह तुम से कब दूर रह सकता है। कहा है:--

चौ०-सदा समीप प्रेम वश हरी। जिनके हेत देह जिन धारी ॥
जाके वैरी मित्र न कोई। ऊँच नीच कोऊ किन होई ॥
कोई भक्ति भजन मन धरे। सोई हरि सों मिल अनुसरे ॥

जैसे भृङ्गी कीट को ले जाता है, और अपना रूप बनाय देता है और जैसे कमल के फूल में भौंरा मूँद जाता है, भौंरी रात भर उसके ऊपर गूँजती रहती है, उसे छोड़ और कहीं नहीं जाती, तैसेही जो हरि से हित करता है और उसका ध्यान धरता है, तिसे भी आप सा बना लेते हैं, और सदा उसके पास ही रहते हैं।

यों कह फिर उद्धव बोले कि अब तुम हरि को पुत्र कर मत जानो ईश्वर कर मानो वे अन्तर्य्यामी भक्त हितकारी प्रभु आय दर्शन दे तुम्हारा मनोरथ पूरा करेंगे तुम किसी बात की चिन्ता न करो।

महाराज! इसी रीति से अनेक २ प्रकार की बातें कहते २ सुनते २ जब सब रात व्यतीत भई और चार घड़ी पिछली रही, तब नन्दराय जी से उद्धव जी ने कहा--महाराज! अब दधि मथने की बिरियाँ हुई, जो आप की आज्ञा होय तो यमुना स्नान कर आऊँ, नन्द महर बोले--बहुत अच्छा। इतना कह वे तो वहाँ बैठे सोच विचार करते रहे, और उद्धव जी झट रथ में बैठ यमुना तीर पर गये, पहिले वस्त्र उतार देह शुद्ध करी, पीछे नीर के निकट जाय रज शिर चढ़ाय हाथ जोड़ कालिंदी की अति स्तुति गाय

आचमन कर जल में पैठे, और नहाय धोय सन्ध्या पूजा तर्पण से निश्चिन्त हो लगे जप करने।

अक्रूर-हस्तिनापुर गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, पृथ्वीनाथ! जब ऐसे श्रीकृष्ण जी ने अक्रूर के मुख से सुना, तब इन्होंने उन्हें पाण्डवों की सुधि लेने को विदा किया, वे रथ पर बैठ चले। कई एक दिन में मथुरा से हस्तिनापुर पहुँचे और रथ से उतर जहाँ राजा दुर्य्योधन अपनी सभा में सिंहासन पर बैठा था, वहाँ जाय जुहार कर खड़े हुए। इन्हें देखते ही दुर्य्योधन सभा समेत उठ कर मिला, और अति आदर मान से अपने पास बिठाय इनकी कुशल क्षेम पूँछ बोला :—

चौपाई

नीके सूरसेन वसुदेव। नीके हैं मोहन बलदेव॥
उग्रसेन राजा केहि हेत। नाहिंन काहू की सुधि लेत॥
पुत्रहि मार करत है राज। तिनहिं न काहू सों है काज॥

ऐसे जब दुर्य्योधन ने कहा--तब अक्रूर सुन चुप हो रहा, और मन ही मन कहने लगा कि यह पापियों की सभा है, मुझे यहाँ रहना उचित नहीं क्योंकि जो मैं रहूँगा तो यह ऐसी २ अनेक बातें कहेगा सो मुझ से सब सुनी न जायँगी, इस से यहाँ रहना भला नहीं।

यों विचार अक्रूर जी वहाँ से उठ विदुर को साथ ले पाण्डु के घर गये। तहाँ जाय देखैं तो कुन्ती पति के सोच से महा व्याकुल

हो रही है, उसके पास जा बैठे और लगे समझाने कि, भाई ! विधना से कुछ किसी का वश नहीं चलता, और सदा कोई अमर हो जीता भी नहीं रहता, देह धर जीव दुःख सुख सहता है। इसमें मनुष्य को चिन्ता करनी उचित नहीं क्योंकि चिन्ता किये से कुछ हाथ नहीं आता, केवल चित्त को दुःख देना है।

महाराज ! जब ऐसे समझाय बुझाय अक्रूर जी ने कुन्ती से कहा—तब वह सोच समझ चुप हो रही, और इनकी कुशल पूँछ बोली--अहो अक्रूर जी ! हमारे माता पिता और भाई वसुदेव जी कुटुम्ब समेत भले हैं और श्रीकृष्ण बलराम कभी युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, इन अपने पाँचों भाइयों की सुधि करते हैं ? ये तो यहाँ दुःख समुद्र में पड़े हैं, वे इनकी रक्षा अब आय करेंगे ? हम से अब तो इस अंध धृतराष्ट्र का द्वेष सहा नहीं जाता, क्योंकि वह दुर्य्योधन की मति से चलता है, इन पाँचों के मारने के उपाय में दिन रात रहता है, कई बेर तो विष घोल दिया, सो मेरे भीमसेन ने पी लिया।

इतना कह पुनि बोली--अहो अक्रूर जी ! जब सब कौरव यों बैर किये रहें, तब ये मेरे बालक किसका मुँह चहें और नीच से बच कैसे होयँ सयाने, यही दुःख बड़ा है हम क्या जाने, ज्यों हरिणी झुण्ड से बिछुड़ करती है त्रास, यों मैं भी सदा रहती हूँ उदास, जिन्होंने कंसादिक असुर संहारे सोई हैं मेरे रखवारे।

चौपाई

भीम युधिष्ठिर अर्जुन भाई। इनको दुःख तुम कहियो जाई॥

जब ऐसे दीन हो कुन्ती ने कहे बैन, तब सुन कर अक्रूर ने भर लिये नयन, और समझा के कहने लगा कि, माता! तुम कुछ चिन्ता मत करो। ये पाँचों पुत्र तुम्हारे हैं सो महाबली यशस्वी होंगे। शत्रु और दुष्टों को मार करेंगे निकन्द, इनके पक्षी हैं श्रीगोबिन्द, यों कह फिर अक्रूर जी बोले कि, श्रीकृष्ण बलराम ने मुझे यह कह तुम्हारे पास भेजा है कि फूफू से कहियो किसी बात से दुःख न पावें, हम वेग ही तुम्हारे निकट आते हैं।

महाराज! ऐसे श्रीकृष्ण की कही बातें कह अक्रूर जी कुन्ती को समझाय बुझाय आशा भरोसा दे बिदा हो विदुर को साथ ले धृतराष्ट्र के पास गये, और उनसे कहा तुम पुरुखा होय के ऐसी अनीति क्यों करते हो? जो पुत्र के वश होय अपने भाई का राजपाट ले भतीजों को दुःख देते हो, यह कहाँ का धर्म है, जो धर्म करते हो।

चौपाई

लोचन गये न सूझै हिये। कुल बहि जाय पाप के किये॥

तुमने अच्छे भले बैठे बिठाये क्यों भाई का राज्य लिया और भीम युधिष्ठिर को दुःख दिया।

इतनी बात के सुनते ही धृतराष्ट्र अक्रूर का हाथ पकड़ बोला कि, मैं क्या करूँ मेरा कहा कोई नहीं सुनता। ये सब अपनी २ मति से चलते हैं। मैं तो इनके सोंहीं मूर्ख हो रहा हूँ, इस से इनकी बातों में कुछ नहीं बोलता, एकान्त में बैठ चुपचाप अपने

प्रभु का भजन करता हूँ। इतनी बात जो धृतराष्ट्र ने कही तो अक्रूर जी दण्डवत् कर वहाँ से उठ रथ पर चढ़ हस्तिनापुर से चले २ मथुरा नगरी में आये।

दो०—उग्रसेन वसुदेव सों, कही पाण्डु की बात।
कुन्ती के सुन महादुःख, भये क्षीण अति गात॥

यों उग्रसेन वसुदेव जी से हस्तिनापुर के सब समाचार कह अक्रूर जी फिर श्रीकृष्ण बलराम जी के पास जा प्रणाम कर हाथ जोड़ बोले—महाराज! मैंने हस्तिनापुर में जाय देखा आप की फूफी और पाँचों भाई कौरवों के हाथ से महादुःखी हैं अधिक क्या कहूँगा। आप अन्तर्य्यामी हैं, वहाँ की अवस्था और विपरीत तुम से कुछ छिपी नहीं। यों कह अक्रूर जी तो कुन्ती का कहा संदेशा सुनाय बिदा हो अपने घर गये, और सब समाचार सुन श्रीकृष्ण बलदेव जो हैं सब देवन के देव, सो लोक रीति से बैठ चिन्ता कर भूमि का भार उतारने का विचार करने लगे।

इतनी कथा श्रीशुकदेव मुनि ने राजा परीक्षित को सुनाय कर कहा कि, हे पृथ्वीनाथ! यह जो मैंने ब्रजबन मथुरा का यश गाया सो पूर्व्वार्द्ध कहा अब आगे उत्तरार्द्ध गाऊँगा जो द्वारकानाथ का बल पाऊँगा॥

'जरासन्ध-बध

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र करुणासिन्धु दीनबन्धु भक्तहितकारी ऋषि मुनि ब्राह्मणों की सभा में बैठे थे, कि राजा युधिष्ठिर ने आय अति गिड़गिड़ाय बिनती

कर हाथ जोड़ शिर नाय के कहा कि, हे शिव विरञ्चि के ईश ! तुम्हारा ध्यान अगोचर हैं सदा सुर मुनि ऋषि योगीश। तुम हो अलख अगोचर अभेद, कोई नहीं जानता तुम्हारा भेद।

चौपाई

मुनि योगीश्वर इक चित ध्यावत। तिनके मन तृण कभूँ न आवत॥
हमको घरही दर्शन देतु। मानत प्रेम भक्त के हेतु॥
जैसी मोहन लीला करो। काहू पै नहिं जाने परो॥
माया में भूलो संसार। तुम सों करत लोक व्यवहार॥
को तुम को सुमिरत जगदीश। ताहि आपनो जानत ईश॥
अभिमानी ते हौ तुम दूर। सतवादी के जीवनमूर॥

महाराज ! इतना कह राजा युधिष्ठिर बोले कि, हे दीनदयालु ! आपकी दया से मेरे सब काम सिद्ध हुए पर एक ही अभिलाषा रही। प्रभु बोले सो क्या ? राजा ने कहा कि, महाराज ! मेरा यही मनोरथ है कि राजसूय यज्ञ कर आपको अर्पण करूँ तो भवसागर तरूँ।

इतनी बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न हो बोले कि, राजा ! यह तुमने भला मनोरथ किया। इसमें सुर, नर, मुनि, ऋषि, सब सन्तुष्ट होंगे। यह सब को भाता है और इसका करना तुम्हें कुछ कठिन नहीं। क्योंकि तुम्हारे चारों भाई अर्जुन, भीम, नकुल, सहदेव बड़े प्रतापी और अति बली हैं। संसार में ऐसा अब कोई नहीं जो इनके सन्मुख हो। पहिले इन्हें भेजिये कि ये दशों दिशा के राजाओं को जीत अपने वश कर आवें, पीछे आप निश्चिन्ताई से यज्ञ कीजे।

राजा ! प्रभु के मुख से इतनी बात ज्यों निकली त्यों ही राजा युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को बुलाय कटक दे चारों को चारों ओर भेज दिया। दक्षिण को सहदेव जी पधारे, पश्चिम को नकुल सिधारे, उत्तर को अर्जुन धाये, पूर्व में भीमसेन जी आये। आगे कितने एक दिन के बीच, महाराज ! वे चारों हरि प्रताप से सात द्वीप नवखण्ड जीत दशों दिशा के राजाओं को वश कर अपने साथ ले आये । उस काल राजा युधिष्ठिर ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्र जी से कहा कि, महाराज ! आपकी सहायता से यह काम तो हुआ अब क्या आज्ञा होती है ? इसमें उद्धव जी बोले कि, धर्म्मावतार ! सब देश के तो नरेश आये पर अब एक मगध देश का राजा जरासन्ध ही आपके वश नहीं और जब तक वह वश में न होगा, तब तक यज्ञ भी करना सफल न होगा। महाराज ! जरासन्ध राजा बृहद्रथ का बेटा महाबली बड़ा प्रतापी और अति दानी धर्म्मात्मा है। हर किसी की सामर्थ्य नहीं जो उसका सामना करे। इस बात को सुन ज्यों राजा युधिष्ठिर उदास हुए त्यों श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, महाराज ! आप किसी बात की चिन्ता न कीजै, भाई ! भीम अर्जुन समेत हमें आज्ञा दीजै, कैतो बल छल कर हम उसे पकड़ लावें कै मार आवें। इस बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने दोनों भाइयों को आज्ञा दी, तब हरि ने दोनों को अपने साथ ले मगध देश की बाट ली। आगे जाय पन्थ में श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन और भीम से कहा कि,

चौ०—विप्र रूप ह्वै पग धारिये। छल बल कर वैरी मारिये ॥

महाराज ! इतनी बात कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने ब्राह्मण का भेष किया, उनके साथ भीम अर्जुन ने भी विप्र वेष लिया। तीनों त्रिपुण्ड्र दिये, पुस्तक काँख में लिये, अति उज्ज्वल स्वरूप, सुन्दर रूप, बन ठन कर ऐसे चले कि जैसे तीनों गुण सत्व, रज, तम देह धरे जाते होयँ, कै तीनों काल। निदान कितने एक दिनों में चले चले ये मगध देश में पहुँचे और दोपहर के समय राजा जरासन्ध की पौर पर जा खड़े हुए। इनका भेष देख पौरियों ने अपने राजा से जा कहा कि महाराज ! तीन ब्राह्मण अतिथि बड़े तेजस्वी, महा पण्डित, अति ज्ञानी, कुछ काँछा लिये द्वार पर खड़े हैं हमें क्या आज्ञा होती है। महाराज ! बात के सुनते ही राजा जरासन्ध उठ आया और इन तीनों को प्रणाम कर अति मान सम्मान से घर में ले आया। आगे वह इन्हें सिंहासन पर बैठाय आप सन्मुख हाथ जोड़ खड़ा हो देख देख शोच २ बोला—

चौपाई

याचक जो द्वारे पर आवे। बड़ा नृपति सो अतिथि कहावे ॥
विप्र नहीं तुम योधा बली। बात न कछू कपट की भली ॥
जो ठग ठगनि रूप धरि आवे। ठग तो जाय भलो न कहावे ॥
छिपै न छत्री कान्ति तिहारी। दीखत शूर बीर बल भारी ॥
तेजवन्त तुम तीनों भाई। शिव विरञ्चि हरि से वरदाई ॥
मैं जान्यो जिय कर निर्माण। करो देव तुम आप बखान ॥
तुम्हरी इच्छा हो सो करौं। अपनी बाचा ते नहिं टरौं ॥
दानी मिथ्या कबहुँ न भाखै। धन तन सर्वस कछू न राखै ॥
माँगो सोई देहौं दान। सुत सुन्दरि सर्व्वस्व परान ॥

महाराज! इस बात के सुनते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि महाराज! किसी समय राजा हरिश्चन्द्र बड़ा दानी हो गया है कि, जिसकी कीर्त्ति अब तक संसार में छाय रही है। सुनिये, एक समय राजा हरिश्चन्द्र के देश में काल पड़ा और अन्न बिन सब लोग मरने लगे। तब राजा ने अपना सर्वस्व बेच के सबको खिलाया। देश नगर का धन गया और निर्धन हो राजा रहा। तब एक दिन साँझ समय यह तो कुटुम्ब सहित भूखा बैठा था कि इतने में विश्वामित्र ने आय इनका सत देखने को यह वचन कहा—महाराज! मुझे धन दीजै और कन्यादान का फल लीजै। इस वचन के सुनते ही जो कुछ घर में था सो दिया। पुनि ऋषि ने कहा—महाराज! मेरा काम इतने में न होगा। फिर राजा ने दास दासी बेच धन ला दिया, और धन जन गँवाय निर्धन निर्जन हो स्त्री पुत्र को ले रहा। पुनि ऋषि ने कहा कि धर्म्ममूर्त्ति! इतने धन से मेरा काम न होगा। अब मैं किसके पास जाय माँगूँ मुझे तो संसार में तुझसे अधिक धनवान् धर्म्मात्मा दानी कोई नहीं दृष्टि आता है। एक श्वपच मायापात्र है कहो तो उससे जाय धन माँगूँ, पर इसमें भी लाज आती है कि ऐसे दानी राजा को याँच उससे क्या याँचूँ। महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को साथ ले उस चाण्डाल के घर गये और इन्होंने उससे कहा कि, भाई! तू हमें एक वर्ष के लिये गहने धर और इनका मनोरथ पूरा कर। श्वपच बोला:—

चौ०—कैसे टहल हमारी करिहौ। राजस तामस मन तें हरिहौ॥
तुम नृप महातेज बलधारी। नीच टहल है खरी हमारी॥

महाराज ! हमारा तो यही काम है कि श्मशान में जाय चौकी दे और जो मृतक आवे उसका कर ले पुनि हमारे घरबार की चौकसी करै। तुमसे यह हो सके तो मैं रुपये दूँ और तुम्हें बन्धक रक्खूँ। राजा ने कहा—अच्छा मैं वर्ष भर तुम्हारी सेवा करूँगा तुम इन्हें रुपये दो। महाराज ! इतना वचन राजा के मुख से निकलते ही श्वपच ने विश्वामित्र को रुपये गिन दिये। वह ले अपने घर गया और राजा वहाँ रह उसकी सेवा करने लगा। कितने एक दिन पीछे कालवश हो राजा हरिश्चन्द्र का पुत्र रोहिताश्व मर गया। उस मृतक को ले रानी मरघट में गई और ज्यों चिता बनाय अग्निसंस्कार करने लगी त्योंही राजा ने आय कर माँगा।

चौ०-रानी बिलखि कहि शिर नाय। देखो समझ हिये तुम राय ॥

यह तुम्हारा पुत्र रोहित है और देने को मेरे पास और कुछ नहीं एक यही चीर है जो पहिरे खड़ी हूँ। राजा ने कहा—मेरा इसमें कुछ वश नहीं मैं स्वामी के कार्य्य पर खड़ा हूँ जो स्वामी का काम न करूँ तो मेरा सत जाय। महाराज ! इस बात के सुनते ही रानी ने चीर उतारने को ज्यों आँचल पर हाथ डाला त्यों तीनों लोक काँप उठे। वहीं भगवान् ने राजा रानी का सत देख पहिले एक विमान भेज दिया और पीछे से आय दर्शन दे तीनों का उद्धार किया। महाराज ! जब विधाता ने रोहित को जिलाया राजा रानी को पुत्र सहित विमान पर बैठाय वैकुण्ठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिश्चन्द्र ने हाथ जोड़ भगवान् सेकहा कि, हे दीनबन्धु ! पतितपावन ! दीनदयालु ! मैं श्वपच

बिना वैकुण्ठ धाम में जा क्या करूँ विश्राम ? इतना वचन सुन और राजा के मन का अभिप्राय जान श्रीभक्तहितकारी करुणासिन्धु हरि ने पुरी समेत श्वपच को भी राजा रानी कुँवर के साथ तारा ।

चौपाई

वहाँ हरिश्चन्द्र अमर पद पायो । यहाँ युगन युग यश चलि आयो ॥

महाराज ! यह प्रसंग जरासन्ध को सुनाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने कहा कि, महाराज ! और सुनिये कि, रन्तिदेव ने ऐसा तप किया कि अड़तालीस दिन बिन पानी रहा और जब जल पीने बैठा तिसी समय कोई प्यासा आया इसने वह नीर आप न पी उस तृषावन्त को पिलाया, उस जलदान से उसने मुक्ति पाई । पुनि राजा बलि ने अति दान किया तो पाताल का राज्य लिया और अब तक उसका यश चला जाता है । फिर देखिये कि उद्दालक मुनि छठे महीने अन्न खाते थे एक समय खाती विरियाँ उसके यहाँ अतिथि आया, उसने अपना भोजन आप न खाया भूँखे को खिलाया और उस क्षुधा ही में मरे । निदान अन्न दान करने से बैकुण्ठ को गये चढ़ कर विमान । पुनि एक समय देवताओं को साथ ले राजा इन्द्र ने जाय दधीचि से कहा कि, महाराज ! हम वृत्रासुर के हाथ से अब बच नहीं सकते जो आप अपनी अस्थि हमें दीजै तो उसके हाथ से बचें नहीं तो बचना कठिन है क्योंकि तुम्हारे हाड़ से आयुध बिना किसी भाँति न मारा जायगा । महाराज ! इतनी बात के सुनते ही दधीचि ने शरीर गाय से चटवाय जाँघ का हाड़ निकाल दिया । देवताओं ने ले उस अस्थि का वज्र बनाया और दधीचि ने प्राण गँवाया, वैकुण्ठ धाम पाया ।

चौ०—ऐसे दाता भये अपार। तिनको यश गावत संसार॥

राजा! यों कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने जरासन्ध से कहा कि, महाराज! जैसे आगे और युगों में धर्म्मात्मा दानी राजा हो गये हैं तैसे अब इस काल में तुम हो। ज्यों आगे उन्होंने याचकों की अभिलाषा पूरी की त्यों तुम अब हमारी आश पुजाओ, कहा है,—

दो०—याचक काह न माँगई, दाता काह न देय।
गृह सुत सुन्दरि लाभ नहिं, तन धन दे यश लेय॥

इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही जरासन्ध बोला कि याचक को दाता की पीर नहीं होती तौ भी दानी धीर अपनी प्रकृति नहीं छोड़ता इसमें सुख पावै कै दुःख। देखो हरि ने कपट रूप कर बामन बन राजा बलि के पास जाय तीन पग पृथ्वी माँगी। उस समय शुक्र ने बलि को चिताया, तौ भी राजा ने अपना प्रण न छोड़ा।

चौ०—देह समेत मही तिन दई। ताकी जग में कीरति भई॥
याचक विष्णु कहा यश लीना। सर्वस ले तोऊ हठ कीना॥

इससे तुम पहिले अपना नाम भेद कहो तब जो तुम माँगोगे सो मैं दूँगा, मैं मिथ्या नहीं भाषता। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि, राजा! हम क्षत्री हैं वासुदेव मेरा नाम है, तुम भली भाँति हमें जानते हो और ये दोनों अर्जुन, भीम हमारे फुफेरे भाई हैं, हम युद्ध करने को तुम्हारे पास आये हैं हमसे युद्ध कीजै। हम यही तुमसे माँगने आये हैं और कुछ नहीं माँगते। महाराज! यह बात श्रीकृष्णचन्द्र जी से सुन जरासन्ध हँस कर बोला कि मैं तुझ से क्या लड़ूँ? तू मेरे सोंहीं से भाग चुका है और अर्जुन से भी न लड़ूँगा,

क्योंकि यह विदर्भ देश गया था तहाँ नारी का भेष करके रहा। भीमसेन से कहो तो इससे लड़ूँ, यह मेरे समान का है इससे लड़ने में मुझे कुछ लाज नहीं।

चौ०—पहिले तुम सब भोजन करो। पाछे मल्ल अखाड़े करो॥
भोजन दे नृप बाहर आयो। भीमसेन तहँ बोलि पठायो॥
अपनी गदा ताहि तिन दई। गदा दूसरी आपुनि लई॥

दो०—जहाँ सभा मण्डप बन्यो, बैठे जाय मुरारि॥
जरासन्ध अरु भीम तहँ, भये ठाढ़ इकबारि॥

चौ०—टोपा शीश काछनी काछे। बने रूप नटवर के आछे॥

महाराज! जिस समय दोनों वीर अखाड़े में खम ठोंक गदा तान ध्वजा पलट भूम कर सन्मुख आये, उस काल ऐसे जनाये कि मानों दो मतङ्ग मतवाले उठ धाये। आगे जरासन्ध ने भीम से कहा कि पहिले गदा तू चला क्योंकि तू ब्राह्मण का भेष ले मेरी पौर पर आया था इससे मैं पहिले प्रहार तुझ पर न करूँगा। यह बात सुन भीमसेन बोले कि, राजा! हम से तुमसे धर्म युद्ध है इससे यह ज्ञान न चाहिये। जिसका जी चाहे सो पहिले शस्त्र करे, महाराज! उन दोनों वीरों ने परस्पर ये बातें कर एक साथ ही गदा चलाई और युद्ध करने लगे।

चौ०—ताकत घातैं अपनी अपनी। चोट करत बाईं अरु दहिनी॥
अङ्ग बचाय उछरि पग धरैं। झरपैं गदा गदा सों लरैं॥
खटपट चोट गदा पटकारी। लागत शब्द कुलाहल भारी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इसी भाँति वे दोनों बली दिन भर तो धर्म युद्ध

करते और साँझ को घर आय एक साथ भोजन कर विश्राम करते। ऐसे नित्य लड़ते लड़ते सत्ताइस दिन भये, तब एक दिवस उन दोनों के लड़ने के समय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मनही मन विचारा कि यह तो न मारा जायगा क्योंकि जब यह जन्मा था तब दो फाँक हो जन्मा था। उस समय जरा राक्षसी ने आय जरासन्ध का मुँह और नाक मूँदी तब दोनों फाँक मिल गई। यह समाचार सुन उसके पिता बृहद्रथ ने ज्योतिषियों को बुलाय के पूँछा कि, कहो! इस लड़के का नाम क्या होगा ? और कैसा होगा ? ज्योतिषियों ने कहा कि, महाराज! इसका नाम जरासन्ध हुआ और यह बड़ा प्रतापी और अजर अमर होगा, जब तक इसकी सन्धि न फटेगी तब तक यह किसी से न मारा जायगा। इतना कह ज्योतिषी बिदा हो चले गये। महाराज! यह बात श्रीकृष्ण जी ने मन में शोच और अपना बल दे भीमसेन को तिनका चीर सैन से जताया कि इसे इसी रीति से चीर डालो। प्रभु के चिताते ही भीमसेन ने जरासन्ध को पकड़ कर दे मारा और एक जाँघ पर पाँव दे दूसरा पाँव हाथ से पकड़ यों चीर डाला कि जैसे कोई दाँतन चीर डाले। जरासन्ध के मरते ही सुर नर गन्धर्व ढोल दमामे भेर बजाय २ फूल बर्षाय २ जय जयकार करने लगे और दुःख द्वन्द्व जाय सारे नगर में आनन्द हो गया। उसी बिरियाँ जरासन्ध की नारी रोती पीटती आ श्रीकृष्णचन्द्र जी के सन्मुख खड़ी हो हाथ जोड़ बोली कि धन्य है धन्य है नाथ! तुम ने जो ऐसा काम किया, कि जिसने सर्वस्व दिया तुमने उसका प्राण लिया। जो जन तुम्हें सुत बित्त और समर्पें देह, उससे तुम करते हो ऐसा ही स्नेह।

चौपाई

कपट रूप कर छल बल कियो। जगत आय तुम यह यश लियो ॥

महाराज! जरासन्ध की रानी ने जब करुणा कर करुणा-निधान के आगे हाथ जोड़ बिनती कर यों कहा तब प्रभु ने दयालु हो पहिले जरासन्ध की क्रिया की। पीछे उसके सुत सहदेव को बुलाय राजतिलक दे सिंहासन पर बिठाय के कहा कि, पुत्र! नीति सहित राज्य कीजो और ऋषि मुनि गो ब्राह्मण की रक्षा करो।

सर्वभूपति हस्तिनापुर-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! राजपाट पर बैठाय समझाय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सहदेव से कहा कि राजा! अब तुम जाय उन राजाओं को ले आओ जिन्हें तुम्हारे पिता ने पहाड़ की कन्दरा में मूँद रक्खा है। इतना बचन प्रभु के मुख से सुनते ही जरासन्ध का पुत्र सहदेव बहुत अच्छा कह कन्दरा के निकट जाय उसके मुख से शिला उठाय आठ सौ बीस सहस्र राजाओं को निकाल हरि के सन्मुख ले आया। आते ही हथकड़ियाँ बेड़ियाँ पहिने गले में साँकल लोहे की डाले, नख केश बढ़ाये तन छीन मन मलीन मैले भेष, सब राजा प्रभु के सन्मुख पाँति २ खड़े हो हाथ जोड़ विनती कर बोले—हे कृपासिन्धु! दीनबन्धु! आपने भले समय आय हमारी सुधि ली नहीं तो सब मर चुके थे। तुम्हारा दर्शन पाया हमारे जी में जी आया, पिछला दुःख सब गँवाया। महाराज! इस बात के सुनते ही कृपासागर श्रीकृष्णचन्द्र ने ज्यों उन पर दृष्टि की त्यों बात की बात में सहदेव उनको ले जाय हथ-

कड़ी बेड़ी कटवाय क्षौर कराय निह्लाय धुलवाय षट्रस भोजन खिलाय वस्त्र आभूषण पहराय शस्त्र अस्त्र बँधवाय पुनि हरि के सोंहीं लिवाय लाया। उस काल श्रीकृष्ण जी ने उन्हें चतुर्भुजी हो शंख चक्र गदा पद्म धारण कर दर्शन दिया। प्रभु का स्वरूप भूप देखते ही हाथ जोड़ बोले—नाथ! तुम संसार के कठिन बंधन से जीव को छुड़ाते हो। तुम्हें जरासंध की बंदि से हमें छुड़ाते क्या कठिन था? जैसे आपने कृपाकर हमें इस कठिन बन्धन से छुड़वाया तैसे ही अब हमें गृहरूप कूप से निकाल काम, क्रोध, लोभ, मोह से छुड़ाइये जो हम एक एकान्त बैठ आपका ध्यान धरैं और भवसागर तरैं। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! जब सब राजाओं ने ऐसे ज्ञान वैराग भरे वचन कहे तब श्रीकृष्ण-चन्द्र प्रसन्न हो बोले कि सुनो जिसके मन में मेरी भक्ति है वे निस्संदेह भुक्ति मुक्ति पावेंगे। बंध मोक्ष मन ही का कारण है, जिसका मन स्थिर है तिन्हें घर और बन समान है। तुम किसी बात की चिन्ता मत करो आनंद से घर में बैठ नीति सहित राज्य कर प्रजा को पालो, गो ब्राह्मण की सेवा में रहो, झूंठ मत भाषो, काम लोभ क्रोध अभिमान तजो, भाप भुक्ति से हरि को भजो, तुम निस्संदेह परमपद पाओगे। संसार में आय जिसने अभिमान किया वह बहुत न जिया, देखो अभिमान ने किसे २ न खो दिया।

चौपाई

सहस बाहु अति बली बखान्यो। परशुराम ताको बल भान्यो॥
वेणु भूप रावण हो भयो। गर्व्व आपने सोऊ गयो॥

भौमासुर बाणासुर कंस । भये गर्व्वते ते विध्वंस ॥
श्रीमद गर्व्व करो जिन कोय । त्यागे गर्व्व सो निर्भय होय ॥

इतना कह श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सब राजाओं से कहा कि अब तुम अपने अपने घर जाओ कुटुम्ब से मिल अपना राज-पाट सँभाल हमारे न पहुँचते पहुँचते हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर के यहाँ राजसूय यज्ञ में शीघ्र आओ । महाराज ! इतना वचन श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से निकलते ही सहदेव ने सब राजाओं के जाने का सामान जितना चाहिये तितना बात की बात में ला उपस्थित किया। वे ले प्रभु से विदा हो अपने २ देश को गये और श्रीकृष्णचन्द्र जी भी सहदेव को साथ ले भीम अर्जुन सहित वहाँ से चले २ आनंद मङ्गल से हस्तिनापुर आये। आगे प्रभु ने राजा युधिष्ठर के पास जाय जरासन्ध के मारने के समाचार और सब राजाओं के छुड़ाने के ब्योरे समेत कह सुनाये। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द जी के हस्तिनापुर पहुँचते पहुँचते वे सब राजा भी अपनी २ सेना ले भेंट सहित आन पहुँचे और राजा युधिष्ठिर से भेंट कर भेंट दी। श्रीकृष्णचन्द्र जी की आज्ञा ले हस्तिनापुर के चारों ओर जा उतरे और यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए।

शिशुपाल-मोक्ष

श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा ! जैसे यज्ञ राजा युधिष्ठर ने किया और शिशुपाल मारा गया, तैसे मैं सब कथा कहता हूँ तुम

चित्त दे सुनो। बीस सहस्र आठ सौ राजाओं के जाते ही चारों ओर के और जितने राजा थे क्या सूर्यवंशी और क्या चन्द्रवंशी तितने सब आय हस्तिनापुर में उपस्थित हुए। उस समय श्रीकृष्ण-चन्द्र और राजा युधिष्ठिर ने मिल कर सब राजाओं का सब भाँति शिष्टाचार कर समाधान किया और हर एक को एक एक काम यज्ञ का सौंपा। आगे श्रीकृष्णचन्द्र जी ने राजा युधिष्ठिर से कहा कि, महाराज! भीम अर्जुन नकुल सहदेव सहित हम पाँचों भाई तो सब राजाओं को साथ ले ऊपर की टहल करैं और आप ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय यज्ञ का आरम्भ कीजिये। महाराज! इतनी बात के सुनते ही राजा युधिष्ठिर ने सब ऋषि मुनि ब्राह्मणों को बुलाय कर पूँछा कि, महाराज! जो जो वस्तु यज्ञ में चाहिये सो २ आज्ञा कीजै। महाराज! इस बात के सुनते ही ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने ग्रंथ देख देख यज्ञ की सब सामग्री एक पत्र पर लिख दी और राजा ने वहीं मँगवाय उनके आगे धरवा दीं। ऋषि मुनि ब्राह्मणों ने मिल यज्ञ की वेदी रची, चारों वेद के सब ऋषि मुनि ब्राह्मण वेदी के बीच आसन बिछा २ जाय बैठे। पुनि पवित्र होय स्त्री सहित गांठ जोड़ बाँध राजा युधिष्ठिर भी आय बैठे और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, धृतराष्ट्र, दुर्योधन, शिशुपाल आदि जितने योद्धा और बड़े बड़े राजा थे वे भी आन बैठे। ब्राह्मणों ने स्वस्तिवाचन कर गणेश पुजवाय, कलश स्थापन कर ग्रहस्थापन किया। राजा ने भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, व्यास, कश्यप आदि बड़े २ ऋषि मुनि ब्राह्मणों का वरण किया और उन्होंने वेद मन्त्र पढ़ पढ़ सब देवताओं

का आवाहन किया और राजा से यज्ञ का संकल्प करवाय होम का आरम्भ किया। महाराज ! मंत्र पढ़ पढ़ ऋषि मुनि ब्राह्मण आहुति लगे देने और देवता प्रत्यक्ष हाथ बढ़ाय २ लेने। उस समय ब्राह्मण वेद पाठ करते थे और सब राजा होमने की सामग्री ला ला देते थे और राजा युधिष्ठर होमते थे कि, इस में निर्द्वन्द्व यज्ञ पूर्ण हुआ और राजा ने पूर्णाहुति दी। उस काल सुर नर मुनि सब राजा को धन्य धन्य कहने लगे और यक्ष, गंधर्व, किन्नर, बाजन बजाय बजाय यश गाय गाय फूल वर्षाने लगे। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! यज्ञ से निश्चिन्त हो राजा युधिष्ठिर ने सहदेव को बुलाय के पूँछा :--

चौ०-पहिले पूजा काकी कीजै। अक्षत तिलक कौन को दीजै ॥
कौन बड़ो देवन को ईश। साहि पूज हम नावैं शीश ॥

सहदेव जी बोले कि, महाराज ! सब देवों के देव हैं वासुदेव, कोई नहीं जानता इनका भेद। वे हैं ब्रह्मा रुद्र इन्द्र के ईश, इन्हीं को पहिले पूज नवाइये शीश। जैसे तरुवर की जड़ में जल देने से सब शाखा हरी होती हैं, तैसे हरि की पूजा करने से सब देवता संतुष्ट होते हैं। यही जगत् के कर्ता हैं और यही उपजाते पालते मारते हैं। इनकी लीला है अनन्त, कोई नहीं जानता इनका अन्त। येई हैं प्रभु अलख अगोचर अविनाशी, इन्हीं के चरण कमल सदा सेवती हैं कमला भई दासी। भक्तों के हेतु बार २ लेते हैं अवतार, तनु धर करते हैं लोक व्यवहार।

चौ०-बंधु कहत घर बैठे आवैं । अपनी माया मोहिं भुलावैं ॥
महा मोह हम प्रेम भुलाने । ईश्वर को भ्राता करि जाने ॥
इनते बड़ो न दीसत कोई । पूजा प्रथम इन्हीं को होई ॥

महाराज ! इस बात के सुनते ही सब ऋषि मुनि और राजा बोल उठे कि, राजा ! सहदेव जी ने सत्य कहा, प्रथम पूजने योग्य हरि ही हैं। तब तो राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्णचन्द्र जी को सिंहासन पर बैठाय आठों पटरानियों समेत चन्दन, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर पूजा। पुनि सब देवताओं ऋषियों मुनियों ब्राह्मणों और राजाओं की पूजा की। रंग रंग के जोड़े पहिनाय चन्दन केशर की खौरें कीं, फूलों के हार पहराय सुगन्ध लगाय, यथायोग्य, राजा ने सब की मनुहार की, श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा !

चौपाई

हरि पूजत सब को सुख भयो । शिशुपालहिं को शिर भू नयो ॥

कितनी एक बेर तक तो वह शिर झुकाये मनहीं मन कुछ शोच विचार करता रहा। निदान कालवश हो अति क्रोध कर सिंहासन से उतर सभा के बीच निस्संकोच निडर हो बोला कि, इस सभा में धृतराष्ट्र, दुर्योधन, भीम, कर्ण, द्रोणाचार्य आदि सब बड़े बड़े ज्ञानी मानी हैं पर इस समय सबकी गति मति मारी गई। बड़े बड़े मुनीश बैठे रहे और नन्दगोप के सुत की पूजा भई और कोई कुछ न बोला। जिसने ब्रज में जन्म ले ग्वालबालों की जूँठी छाक खाई, तिसी की इस सभा में भई प्रभुताई बड़ाई।

चौपाई

ताहि बड़ो सब कहत अचेत। सुरपति को बलि कागहि देत ॥

जिसने गोपी और ग्वालों से स्नेह किया, इस सभा में तिस ही को सब से बड़ा साधु बनाय दिया। जिसने दूध, दही, मही, माखन, घर घर चुराय खाया, उसी का यश सब ने मिल गाया, बाट घाट में जिसने लिया दान, उसी का यहाँ हुआ सन्मान। परनारी से जिसने छल बल किया, सब ने मता कर उसी को पहिले तिलक दिया। ब्रज में से इन्द्र की पूजा जिसने उड़ाई और पर्वत की पूजा ठहराई, पुनि राजा की सब सामग्री गिरि के निकट लिवाय ले जाय मिसकर आपही खाई, तौ भी उसे लाज न आई। जिसकी जाति पाँति और माता पिता कुल धर्म का पता नहीं ठिकाना, तिसी को अलख अविनाशी कर सबने माना। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! इस भाँति से कालवश होय राजा शिशुपाल अनेक अनेक बुरी बातें श्रीकृष्णचन्द्र जी को कहता था और श्रीकृष्णचन्द्र जी सभा के बीच सिंहासन पर बैठे सुन सुन एक एक बात पर एक एक लकीर खैंचते थे। इस बीच भीष्म, कर्ण, द्रोण, और बड़े २ राजा हरिनिन्दा सुन अति क्रोध कर बोले कि, अरे मूर्ख ! तू सभा में बैठा हमारे सन्मुख प्रभु की निन्दा करता है। रे चाण्डाल चुप रह नहीं अभी पछाड़ मार डालते हैं। महाराज ! यह कह शस्त्र ले ले सब राजा शिशुपाल के मारने को उठ धाये। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द ने सबको रोक कर कहा कि तुम इस पर शस्त्र मत

करो, खड़े खड़े देखो यह आपसे आप ही मारा जाता है। मैं इसके सौ अपराध सहूँगा, क्योंकि मैंने वचन हारा है। सौ से बढ़ती न सहूँगा, इसलिये मैं रेखा काढ़ता जाता हूँ। महाराज! इतनी बात के सुनते ही सब ने हाथ जोड़ श्रीकृष्णचन्द्र से पूछा कि, कृपानाथ! इसका क्या भेद है जो आप इसके सौ अपराध क्षमा करियेगा। सो कृपा कर हमें समझाइये जो हमारे मन का सन्देह जाय। प्रभु बोले कि जिस समय यह जन्मा था तिस समय इसके तीन नेत्र और चार भुजा थीं। यह समाचार पाय इसके पिता दमघोष राजा ने ज्योतिषियों और बड़े बड़े पण्डितों को बुलाय के पूँछा कि यह लड़का कैसा हुआ? इसका विचार कर मुझे उत्तर दो। राजा की बात सुनते ही पण्डितों और ज्योतिषियों ने शास्त्र विचार के कहा कि, महाराज! यह बड़ा बली और प्रतापी होगा और यह भी हमारे विचार में आता है कि जिसके मिलने से इसकी एक आँख और दो बाँह गिर पड़ेंगी यह उसी के हाथ मारा जायगा। इतना सुन इसकी माँ महादेवी शूरसेन की बेटी वसुदेव की बहिन हमारी फूफी अति उदास भई और आठ पहर पुत्र ही की चिन्ता में रहने लगी। कितने एक दिन पीछे एक समय पुत्र को लिये पिता के घर मथुरा में आई और इसे सबसे मिलाया। जब यह मुझ से मिला तब इसकी एक आँख और दो बाँह गिर पड़ीं। तब फूफी ने मुझे वचन बद्ध करके कहा कि इसकी मीच तुम्हारे हाथ है तुम इसे मत मारियो, मैं यह भीख तुम से माँगती हूँ। मैंने कहा—अच्छा सौ अपराध हम इसके न गिनेंगे, इस उपरान्त अपराध करेगा तो हनेंगे।

हतसे. यह बचन ले फूफू सबसे बिदा हो इतना कह पुत्र सहित अपने घर गई कि, यह सौ अपराध क्यों करेगा जो कृष्ण के हाथ से मारैगा। महाराज! इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्ण जी ने सब राजाओं के मन का भ्रम मिटाय उन लकीरों को गिना जो एक एक अपराध पर खैंची थीं, गिनते ही सौ से बढ़ती हुई। तभी प्रभु ने सुदर्शनचक्र को आज्ञा दी उसने झट शिशुपाल का सिर काट डाला। उसके धड़ से जो ज्योति निकली सो एकबार आकाश को धाई फिर आय सबके देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र के मुख में समाई। यह चरित्र देख सुर मुनि जयजयकार करने लगे और पुष्प बर्षाने लगे, उस काल श्रीमुरारी भक्त हितकारी ने उसे तीसरी मुक्ति दी और उसकी क्रिया की। इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि, महाराज ! तीसरी मुक्ति प्रभु ने किस भाँति दी सो मुझे समझाय के कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! एक बार यह हिरण्यकशिपु हुआ, तब प्रभु ने नृसिंह अवतार ले तारा। दूसरी बेर रावण भया, तो हरि ने रामावतार ले उसका उद्धार किया अब तीसरी बिरिया यह है इसी से तीसरी मुक्ति भई। इतना सुन राजा ने मुनि से कहा कि, महाराज! अब आगे कथा कहिये। श्रीशुकदेव जी बोले कि, राजा! यज्ञ के चुकते ही राजा युधिष्ठिर ने सब राजाओं को स्त्री सहित बागे पहराये ब्राह्मणों को अगणित दान दिया। देने का काम यज्ञ में राजा दुर्योधन का था, द्वेष कर एक की ठौर अनेक दिये। इसमें उसका यश हुआ तौ भी वह प्रसन्न न हुआ।

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! यज्ञ के पूर्ण होते ही श्रीकृष्णजी राजा युधिष्ठिर से बिदा हो सब सेना ले कुटुम्ब सहित हस्तिनापुर से चले २ द्वारकापुरी पधारे। प्रभु के पहुँचते ही घर २ मंगलाचार होने लगा और सारे नगर में आनन्द हो गया।

सुदामा-द्वारका-गमन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि, जैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा, सो तुम मन दे सुनो। दक्षिण दिशा की ओर है एक द्राविड़ देश, तहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश। जिस के राज्य में घर घर होता था भजन स्मरण और हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप, यज्ञ, धर्म्म, दान और साधु सन्त गौ ब्राह्मण का सन्मान।

चौ०—ऐसे सबही तिहि ठौर। हरि बिन कछू न जाने और ॥

तिसि देश में सुदामा नाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरुभाई अतिदीन तनक्षीण महादरिद्री ऐसा कि जिसके घर पै न घास न खाने को कुछ रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय, महादुःख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय, डरती काँपती बोली कि, महाराज ! अब इस दरिद्र के हाथ से महादुःख पाते हैं। जो आप इसे खोया चाहिये तो मैं एक उपाय बताऊँ ब्राह्मण बोला—सो क्या ? कहा तुम्हारे परममित्र त्रिलोकी-नाथ द्वारकावासी श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द हैं, जो उनके पास जाओ तो यह जाय। क्योंकि वे अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष के दाता

हैं। महाराज ! जब ब्राह्मणी ने ऐसा समझाय कर कहा तब सुदामा बोला कि, प्रिये! बिन दिये श्रीकृष्णचन्द्र भी किसी को कुछ नहीं देते, मैं भली भाँति से जानता हूँ कि जन्म भर मैंने किसी को कभी कुछ नहीं दिया, बिन दिये कहाँ से पाऊँगा। हाँ तेरे कहे से जाऊँगा तो श्रीकृष्ण जी के दर्शन कर आऊँगा। इस बात के सुनते ही ब्राह्मणी ने एक अति पुराने धौले वस्त्र में थोड़े से चावल बाँध ला दिये, प्रभु की भेंट के लिये और डोरी लोटा लाठी ला आगे धरी। तब तो सुदामा डोरी लोटा काँधे पर डाल चावल की पोटली काँख में दबाय, लाठी हाथ में ले गणेश को मनाय, श्रीकृष्ण जी का ध्यान कर, द्वारकापुरी को पधारा। महाराज ! बाट ही में चलते २ सुदामा मनही मन कहने लगा कि, भला धन तो मेरे प्रारब्ध में नहीं पर द्वारका जाने से श्री कृष्णचन्द्र आनन्द-कन्द का दर्शन तो पाऊँगा। इसी भाँति से शोच विचार करता २ सुदामा तीन पहर के बीच द्वारकापुरी में पहुँचा तो क्या देखता है कि नगर के चारों ओर समुद्र है और बीच में पुरी, वह पुरी कैसी है कि जिसके चहुँ ओर वन उपवन फूल फूल रहे हैं, तड़ाग वापी इन्दारों पर रहँट परोहे चल रहे हैं, ठौर ठौर गायों के यूथ के यूथ चर रहे हैं, तिनके साथ ग्वाल बाल न्यारे ही कुतूहल करते हैं। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! सुदामा वन उपवन की शोभा निरख पुरी के भीतर जाय देखे तो कञ्चन के मणिमय मन्दिर महासुन्दर जगमगाय रहे हैं, ठाँव ठाँव अथाइयों में यदुवंशी इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं, हाट बाट चौहटों में नानाप्रकार की वस्तु विक रही हैं, घर घर जिधर तिधर गान दान

हरि भजन और प्रभु का यश हो रहा है और सारे नगर निवासी महा आनन्द में हैं। महाराज ! यह चरित्र देखता २ और श्री-कृष्णाचन्द्र का मन्दिर पूँछता सुदामा जा प्रभु की सिंह पौर पर खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते २ पूछा कि श्रीकृष्णाचन्द्र जी कहाँ विराजते हैं ? उसने कहा कि, देवता ! आप मन्दिर के भीतर जाओ सन्मुख ही श्रीकृष्णाचन्द्र जी रत्न सिंहासन पर बैठे हैं। महाराज ! इतना बचन सुन सुदामा जी भीतर गया तो देखते ही श्रीकृष्णाचन्द्र सिंहासन से उतर आगे बढ़ भेंट कर अति प्यार से हाथ पकड़ उसे ले गये। पुनि सिंहासन पर बिठाय पाँव धोय चरणामृत लिया। आगे चन्दन चरच, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीपकर, प्रभु ने सुदामा की पूजा की ।

चौ०—इतनी करके जोरे हाथ। कुशल क्षेम पूँछत यदुनाथ ॥

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज ! यह चरित्र देख श्रीरुक्मिणी जी समेत आठों पटरानियाँ और सोलह सहस्त्र एक सौ रानियाँ और सब यदुवंशी जो उस समय वहाँ थे मन ही मन में कहने लगे कि, इस दरिद्री दुर्बल मलीन वस्त्रहीन ब्राह्मण ने ऐसा क्या अगले जन्म पुण्य किया था, जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना ? महाराज ! अन्तर्यामी श्री-कृष्णाचन्द्र उस काल सब के मन की बात समझ उनके सन्देह मिटाने को सुदामा से गुरु के घर की बातें करने लगे। भाई ! तुम्हें वह सुधि है जो एक दिन गुरुपत्नी ने हमें तुम्हें ईंधन लेने भेजा था और जब वन से ईंधन ले गठरियाँ बाँध शिर पर धर घर को चले तब आँधी और मेह आया और लगा मूसलाधार बर्षाने,

जल थल चारों ओर भर गया हम तुम ने भींग कर महादुःख पाया जाड़ा खाय रात भर एक वृक्ष के नीचे रहे, भोर ही गुरुदेव बन में ढूँढ़ने आये और अति करुणा कर आशीश दे हमें तुम्हें अपने साथ घर लिवाय लाये।

इतना कह पुनि श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, भाई! जब से तुम गुरुदेव के यहाँ से बिछुड़े तब से हमने तुम्हारा समाचार न पाया था कि कहाँ थे और क्या करते थे? अब आय दर्श दिखाय तुमने हमें महा सुख दिया और घर पवित्र किया। सुदामा बोला—हे कृपासिन्धु! दीनबन्धु! स्वामी अन्तर्यामी! तुम सब जानते हो, कोई बात संसार में ऐसी नहीं जो तुम से छिपी हो।

सुदामा-दारिद्रगमन

श्रीशुकदेव मुनि जी बोले कि, महाराज! अन्तर्यामी श्रीकृष्ण जी ने सुदामा की बात सुन और उसके अनेक मनोरथ समझ हँस कर कहा कि, भाई! भाभी ने हमारे लिये क्या भेंट भेजी है? सो देते क्यों नहीं? काँख में किस लिये दबाय रहे हो? महाराज! यह वचन सुन सुदामा तो सकुचाय शिर झुकाय रहा और प्रभु ने झट चावल की पोटली उसकी काँख से निकाल ली। पुनि खोल उसमें से अति रुचि कर दो मुट्ठी चावल खाय और ज्यों तीसरी मुट्ठी भरी त्यों श्री रुक्मिणी जी ने हरि का हाथ पकड़ा और कहा कि, महाराज! आपने दो लोक तो इसे दिये, अब अपने रहने को भी कोई ठौर रक्खेंगे कि नहीं।। यह तो ब्राह्मण सुशील कुलीन अति

वैरागी महात्यागी सा दृष्टि आता है क्योंकि इसे विभव पाने से कुछ हर्ष न हुआ। इससे मैंने जाना कि ये लाभ हानि समान जानते हैं, इन्हें पाने का हर्ष न पाने का शोक।

इतनी बात रुक्मिणी जी के मुख से निकलते ही श्रीकृष्ण-चन्द्र जी ने कहा कि, हे प्रिये! यह मेरा परम मित्र है। इसके गुण मैं कहाँ तक बखानूँ सदा सर्वदा मेरे स्नेह में मग्न रहता है और उसके आगे संसार के सुख तृणवत् समझता है। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! ऐसे अनेक २ प्रकार की बातें कर प्रभु रुक्मिणी जी को समझाय सुदामा को मन्दिर में लिवाय ले गये। आगे षट्रस भोजन करवाय, पान खिलाय, हरि सुदामा को फेन सी सेज पर ले जाय बैठाया। वह पथ का हारा थका तो था ही सेज पर जाय सुख पाय सो गया। प्रभु ने उस समय विश्वकर्मा को बुलाय के कहा कि तुम अभी जाय सुदामा के मन्दिर अति सुन्दर कञ्चन रत्न के बनाय तिन में अष्टसिद्धि नवनिधि धर आओ जो इसे किसी बात की कांक्षा न रहे। इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही विश्वकर्मा वहाँ जाय बात की बात में बनाय आया और हरि से कह अपने स्थान को गया। भोर होते ही सुदामा उठा स्नान ध्यान भजन पूजा से निश्चिन्त हो प्रभु के पास बिदा होने गया। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी मुख से तो कुछ न बोले पर प्रेम में मग्न हो आँखें डबडबाय शिथिल हो देखते रहे। सुदामा बिदा हो प्रणाम कर अपने घर को चला और पन्थ में जाय मनहीं मन विचार करने लगा कि, भला भया जो मैंने प्रभु

से कुछ न माँगा जो उनसे कुछ माँगता तो वे देते तो सही पर मुझे लोभी लालची समझते। कुछ चिन्ता नहीं, ब्राह्मणी को मैं समझाय लूँगा। श्रीकृष्णचन्द्र जी ने मेरा अति मान सन्मान किया और निर्लोभी जाना, यही मुझे लाख है। महाराज! ऐसे सोच विचार करता करता सुदामा अपने ग्राम के निकट आया, तो क्या देखता है कि न वह ठाँव है न वह टूटी मड़ैया, वहाँ तो एक इन्द्रपुरी सी बस रही है। देखते ही सुदामा अति दुखित हो कहने लगा कि, हे नाथ! तू ने यह क्या किया? एक दुःख तो था ही दूसरा और दुःख दिया। यहाँ से मेरी झोंपड़ी क्या हुई? और ब्राह्मणी कहाँ गई, किससे पूछूँ और किधर ढूँढूँ। इतना कह द्वार पर जाय सुदामा ने द्वारपाल से पूँछा कि यह मन्दिर अति सुन्दर किसके हैं? द्वारपाल ने कहा श्रीकृष्णचन्द्र जी के मित्र सुदामा के हैं। यह बात सुन सुदामा ज्यों कुछ कहने को हुआ त्यों भीतर से देख उसकी ब्राह्मणी अच्छे वस्त्र आभूषण पहिने नख शिख से श्रृङ्गार किये पान खाये सुगन्ध लगाये सखियों को साथ लिये पति के निकट आई।

चौ०-पाँयन पर पाटम्बर डारे। हाथ जोड़ ये वचन उचारे॥
ठाड़े क्यों मन्दिर पग धारी। मनसों सोच करो तुम न्यारी॥
तुम पाछे विश्वकर्म्मा आये। तिन मन्दिर पल माँझ बनाये॥

महाराज! इतनी बात ब्राह्मणी के मुख से सुन सुदामा जी मन्दिर में गये और अति विभव देख महा उदास भये। ब्राह्मणी बोली--स्वामी धन पाये लोग प्रसन्न होते हैं तुम उदास हुए इसका कारण क्या है? सो कृपा कर कहिये, जो मेरे मन का सन्देह

जाय। सुदामा बोला कि, हे प्रिये! यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है और ठगती है, और ठगेगी। सो प्रभु ने मुझे दी और मेरे प्रेम की प्रतीति न की। मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी? इसी से मेरा चित्त उदास है। ब्राह्मणी बोली स्वामी जी! तुमने तो श्रीकृष्णचन्द्र से कुछ न माँगा था पर वे अन्तर्य्यामी घट २ की जानते हैं मेरे मन में धन की वासना थी, सो प्रभु ने पूरी की। तुम अपने मन में और कुछ मत समझो। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! इस प्रसंग को जो सदा सुने सुनावेगा; सो सब जगत में आय दुःख कभी न पावेगा, और अन्तकाल वैकुण्ठ धाम जावेगा।

वसुदेव-यज्ञकरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! अब मैं सब ऋषियों के आने की और वसुदेव जी के यज्ञ करने की कथा कहता हूँ तुम चित्त दे सुनो। महाराज! एक दिन राजा उग्रसेन, शूरसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम, सब यदुवंशियों समेत सभा किये बैठे थे और सब देश देश के नरेश वहाँ उपस्थित थे कि इस बीच श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के दर्शन की अभिलाषा कर व्यास, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वामदेव, पराशर, भृगु, पुलस्त्य, भरद्वाज, मार्कण्डेय आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि वहाँ आये और तिनके साथ नारद जी भी। उन्हें देखते ही सभा की सभा सब उठ खड़ी हुई, पुनि सब दण्डवत् कर पाटम्बर के पाँवड़े डाल सबको सभा में ले

ाये। आगे श्रीकृष्णचन्द्र ने सब को आसन पर बैठाय पाँव धोय चरणामृत ले पिया और सारी सभा पर छिड़का फिर चन्दन अक्षत, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य कर भगवान् ने सब की पूजा कर परिक्रमा की। पुनि हाथ जोड़ कर सन्मुख खड़े हो हरि बोले कि धन्य भाग हमारे जो आपने आय घर बैठे दर्शन दिया, साधु का दर्शन गङ्गा के स्नान समान है। जिसने साधु का दर्शन पाया, उसने जन्म का पाप गँवाया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज!

चौ०—श्रीभगवान् वचन जब कहे। तव सब ऋषि बिचारत रहे॥

कि जो प्रभु है ज्योतिस्वरूप और सकल सृष्टि का कर्त्ता सो जब यह बात कहे तब और की किसने चलाई? मन ही मन सब मुनियों ने जब इतना कहा तब नारद जी बोले:—

चौ०—सुनो सभा तुम सब मन लाय। हरि माया जानी नहिं जाय॥

ये आपही ब्रह्मा हो उपजावते हैं, विष्णु हो पालते हैं, शिव हो संहारते हैं। इनकी गति अपरम्पार है, इसमें किसी की बुद्धि काम नहीं करती। पर इतना इनकी कृपा से हम जानते हैं कि साधुओं के सुख देने को और दुष्टों को मारने को और सनातनधर्म्म चलाने को बार २ अवतार ले प्रभु आते हैं। महाराज! ज्यों इतनी बात कह नारद जी सभा से उठने को हुये त्यों वसुदेव जी सन्मुख आय हाथ जोड़ विनती कर बोले कि, हे ऋषिराज! मनुष्य संसार में आय कर्म्म से कैसे छूटे? सो कृपा कर कहिये। महाराज! यह वसुदेव जी के मुख से निकलते ही सब ऋषि मुनि नारद जी का मुख देखते रहे। तब नारद जी ने मुनियों के

मन का अभिप्राय समझ कर कहा कि, हे देवाताओं! तुम इस बात का अचरज मत करो, श्रीकृष्ण जी की माया प्रबल है। इसने सारे संसार को जीत रक्खा है। इसी से वसुदेव जी ने यह बात कही और दूसरे ऐसे भी कहा है कि जो जन जिसके समीप रहता है वह उसका गुण प्रभाव और प्रताप माया के वश हो नहीं जानता। जैसे :—

चौ० गंगा वासी अनतहिं जाय। तज के गंग कूप जल न्हाय॥
योंही यादव भये अयाने। ये नाहिं कछू कृष्ण गति जाने॥

इतनी बात कह नारद जी ने मुनियों के मन का सन्देह मिटाया। वसुदेव जी से कहा कि, महाराज! शास्त्र में कहा है जो नर तीर्थ, दान, तप, व्रत, यज्ञ करता है सो संसार के बन्धन से छूट परम गति पाता है। इस बात के सुनते ही प्रसन्न हो वसुदेव जी ने बात की बात में सब यज्ञ की सामग्री मँगाय उपस्थित की और ऋषियों मुनियों से कहा कि कृपा कर यज्ञ को आरम्भ कीजे। महाराज! वसुदेव जी के मुख से इतने वचन के निकलते ही सब ब्राह्मणों ने यज्ञ का स्थान बनाय सँवारा। इस बीच स्त्रियों समेत वसुदेव जी वेदी में जा बैठे। सब राजा और यादव यज्ञ की टहल में आ उपस्थित हुए। इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि, महाराज! जिस समय वसुदेव जी वेदी में जा बैठे उस काल वेद की विधि से मुनियों ने यज्ञ का आरम्भ किया और लगे वेद मन्त्र पढ़ २ आहुति देने और देवता सदेह आय २ भाग लेने। महाराज! जिस काल यज्ञ होने लगा उस काल उधर किन्नर, गन्धर्व, भेरी दुन्दुभी बजाय २

गुण गाते थे, चरण बन्दीजन यश बखानते थे, उर्वशी आदि अप्सरा नाचती थीं और देवता अपने २ विमानों में बैठे फूल बर्षावते थे और इधर सब मँगली लोग गाय बजाय मङ्गलाचार करते थे और याचक जयजयकार! इसमें यज्ञ पूर्ण हुआ और वसुदेव जी पूर्णाहुति दे ब्राह्मणों को पाटम्बर पहिराय अलंकृत कर रत्न धन बहुत सा दिया और उन्होंने वेद मन्त्र पढ़ २ आशीर्वाद दिया। सब देश २ के नरेशों को भी वसुदेव जी ने पहिराया और जिमाया, पुनि उन्होंने यज्ञ की भेंट कर २ बिदा हो अपनी बाट ली। महाराज! सब राजाओं के जाते ही नारद जी समेत सारे ऋषि मुनि भी बिदा हुए। पुनि नन्दराय जी गोपी गोप ग्वालबाल समेत सब वसुदेव जी से बिदा होने लगे, उस समय की बात कुछ कही नहीं जाती। इधर तो यदुवंशी करुणाकर अनेक २ प्रकार की बातें करते थे और उधर सब व्रजवासी, उसका बखान कुछ कहा नहीं जाता वह सुख देखते ही बनि आवे। निदान वसुदेव जी और श्रीकृष्णचन्द्र बलराम जी ने सब समेत नन्दराय जी को समझाय बुझाय पहिराय और बहुत सा धन दे बिदा किया। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! इस भाँति श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी पर्व्व न्हाय यज्ञ कर सब समेत जब द्वारकापुरी में आये तो घर २ आनन्द मङ्गल भये बधाये।

———

देवकी मृतक पुत्र-जीवन

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! द्वारकापुरी के बीच एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र और बलराम जी जो वसुदेव जी के पास गये तो वे इन दोनों भाइयों को देख यह बात मन में विचार उठ खड़े हुये कि कुरुक्षेत्र में नारद जी ने कहा था कि श्रीकृष्णचन्द्र जगत् के कर्त्ता हैं और हाथ जोड़ बोले कि, हे प्रभु! अलख अगोचर अविनाशी, सदा सेवती हैं तुम्हें कमला भई दासी। तुम हो सब देवों के देव कोई नहीं जानता तुम्हारा भेव। तुम्हारी ही ज्योति है चन्द्र, सूर्य्य, पृथ्वी, आकाश, तुम्हीं करते हो सब ठौर प्रकाश। तुम्हारी माया है प्रबल, उसने सारे संसार को भुलाय रक्खा है, त्रिलोकी में सुर नर मुनि ऐसा कोई नहीं जो उसके हाथ से बचा हो। महाराज! इतना कह पुनि वसुदेव जी बोले कि, नाथ!

चौपाई

कोउ न भेद तुम्हारो जानै। वेदन बाँझ अगाध बखानै॥
शत्रु मित्र नहिं कोउ निहारो। पुत्र पिता न सहोदर प्यारो॥
पृथ्वी भार हरण अवतरो। जन के हेतु भेद बहु धरो॥

महाराज! ऐसे कह वसुदेव जी बोले कि, हे करुणासिंधु! दीनबन्धु! जैसे आपने अनेक २ पतितों को तारा, तैसे कृपा कर मेरा भी निस्तार कीजै जो भवसागर के पार हो आपके गुण गाऊँ। श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि हे पिता! तुम ज्ञानी होय पुत्रों की बड़ाई क्यों करते हो? टुक आप ही मन में विचारो कि

भगवत् की लीला अपरम्पार है उसका पार आज तक किसी ने नहीं पाया, देखो वह,

चौपाई

घट घट माहिं ज्योति ह्वै रहै। वाही सों जग निर्गुण कहै॥
आपहि सिरजे आपहि हरै। रहै मिल्यो बाँध्या नहिं परै॥
भू आकाश वायु जल ज्योति। पंचतत्व तें देह जो होति॥
प्रभु की शक्ति सबनि में रहै। वेद माहिं विधि ऐसे कहै॥

महाराज! इतनी श्रीकृष्णचन्द्र जी के मुख से सुनते ही वसुदेव जी मोहवश होय चुप कर हरि का मुख देख रहे। तब प्रभु वहाँ से चल माता के निकट गये तो पुत्र का मुख देखते ही देवकी जी बोलीं—हे श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द! एक दुःख मुझे अब तब शालै है। प्रभु बोले--सो क्या? देवकी जी ने कहा कि, पुत्र! तुम्हारे छः बड़े भाई जो कंस ने मार डाले हैं उनका दुःख मेरे मन से नहीं जाता। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! बात के कहते ही श्रीकृष्णचन्द्र जी बोले कि, माता! तुम अब मति कुढ़ो मैं अपने भाइयों को अभी जाय ले आता हूँ। इतना कह पाताल-पुरी को गये, प्रभु के जाते ही समाचार पाय राजा बलि आय अति धूमधाम से पाटम्बर के पाँवड़े डाल निज मन्दिर में लिवाय ले गया। आगे सिंहासन पर बैठाय राजा बलि ने चन्दन अक्षत पुष्प चढ़ाय, धूप दीप नैवेद्य धर, श्रीकृष्णचन्द्र की पूजा की। पुनि सन्मुख खड़ा हो हाथ जोड़ अति स्तुति कर बोला कि, महाराज! आपका आना यहाँ कैसे हुआ? हरि बोले कि, राजा! सतयुग में मरीचि ऋषि नाम एक ऋषि बड़े ब्रह्मचारी ज्ञानी

सत्यवादी और हरिभक्त थे उनकी स्त्री का नाम उरना था उसके छः बेटे थे, एक दिन छहों भाई तरुण अवस्था में प्रजापति के सन्मुख जा हँसे, उनको हँसता देख प्रजापति ने महाकोप कर यह शाप दिया कि तुम जाय अवतार ले असर हो। इस बात के सुनते ही ऋषिपुत्र अति भय खाय प्रजापति के चरणों पर जाय गिरे और बहुत गिड़गिड़ाय अति विनती कर बोले कि, कृपासिन्धु! आपने तो शाप दिया पर अब कृपा कर कहिये कि इस शाप से कब मोक्ष पावेंगे? उनके दीन बचन सुनि प्रजापति ने दयालु हो कहा कि तुम श्रीकृष्णचन्द्र के दर्शन पाय मुक्त होंगे।

चौपाई

इतनी कहत प्राण तब गये। ते हिरणाकुश पुत्र जु भये॥
पुनि वसुदेव के जन्मे जाय। तिनको हत्यो कंस ने आय॥
मार तिन्हें माया लै आई। यह ठाँ राखि गई सुखदाई॥

उनका दुःख माता देवकी करती हैं इसलिये हम यहाँ आये हैं कि अपने भाइयों को ले जाय माता को देंगे और उनके चित्त की चिन्ता दूर करेंगे। श्रीशुकदेव जी बोले कि इतना वचन हरि के मुख से निकलते ही राजा बलि ने छहों बालक ला दिये और बहुत सी भेंट आगे धरी, तब प्रभु वहाँ से भाइयों को साथ ले माता के पास आये। माता पुत्रों को देखि अति प्रसन्न हुई, इस बात को सुन सारी पुरी में आनन्द हुआ और उनका शाप छूटा।

नरनारायण-नारद-संवाद

इतनी कथा सुन राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव जी से पूँछा कि, महाराज! आप जो आगे कह आये कि वेद ने परम ईश्वर की स्तुति की सो निर्गुण ब्रह्म की स्तुति वेद ने क्योंकर की? यह मुझे समझाय कर कहो जो मेरे मन का सन्देह जाय। श्रीशुकदेव जी बोले कि महाराज! सुनिये कि जिसने बुद्धि, इन्द्रिय, मन, प्राण, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को बनाया है सो प्रभु सदा निर्गुण रूप रहता है पर जब ब्रह्माण्ड रचता है तब सगुण स्वरूप होता है इस से निर्गुण सगुण वही एक ईश्वर है। इतना कह पुनि श्रीशुकदेव मुनि बोले कि, राजा! जो प्रश्न तुमने किया सोई प्रश्न एक समय नारद जी ने नरनारायण से किया था। राजा परीक्षित ने कहा कि महाराज यह प्रसंग मुझे समझा कर कहिये जो मेरे मन का सन्देह जाय। शुकदेव जी बोले कि, राजा! सत्युग में एक समय नारद जी ने सत्यलोक में जाय जहाँ नरनारायण अनेक मुनियों के संग बैठे तप करते थे पूँछा कि, महाराज! निराकार ब्रह्म की स्तुति वेद किस भाँति करते हैं? सो कृपा कर कहिये। नरनारायण बोले कि, सुन नारद! जो सन्देह तूने मुझ से पूँछा यही सन्देह एक समय जन लोक में जहाँ सनातनादि ऋषि बैठे तप करते थे वहाँ हुआ था। तब सनन्दन मुनि ने कथा कह सब का सन्देह मिटाया। नारद जी बोले कि, महाराज! मैं भी तो वहीं रहता हूँ जो यह प्रसंग चलता तो मैं भी सुनता। नरनारायण ने कहा--नारद जी! तब तुम श्वेत द्वीप में भगवत् दर्शन को गये थे तभी यह प्रसंग चला था इससे तुमने नहीं सुना। इतनी बात सुन

नारद जी ने पूँछा, महाराज! वहाँ क्या प्रसंग चला था? सो कृपा कर कहिये। नरनारायण बोले कि, सुन नारद! जब मुनियों ने यह प्रश्न किया तब सनन्दन मुनि कहने लगे कि सुनो जिस समय महाप्रलय होय चौदह ब्रह्माण्ड जलाकार हो जाते हैं उस समय पूर्णब्रह्म अकेले सोते रहते हैं। जब भगवान् को सृष्टि करने की इच्छा होती है तब उनके श्वास से वेद निकल हाथ जोड़ स्तुति करते हैं, ऐसे कि जैसे कोई राजा अपने स्थान पर सोता हो और वन्दीजन भोरहीं उसका यश गाय गाय उसी को जगावें इसीलिये कि चैतन्य हो शीघ्र अपने कार्य्य को करें। इतना प्रसङ्ग कह नरनारायण बोले कि, सुन नारद! प्रभु के मुख से निकल वेद यह कहते हैं कि, हे नाथ! वेग चैतन्य हो सृष्टि रचो और जीवों के मन से अपनी माया दूर करो क्योंकि वे तुम्हारे रूप को पहिचानें, माया तुम्हारी प्रबल है यह सब जीवों को अज्ञान कर रखती है जो इससे छूटें तो जीव को तुम्हारे समझाने का ज्ञान हो। हे नाथ! तुम बिन इसे कोई वश नहीं कर सकता जिसके हृदय में ज्ञानरूप हो तुम विराजते हो सोई इस माया को जीतता है नहीं तो किसकी सामर्थ्य है जो माया के हाथ से बचे? तुम सबके कर्त्ता हो सब जीव तुम्हीं से उत्पन्न हो तुम्हीं में समाते हैं ऐसे कि जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तु हो पुनि पृथ्वी में मिल जाती हैं। कोई किसी देवता की पूजा स्तुति करे पर वह तुम्हारी ही पूजा स्तुति होती है; ऐसे कि जैसे कोई कञ्चन के अनेक आभरण बनाय अनेक नाम धरे पर वह कञ्चन ही है, तिसी भाँति तुम्हारे अनेक रूप हैं और ज्ञान कर देखिये तो कोई कुछ नही, जिधर देखिये तिधर तुम ही तुम

दृष्टि पड़ते हो। नाथ! तुम्हारी माया अपरम्पार है। यही सत्व, रज, तम, तीन गुण हो तीन स्वरूप धारण कर सृष्टि को उपजाय पालन नाश करती है इसका भेद किसी ने न पाया न कोई पावेगा! इससे जीव को उचित यह है कि सब वासना छोड़ तुम्हारा ध्यान करे इसी में इसका कल्याण है। महाराज! इतना प्रसङ्ग सुनाय नर-नारायण ने नारद जी से कहा कि, हे नारद! जब सनन्दन मुनि ने पुरातन कथा कह सबके मन का सन्देह दूर किया, तब शौनकादि मुनियों ने वेद की विधि से सनन्दन मुनि की पूजा की। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, हे राजा! यह नरनारायण का संवाद जो कोई सुनेगा सो निस्सन्देह मुक्ति पदार्थ पाय मुक्त होगा। जो कथा पूर्ण ब्रह्म वेद ने गाई सोई कथा सनन्दन मुनि ने शौनकादि मुनियों को सुनाई पुनि वही कथा नरनारायण ने नारद के आगे गाई नारद से व्यास ने पाई, व्यास ने मुझे पढ़ाई। सो मैंने अब तुम्हें सुनाई। इस कथा को जो सुने सुनावेगा सो मन मानता फल पावेगा! जो पुण्य होता है तप, यज्ञ, दान, व्रत, तीर्थ करने में सोई पुण्य होता है इस कथा के कहने सुनने में।

रुद्रमोक्ष वृकासुर-वध

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! भगवत् की अद्भुत लीला है इसे सब कोई जानता है, जो जन हरि की पूजा करे सो दरिद्री होय और महादेव को मानें सो धनवान्। देखो हरि हर की कैसी रीति? ये लक्ष्मीपति, वे गौरीपति, ये धरें वनमाल, वे धरें मुण्ड-माल, ये चक्रपाणि, वे त्रिशूलपाणि, ये धरणीधर, वे गङ्गाधर,

ये मुरली बजावें, वे शृंगी, ये वैकुण्ठनाथ, वे कैलाशनाथ, ये प्रतिपालें, वे संहारें, ये चरचें चन्दन, वे लगावें भस्म, ये ओढ़ें अम्बर, वे बाघम्बर, ये पढ़ें वेद, वे आगम, इनका वाहन गरुड़, उनका नन्दी, ये रहें ग्वालवालों में, वे भूत प्रेतों में।

चौ०-दोऊ प्रभु की उलटी रीति। जित इच्छा तित कीजै प्रीति॥

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज! राजा युधिष्ठिर से श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा कि, हे युधिष्ठिर! जिस पर मैं अनुग्रह करता हूँ, हौले २ उसका सब धन खोता हूँ, इसलिये कि धनहीन को भाई बन्धु स्त्री पुत्र आदि सब कुटुम्ब के लोग तज देते हैं तब उसे वैराग्य उपजता है। वैराग्य होने से धन जन की माया छोड़ निर्मोही हो मन लगाय मेरा भजन करता है। भजन के प्रताप से अटल निर्व्वाण पद पाता है। इतनी कथा कह पुनि शुकदेव जी कहने लगे कि, महाराज! और देवता की पूजा करने से मन कामना पूरी होती है पर मुक्ति नहीं मिलती। यह प्रसंग सुनाय मुनि ने पुनि राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! एक समय कश्यप का पुत्र वृकासुर तप करने की अभिलाषा कर ज्यों घर से निकला त्यों पन्थ में उसे नारद मुनि मिले। नारद जी को देखते ही इसने दण्डवत् कर हाथ जोड़ सम्मुख खड़ा हो अति दीनता कर पूछा कि महाराज! ब्रह्मा विष्णु, महादेव, इन तीनों देवताओं में शीघ्र वरदाता कौन है? सो कृपा कर कहो तो मैं उन्हीं की तपस्या करूँ नारद जी बोले कि, सुन वृकासुर! इन तीनों देवताओं में महादेव जी बड़े वरदाई हैं, इन्हें न रीझते विलम्ब न खीझते, देखो शिव जी ने थोड़े से तप

करने में प्रसन्न हो सहस्रार्जुन को सहस्र हाथ दिये और अल्प ही अपराध में क्रोध कर उसका नाश किया। महाराज! इमना कह नारद मुनि तो चले गये और वृकासुर अपने स्थान पर आय महादेव का अति तप यज्ञ करने लगा। सात दिन के बीच उसने छुरी से अपने शरीर का मांस सब काट काट होम दिया। आठवें दिन जब शिर काटने को मन किया तब भोलानाथ ने आय उसका हाथ पकड़ के कहा कि मैं तुझ से प्रसन्न हुआ जो तेरी इच्छा में आवे सो वर माँग मैं तुझे अभी दूंगा। इतना वचन शिव जी के मुख से निकलते ही वृकासुर हाथ जोड़ कर बोला:—

दो०-ऐसो वर दीजै अबै, जा शिर राखों हाथ।
भस्म होय सो पलक में, करहु कृपा तुम नाथ॥

महाराज बात के कहते ही, महादेव जी ने उसे मुँह माँगा वर दिया। वर पाय वह शिव जी के शिर पर हाथ धरने गया। उस काल भय खाय महादेव जी अपना आसन छोड़ भागे उनके पीछे असुर भी दौड़ा। महाराज! सदाशिव जी जहाँ जहाँ फिरे तहाँ तहाँ वह भी उनके पीछे ही लगा आया। निदान अति व्याकुल महादेव जी वैकुण्ठ में गये। इनको महा दुखित देख भक्तहितकारी वैकुण्ठनाथ श्री मुरारी करुणानिधान करुणाकर विप्र भेष धर वृकासुर के सन्मुख जाय बोले कि, हे असुरराय! तुम इनके पीछे क्यों श्रम करते हो? यह मुझे समझा कर कहो। बात के सुनते ही वृकासुर ने सब भेद कह सुनाया। पुनि भगवान बोले कि, हे असुरराय? तुम सा सयाना हो धोखा खाय, यह बड़े अचरज की बात है। इस नंग सनंगे बावले भाँग धतूर खाने वाले योगी की

बात कौन सत्य माने ? यह सदा भस्म लगाये सर्प लिपटाये भयानक भेष किये भूत प्रेतों को संग लिये श्मशान में रहता है, इसकी बात किसके जी में आवे ? महाराज ! यह बात कह श्रीनारायण बोले कि, हे असुरराय ! जो तुम मेरा कहा झूठ न मानो तो अपने शिर पर हाथ रख देख लो।

महाराज ! प्रभु के मुख से इतनी बात सुनते ही माया के वश अज्ञान हो ज्यों वृकासुर ने अपने शिर पर हाथ धरा त्यों जल कर भस्म का ढेर हुआ। असुर के मरते ही सुरपुर में आनन्द के बाजन बजने लगे और लगे देवता जय जयकार कर फूल वर्षाने, विद्याधर गन्धर्व किन्नर हरिगुण गाने। उस काल हर ने हरि को स्तुति कर विदा किया और वृकासुर को मोक्ष पदार्थ दिया। श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! इस प्रसंग को जो सुने सुनावेगा सो निस्सन्देह हरिहर की कृपा से परम पद पावेगा।

द्विजकुमार-हरण

श्रीशुकदेव जी बोले कि, महाराज ! एक समय सरस्वती के तीर सब ऋषि मुनि बैठे तप यज्ञ करते थे, कि उनमें से किसी ने पूँछा कि ब्रह्मा विष्णु महेश इन तीनों देवताओं में बड़ा कौन है ? सो कृपा कर कहो। इसमें किसी ने कहा कि विष्णु, किसी ने कहा ब्रह्मा, और किसी ने महादेव, पर सब ने मिल एक को बड़ा न बताया। तब कई एक बड़े २ मुनीशों ऋषीश्वरों ने कहा कि हम यों तो किसी की बात नहीं मानते। पर हाँ, जो कोई इन

तीनों देवताओं की जाके परीक्षा कर आये और धर्म्मस्वरूपी कवे तो उसका कहना सत्य मानै। महाराज! यह बात सुन सबने प्रणाम किया और ब्रह्मा के पुत्र भृगु को तीनों देवताओं की परीक्षा कर आने को आज्ञा दी। आज्ञा पाय भृगु मुनि प्रथम ब्रह्मलोक में गये और चुपचाप ब्रह्मा की सभा में जा बैठे। न दण्डवत् की न स्तुति न परिक्रमा दी। राजा! पुत्र का अनाचार देख ब्रह्मा ने महा कोप किया और चाहा कि शाप दूँ, पर पुत्र में ममता कर न दिया। उस काल भृगु ब्रह्मा को रजोगुण में आसक्त देख वहाँ से उठ कैलाश में गये और जहाँ शिव पार्वती विराजते थे, वहाँ जा खड़े भये, इन्हें देख शिव जी खड़ा हो ज्यों हाथ पसार मिलने को हुए त्यों यह बैठ गया, वैठते ही शिवजी ने अति क्रोध किया और इसके मारने को त्रिशूल हाथ में लिया। उस समय पार्वती जी ने अति विनती कर पावों पड़ महादेव जी को समझाया और कहा कि यह तुम्हारा छोटा भाई है, इसका अपराध क्षमा कीजे।

चौ०-चूक कछू बालक सों परै। साधु न कबहूँ मन में धरै॥

महाराज! जब पार्वती जी ने शिव को समझा कर ठण्डा किया तब भृगु महादेव जी को तमोगुण में लीन देख चल खड़े हुए। पुनि वैकुण्ठ में गए, जहाँ भगवान् मणिमय कञ्चन के छपर-खट पर फूलों की सेज पर सोते थे। जाते ही भृगु ने भगवान् के हृदय में एक लात ऐसी मारी कि वे नींद से चौंक पड़े। मुनि को देख लक्ष्मी को छोड़ छपरखट से उतर हरि भृगु जी का पाँव थाम शिर आँखों से लगाय लगे दाबने और यों

कहने कि, हे ऋषिराज ! मेरा अपराध क्षमा कीजै, मेरे कठोर हृदय की चोट तुम्हारे कोमल चरण कमल में अनजाने लगी, यह दोष चित्त में न लीजै। इतना वचन प्रभु के मुख से निकलते ही भृगु जी अति प्रसन्न हो स्तुति कर विदा हो वहाँ आये जहाँ सरस्वती तीर सब ऋषि मुनि बैठे थे; आते ही भृगु जी ने तीन देवताओं का भेद सब ज्यों का त्यों कह सुनाया कि,

चौपाई

ब्रह्मा राजस के लपटान्यो। महादेव तामस में सान्यो॥
विष्णु जो सात्विक माहिं प्रधान। तिनते बड़ो देव नहिं आन॥
सुनत ऋषिन को संशय गयो। सब ही के मन आनन्द भयो॥
विष्णु प्रशंसा सब ने करी। अबिचल भक्ति हृदय में धरी॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज ! मैं अन्तर कथा कहता हूँ; तुम मन लगाय सुनो। द्वारकापुरी में राजा उग्रसेन तो धर्म्मराज करते थे और श्रीकृष्णचन्द्र बलराम उनके आज्ञाकारी। राजा के राज्य में सब लोग अपने २ धर्म्म में सावधान, काज कर्म्म में सज्ञान रहते थे और आनन्द चैन करते थे, तहाँ एक ब्राह्मण भी अति सुशील धर्मिष्ठ रहता था। एक समय उसके पुत्र हो मर गया वह उस मरे पुत्र को ले राजा उग्रसेन के द्वार पर गया और जो उसके मुँह में आया सो कहने लगा कि तुम बड़े अधर्म्मी पापी हो, तुम्हारे ही कर्म्म धर्म्म से प्रजा दुःख पाती है और मेरा भी पुत्र तुम्हारे ही पाप आचरण से मरा। महाराज ! इसी भाँति की अनेक २ बातें कह मरे लड़के को राजद्वार पर रख ब्राह्मण अपने घर आया। आगे उसके आठ बेटे

हुए और आठों को वह उसी रीति से राजद्वार पर रख २ आया। जब नवाँ पुत्र होने को हुआ, तब वह ब्राह्मण फिर राजा उग्रसेन की सभा में जाय श्रीकृष्णचन्द्र के सन्मुख खड़ा हो पुत्र के मरने का दुःख सुमिर २ रो २ यों कहने लगा कि, धिक्कार है राजा और इसके राज्य को; पुनि धिक्कार है उन लोगों को जो इस अधर्म्मी की सेवा करते हैं और धिक्कार है मुझे जो इस पुरी में रहता हूँ, जो इन पापियों के देश में न रहता तो मेरे पुत्र बचते, इन्हीं के अधर्म से मेरे पुत्र मरे और किसी ने उपाय न किया। महाराज! इसी ढब की सभा के बीच खड़े हो ब्राह्मण ने रो रो बहुत सी बातें कहीं पर कोई कुछ न बोला। निदान श्रीकृष्णचन्द्र के पास बैठा सुन सुन खरा कर अर्जुन बोला कि, हे देवता! तू किस के आगे बात कहे है और क्यों इतना खेद करे है? इस सभा में कोई धनुर्धर नहीं जो तेरा दुःख दूर करै। आज कल के राजा आपकार्य्यी हैं परदुःख निवारक नहीं। जो प्रजा को सुख दें और गौ ब्राह्मण की रक्षा करें। ऐसे सुनाय अर्जुन ने पुनि ब्राह्मण से कहा कि देवता अब तुम जाय अपने घर निश्चिन्त हो बैठो, जब तुम्हारे लड़का होने का दिन आवे तब तुम मेरे पास आइयो मैं तुम्हारे साथ चलूँगा और लड़के को न मरने दूँगा। महाराज! इतनी बात के सुनते ही ब्राह्मण खिजलाय के बोला कि मैं इस सभा के बीच श्रीकृष्ण बलराम प्रद्युम्न और अनिरुद्ध छुड़ाय ऐसा बलवान् किसी को नहीं देखता जो मेरे पुत्र को काल के हाथ से बचावे? अर्जुन बोला कि, ब्राह्मण! तू मुझे नहीं जानता कि मेरा नाम धनञ्जय है? मैं तुझ से प्रतिज्ञा

करता हूँ कि जो मैं तेरा सुत काल के हाथ से बचाऊँ तो तेरे मरे हुए लड़के जहाँ पाऊँ तहाँ से ले आय तुझे दिखाऊँ और वे भी न मिलें तो गाण्डीव धनुष समेत अपने तईं अग्नि में जलाऊँ। महाराज! यह प्रतिज्ञा कर जब अर्जुन ने ऐसा कहा, तब वह ब्राह्मण सन्तोष कर अपने घर गया। पुनि पुत्र होने के समय विप्र अर्जुन के निकट आया। उस काल अर्जुन धनुष बाण ले उसके साथ उठ धाया। आगे वहाँ जाय उसका घर अर्जुन ने बाणों से ऐसा छाया कि जिस में पवन भी प्रवेश न कर सके और आप धनुष बाण लिये उसके चारों ओर फिरने लगा। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज! अर्जुन ने बहुत सा उपाय बालक बचाने को किया पर न बचा, और दिन बालक होने के समय रोता था उस दिन श्वास भी न लिया वरन् पेट ही से मरा निकला। मरे लड़के को सुनि लज्जित हो अर्जुन श्रीकृष्णचन्द्र के निकट आया और उसके पीछे ब्राह्मण भी। महाराज! आते ही रो २ वह ब्राह्मण लगा कहने कि, रे अर्जुन! धिक्कार है तुझे और तेरे जीवन को जो मिथ्या वचन कह संसार में लोगों को मुख दिखाता है, अरे नपुंसक! जो तू मेरे पुत्र को काल से न बचा सकता था तो तैंने प्रतिज्ञा क्यों की थी कि मैं तेरे पुत्र को बचाऊँगा और न बचा सकूँगा तो तेरे मरे हुए पुत्र सब लादूँगा। महाराज! इतनी बात के सुनते ही अर्जुन धनुष बाण ले वहां से उठ चला २ संयमनीपुरी में धर्मराज के पास गया। इसे देख धर्म्मराज उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़ स्तुति कर बोला कि, महाराज! आपका आगमन

यहाँ कैसे हुआ ? अर्जुन बोला कि मैं अमुक ब्राह्मण के बालक लेने आया हूँ। धर्मराज ने कहा कि यहाँ वे नहीं आये। महाराज ! इतना वचन धर्मराज के मुख से निकलते अर्जुन विदा हो वहाँ से सब ठौर फिरा। पर उसने ब्राह्मण के लड़कों को कहीं न पाया। निदान अछता पछता द्वारकापुरी में आय चिता बनाय धनुष बाण समेत जलने को उपस्थित हुआ। आगे अग्नि जलाय अर्जुन ज्यों चाहे कि चिता पर बैठे त्योंही श्री मुरारी गर्वप्रहारी ने आय हाथ पकड़ और हँस के कहा कि, हे अर्जुन ! तू मत जल तेरी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा। जहाँ उस ब्राह्मण के पुत्र होंगे तहाँ से ला दूँगा। महाराज ! ऐसे कह त्रिलोकीनाथ रथ पर बैठ अर्जुन को साथ ले पूर्व दिशा की ओर को चले और सात समुद्र पार हो लोकालोक पर्वत के निकट पहुंचे, वहाँ जाय रथ से उतर कर अति अँधेरी कन्दरा में पैठे। उस समय श्रीकृष्णचन्द्र जी ने सुदर्शनचक्र को आज्ञा की, वह कोटिसूर्य्य का प्रकाश किये प्रभु के आगे २ महा अन्धकार को टालता चला।

चौ०—तम तजि केतिक आगे गये। जल में तबै जु पैठत भये ॥
महा तरंग तासु में लसे। मूँदि आँखि ये तामे धसे ॥
पहुड़े हुते शेष जी जहाँ। कृष्ण अरु अर्जुन पहुंचे तहाँ ॥

जाते ही आँखें खोल कर देखा कि एक बड़ा लम्बा चौड़ा ऊँचा कञ्चन का मणिमय मन्दिर अति सुन्दर है, तहाँ शेष जी के शीश पर रत्नजटित सिंहासन धरा है तिस पर श्याम घनरूपी, सुन्दर स्वरूप, चन्द्रवदन कमलनयन, किरीट कुण्डल पहिने, पीतबसन ओढ़े, पीताम्बर काछे, बनमाल मुक्तमाल डाले, आप प्रभुमोहन

मूर्त्ति बिराजे हैं और ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र आदि सब देवता सन्मुख खड़े स्तुति करते हैं। महाराज! ऐसा स्वरूप देख अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र जी ने प्रभु के सोंही जाय दण्डवत् कर हाथ जोड़ कर अपने जाने का सब कारण कहा। बात के सुनते ही प्रभु ने ब्राह्मण के बालक सब मँगाय दीने और अर्जुन ने देख भाल प्रसन्न हो लीने तब प्रभु बोले :—

तुम दोउ मेरी कला जु आहि। हरि अर्जुन देखो चित चाहि ॥
भार उतारन भूपर गये। साधु सन्त को बहु सुख दये ॥
असुर दैत्य तुम सब सँहारे। सुर नर मुनि के काज संवारे ॥
मेरे अंश जो तुम में द्वैहैं। पूरण काम तुम्हारे ह्वैहैं ॥

इतना कह भगवान् ने अर्जुन और श्रीकृष्ण जी को बिदा किया। ये बालक ले पुरी में आये द्विज के पुत्र द्विज ने पाये, घर २ आनन्द मङ्गल भये बधाये। इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी ने राजा परीक्षित से कहा कि, महाराज!

चौं०—जो यह कथा सुने धरि ध्यान। तिनके पुत्र होयँ कल्यान ॥

सयद इँशाअल्ला खाँ—मृत्यु १८७५

आपके पिता का नाम मीर माशा अल्लाह खाँ था। ये दरबारी हकीम थे और कवि भी थे। इनका का उपनाम 'मसदर' था। इनके पूर्वज समरकंदनिवासी थे और किसी कारण वहाँ से आकर काश्मीर में रहने लगे थे। नवाब जुल्फिकार खाँ के समय में ये काश्मीर से दिल्ली और वहाँ से फिर मुर्शिदाबाद आ गये थे। वहीं पर इँशाअल्ला खाँ का जन्म हुआ।

इँशाअल्ला खाँ एक प्रतिभाशाली युवक थे, अतः अच्छी शिक्षा प्राप्त करने में उन्हें बहुत देर नहीं लगी। इनका स्वभाव चञ्चल था और उस में चुलबुलाहट की मात्रा अधिक थी। इसी प्रकृति का इनके गद्य और पद्य कृतियों में आभास मिलता है! इनका झुकाव कविता की ओर अधिक था, अतः ये बचपन में ही कविता करने लगे और उर्दू में अच्छी कविता करते थे। नवाब सिराजुद्दौला के मारे जाने पर वे मुर्शिदाबाद छोड़ दिल्ली चले आये और वहीं पर शाहे आलम ने जो स्वयं भी कवि थे, इन्हें अपना दरबार कवि बना दिया। सं० १८४५ में गुलाम कादिर ने दिल्ली पर अधिकार कर बादशाह शाहे आलम को अन्धा कर दिया था। इस गड़बड़ में इँशा अल्ला खाँ दिल्ली छोड़ लखनऊ आ गये वहाँ मिर्ज़ा सुलेमान शिकोह के कृपापात्र बन गये। सं० १८५५ से ये नवाब सर्दार अली खाँ के दरबार में आने जाने लगे। अंत में नवाब ने किसी बात पर रुष्ट होकर इनका वेतन बन्द कर दिया। तब से इन्हें कष्ट होने लगा।

इन के अन्तिम दिन एकान्तवास में बीते थे। इन्होंने 'हिन्दी की छुट और किसी बोली पुट' तथा 'बाहर की बोली तथा गँवारी' भाषा से रहित 'हिन्द की भाषा' में एक मौलिक कहानी लिखने की प्रतिज्ञा की थी। 'रानी केतकी की कहानी' उसी प्रतिज्ञा का फल है। यह कहानी सम्भवतः सं० १८५५ और १८६० के बीच लिखी गई होगी।

रानी केतकी की कहानी

किसी देस में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पन्द्रह बरस भरके उसने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ यों ही सी उसकी मसें भीनती चली थीं। अकड़ तकड़ उसमें बहुत सारी थीं। किसी को कुछ न समझता था पर किसी बात के सोच का घर घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उनने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़ के उसे अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई तो उसका जी लोट पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सब को छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका। भला कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई तब तो कुँवर उदैभान भूखा प्यासा उनींदा, जँभाइयाँ और अँगड़ाइयाँ लेता हक्का बक्का होके आसरा लगा ढूँढ़ने। इतने में अमरइयाँ ध्यान चढ़ी उधर चल निकला तो क्या देखता है जो चालीस पचास रण्डियाँ झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा-तू कौन? तू कौन? की चिंघाड़ सी पड़ गई।

दोहरा

कोई कहती थी यह उचक्का है। ठग
कोई कहती थी एक पक्का है॥

वही झूलने वाली लाल जोड़ा पहने हुए जिसको सब रानी केतकी कहती थीं बोली 'इस लग चलने को भला क्या कहते हैं। हक न धक जो तुम झट से टपक पड़े यह न जाना जो यहाँ रण्डियाँ अपने झूल रही हैं, अजी तुम जो इस रूप के साथ बेधड़क चले आए हो! ठण्डे ठण्डे चले जाओ'। तब कुँवर ने मसोस के मलौला खा के कहा 'इतनी रुखाइयां न दीजिये। मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह में ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा। बड़े तड़के धुन्धलके में उठ कर जिधर को मुँह पड़ेगा चला जाऊँगा। कुछ किसी का लेता देता नहीं। एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़ छाड़ कर घोड़ा फेंका था–कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब तलक उजाला रहा उसी के ध्यान में था। चब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया इन अमरइयों का आसरा ढूँढ़कर यहाँ चला आया हूँ। कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता। सर उठाए हाँपता हुआ चला आया।

यह बात सुन कर वह जो लाल जोड़े वाली सब की सिर धरी थी उनने कहा इनको कहदो जहाँ जी चाये अपने पड़ रहें और जो कुछ खाने पीने को माँगे सो इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तमतमाए,

और होंठ पपड़ाए, और घोड़े का हाँपना, और जी का काँपना और ठण्डी साँसें भरना और निढ़ाल गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं, पर हमारे और इनके बीच कुछ ओट कपड़े लत्ते की करदो।' इतना आसरा पाके सबसे परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे उनकी छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धर कर चाहता था कि सो रहें पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी? पड़ा पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात साँय साँय बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रहीं रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनबान को जगा कर यों कहा। तू मेरे साथ चल, पर तेरे पाँवों पड़ती हूँ कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनाने वाले ने मिला दिया। मैं इसी जी में इन अमरइयों में आई थी। रानी केतकी मदनबान का हाथ पकड़े हुए वहाँ आन पहुँची ही जहाँ कुँवर उदैभान लेटे हुए कुछ कुछ सोच में बड़ बड़ा रहे थे। मदनबान आगे बढ़ के कहने लगी 'तुम्हें अकेला जानकर रानी जी आप आई हैं।' कुँवर उदैभान यह सुनकर उठ बैठे। कुँवर और रानी दोनों चुपचाप बैठे पर मदनबान दोनों को गुदगुदा रही थी। होते होते रानी का यह पता खुला कि राजा जगत परकास की बेटी हैं और उनकी माँ रानी कामलता कहलाती हैं। 'उनको उनके माँ बाप ने कह दिया है एक महीने पीछे अमरइयों में जाकर झूल आया करो। आज वही दिन था सो तुम से मुठभेड़ हो गयी। बहुत महाराजों के कुँवरों से बातें आईं पर किसी पर इनका ध्यान न चढ़ा। तुम्हारे धन भाग जो

तुम्हारे पास सबसे छुप के मैं जो उनके लड़कपन की गोइयाँ हूं मुझे अपने साथ लेके आई हैं । अब तुम अपनी बीती कहानी कहो तुम किस देश के कौन हो।' उन्होंने कहा 'मेरा बाप राजा सूरजभान और माँ रानी लछमीबास हैं। आपस में जो गठ जोड़ हो जाय तो कुछ अनोखी अचरज और अचम्भे की बात नहीं। योंही आगे से होता चला आया है। जैसा मुँह वैसा थप्पड़ जोड़ तोड़ टटोल लेते हैं। दोनों महाराजों को यह चितचाही बात अच्छी लगेगी पर हम तुम दोनों के जी का गाठजोड़ा चाहिए ।' इसी में मदनबान बोल उठी 'सो तो हुआ अपनी अपनी अँगूठियां हेरफेर कर लो और आपस में लिखौती भी लिख दो फिर कुछ हिजिर मिचिर न रहे।' कुँवर उदैभान ने अपनी अँगूठी रानी केतकी को पहना दी, और रानी ने भी अपनी अँगूठी कुँवर की उंगली में डाल दी। इतने में मदनबान बोली 'जो सच पूछो तो इतनी भी बहुत हुई मेरे सर चोट है इतना बढ़ चलना अच्छा नहीं अब उठ चलो।' पिछले पहर से रानी तो अपनी सहेलियों को लेके जिधर से आई थी उधर को चली गयी और कुँवर उदैभान अपने घोड़े को पीठ लगा कर अपने लोगों से मिलके अपने घर पहुँचे।

पर कुँवर जी का रूप क्या कहूँ कुछ कहने में नहीं आता। न खाना न पीना न मग चलना न किसी से कुछ कहना सुनना जिस ध्यान में थे उसी में गुथे रहना और घड़ी घड़ी कुछ सोच कर सिर धुनना । होते होते लोगों में इस बात की चरचा फैल गई । किसी किसी ने महाराज और महारानी से कहा 'वह कुँवर उदैभान जिससे तुम्हारे घर का उजाला है उसके इन

दिनों में कुछ बुरे तेवर और बेडौल आँखें दिखाई देती हैं। घर से बाहर पाँव नहीं धरता। घरवालियाँ जो किसी डौल से बहलातियाँ हैं तो और कुछ नहीं करता ठँढी ठँढी साँसे भरता है और बहुत किसी ने छेड़ा तो छपरखट पर जाके अपना मुँह लपेट के आठ आठ आँसू पड़ा रोता है।' यह सुनते ही कुँवर उदैभान के माँ बाप दोनों दौड़ आए, गले लगाया, मुँह चूम पाँव पर बेटे के गिर पड़े हाथ जोड़े और कहा 'जो अपने जी की बात है सो कहते क्यों नहीं क्या दुखड़ा है जो पड़े पड़े कराहते हो राज पाट जिसको चाहो दे डालो कहो तो तुम क्या चाहते हो, तुम्हारा जी क्यों नहीं लगता ? भला वह क्या है जो हो नहीं सकता मुँह से बोलो जी खोलो। जो कुछ कहने से सोच करते हो अभी लिख भेजो। जो कुछ लिखोगे ज्यों के त्यां करने में आयेगी। जो तुम कहा कुँए में गिर पड़ो तो हम दोनों अभी गिर पड़ते हैं, कहो सिर काट डालो तो सिर अपने अभी काट डालते हैं।' कुँवर उदैभान जो बोलते ही न थे लिख भेजने का आसरा पाकर इतना बोले 'अच्छा आप सिधारिए मैं लिख भेजता हूँ पर मेरे उस लिखे को मेरे मुँह पर किसी ढब से न लाना इसी लिए मैं मारे लाज के मुख पाट होके पड़ा था और आप से कुछ न कहता था।' यह सुन कर दोनों महाराज और महारानी अपने अपने स्थान को सिधारे तब कुँवर ने यह लिख भेजा। 'अब जो मेरा जी होठों पर आगया और किसी डौल न रहा गया और आपने मुझे सौ

सौ रूप से खोला और बहुत सा टटोला तब तो लाज छोड़ कर के हाथ जोड़ के मुँह को फाड़ के घिघियाके यह लिखता हूँ।

उस दिन जो मैं हरियाली देखने को गया था। एक हिरनी मेरे सामने कनौतियाँ उठाए आगई उसके पीछे मेंने घोड़ा बग छुट फेंका। जब तक उजाला रहा उसके धुन में बहका किया जब सूरज डूबा मेरा जी ऊबा सुहानी सी अमराइयाँ ताड़ के मैं उन में गया तो उन अमराइयों का पत्ता पत्ता मेरे जी का गाहक हुआ। वहाँ का यह सोहिला है, कुछ रंडियाँ भूला डाले भूल रही थीं। उनकी सरधरी कोई रानी केतकी महाराज जगतपरकास की बेटी हैं। उन्होंने यह अँगूठी अपनी मुझे दी और मेरी अँगूठी उन्होंने लेली और लिखौट भी लिख दी सो यह अँगूठी उनकी लिखौट समेत मेरे लिखे हुए के साथ पहुँचती है। अब आप पढ़ लीजिए जिस में बेटे का जी रह जाय सो कीजिए।' महाराज और महारानी ने अपने बेटे के लिखे हुए पर सोने के पानी से यों लिखा। 'हम दोनों ने इस अँगूठी और लिखौट को अपनी आँखों से मला अब तुम इतने कुछ कुढ़ो पचो मत। जो रानी केतकी के माँ बाप तुम्हारी बात मानते हैं तो हमारे समधी और समधिन हैं और दोनों राज एक हो जाएँगे और जो कुछ नाह नूह ठहरेगी तो जिस डौल से बन आवेगा ढाल तलवार के बल तुम्हारी दुल्हन हम तुम से मिला देंगे। आज से उदास मत रह करो खेलो कूदो बोलो चालो आनंदें करो। अच्छी घड़ी शुभ मुहूरत सोच के तुम्हारी ससुराल में किसी बाम्हन को भेजते हैं जो बात चीत चाही ठीक कर

लावे।' और शुभ घड़ी शुभ मुहूरत देख के रानी केतकी के माँ बाप के पास भेजा।

बाम्हन जो शुभ मुहूरत देखकर हड़बड़ी से गया था उस पर बुरी घड़ी पड़ी। सुनते ही रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'हमारे उनके नाता नहीं होने का। उनके बाप दादे हमारे बाप दादे के आगे सदा हाथ जोड़ कर बातें किया करते थे और टुक जो तेवरी चढ़ी देखते थे बहुत डरते थे। क्या हुआ जो अब वह बढ़ गए ऊँचे पर चढ़ गए, जिन के माथे हम बाँएँ पाँव के अँगूठे से टीका लगावें वह महाराजों का राजा हो जावे। किसी का मुँह जो यह बात हमारे मुँह पर लावे।' बाम्हन ने जल भुन के कहा 'अगले भी बिचारे ऐसे ही कुछ हुए हैं। राजा सूरजभान भी भरी सभा में कहते थे हममें उनमें कुछ गोत का तो मेल नहीं। यह कुंवर की हठ से कुछ हमारी नहीं चलती नहीं तो ऐसी ओछी बात कब हमारे मुँह से निकलती।' यह सुनते ही उस महाराज ने बाम्हन के सिर पर फूलों की चंगेर फेंक मारी और कहा 'जो बाम्हन की हत्या का धड़का न होता तो तुझको अभी चक्की में दलवा डालता' और अपने लोगों से कहा 'इसको ले जाओ और ऊपर एक अँधेरी कोठरी में मूँद रक्खो।' जो इस बाम्हन पर बीती तो सब उदैभान के माँ बाप ने सुनी। सुनते ही लड़ने को अपना ठाट बाँध भादों के दल बादल जैसे घिर आते हैं चढ़ आया। जब दोनों महाराजों में लड़ाई होने लगी रानी केतकी सावन भादों के रूप समान रोने लगी और दोनों के जी में यह आ गई यह कैसी चाहत जिस में लोहू बरसने लगा

और अच्छी बातों को जी तरसने लगा। कुँवर ने चुपके से यह लिख भेजा 'अब मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हुआ जाता है। दोनों महाराजों को आपस में लड़ने दो किसी डौल से जो हो सके तो तुम मुझे अपने पास बुला लो हम तुम दोनों मिलके किसी और देश निकल चलें होनी हो सो हो सिर रहता रहे, जाता जाय।' एक मालिन जिसको फूलकली कर सब पुकारते थे उसने उस कुँवर की चिट्ठी किसी फूल की पँखड़ी में लपेट सपेट कर रानी केतकी तक पहुँचा दी। रानी ने उस चिट्ठी को अपनी आँखों लगाया और मालिन को एक थाल मोती दिये और उस चिट्ठी की पीठ पर अपने मुँह की पीक से यह लिखा 'ऐ मेरे जी के गाहक, जो तू मुझे बोटी बोटी करके चील कौवों को दे डाले तो भी मेरी आँखों चैन और कलेजे सुख हो पर यह बात भाग चलने की अच्छी नहीं। इसमें एक बाप दादे को चिट लग जाती है और जब तक माँ बाप जैसा कुछ होता चला आता है, उसी डौल से बेटा बेटी को किसी पर पटक न मारें और सर से किसी के चेपक न दें तब तक यह एक जी तो क्या जो करोर जी जाते रहे, कोई बात तो हमें रुचती नहीं।'

यह चिट्ठी जो पीक भरी कुँवर तक जा पहुँची उस पर कई एक थाल सोने के हीरे मोती पुखराज के खचाखच भरे हुए निछावर करके लुटा देता है। और जितनी उसे बेचैन थी उससे चौगुनी पचगुनी हो जाती है और उस चिट्ठी को अपने उस गोरे दण्ड पर बाँध लेता है।

जगतपरकास अपने गुरु को जो कैलाश पहाड़ पर रहता था, लिख भेजता है 'कुछ हमारा सहाय कीजिये, महा कठिन हम पर बिपता आ पड़ी है। राजा सूरजभान को अब यहाँ तक वाव बँहक ने लिया है जो उन्होंने हम से महाराजों से डौल किया है।'

कैलास पहाड़ जो एक डौल चाँदी का है उस पर राजा जगत-परकास का गुरु, जिसको महेन्द्रगिर सब इन्दरलोक के लोग कहते थे, ध्यान ज्ञान में कोई नव्वे लाख अतीतों के साथ ठाकुर के भजन में दिन रात लगा रहता था। सोना रूपा ताँबे राँगे का बनाना तो क्या और गुटका मुँह से लेकर उड़ना परे रहे उसको और बातें इस ढब की ध्यान में थीं जो कहने सुनने से बाहर हैं। मेंह सोने रूपे का बरसा देना और जिस रूप में चाहना हो जाना सब कुछ उसके आगे खेल था, गाने बजाने में महादेव जी छूट उसके आगे कान पकड़ते थे। सरस्वती जिसको सब लोग कहते थे उन्ने भी कुछ गुनगुनाना उसी से सीखा था। उसके सामने छ राग छत्तीस रागिनियाँ आठ पहर रूप बंदियों का सा धरे हुए उसकी सेवा में सदा हाथ जोड़े खड़ी रहती थीं और वहाँ अतीतों को गिर कह कर पुकारते थे—भैरो गिर, बिभास गिर, हिंडोल गिर, मेघनाथ, केदारनाथ, दीपकसेन, जोतीसरूप, सारङ्ग रूप और अतीतिनें इस ढब से कहलाती थीं गूजरी, टोड़ी, असावरी, गौरी, मालसिरी, बिलावली। जब चाहता अधर में सिंहासन पर बैठ कर उड़ासे फिरता था और नव्वे लाख अतीत गुटके अपने

मुँह में लिये गेरुवे बसतर पहने जटा बिखेरे उसके साथ होते थे। जिस घड़ी रानी केतकीके बापकी चिट्ठी एक बगला उसके घर तक पहुंचा देता है गुरु महेन्दर गिर एक चिंघाड़ मार कर दल बादलों को ढलका देता है, बघम्बर पर बैठ भभूत अपने मुँह से मल कुछ कुछ पठन्त करता हुआ बाव के घोड़े के पीठ लगा और सब अतीत मृगछालों पर बैठे हुये गुटके मुँह में लिए हुए बोल उठे "गोरख जागा और मुछन्दर भागा"। एक आँख की झपक में वहाँ आ पहुँचता है जहाँ दोनों महाराजों में लड़ाई हो रही थी। पहले तो एक काली आँधी आई फिर ओले बरसे फिर टिड्डी आई। किसी को अपनी सुध न रही। राजा सूरजभान के जितने हाथी घोड़े और जितने लोग और भीड़ भाड़ थी कुछ न समझा कि क्या किधर गई और उन्हें कौन उठा ले गया। राजा जगतपरकास के लोगों पर और रानी केतकी के लोगों पर केवड़े के बूँदों की नन्ही नन्ही फुहार सी पड़ने लगी। जब यह सब कुछ हो चुका तो गुरु जी ने अतीतियों से कहा 'उदैभान सूरजभान लछमीबास इन तीनों को हिरनी हिरन बनाके किसी बन में छोड़ दो और जो उनके साथी हों उन सभों को तोड़ फोड़ दो।' जैसा कुछ गुरु जी ने कहा झट पट वही किया। बिपत का मारा कुँवर उदैभान और उसका बाप वह राजा सूरजभान और उसकी मां लछमीबास हिरनी हिरन बन गए। हरी घास कई बरस तक चरते रहे और उस भीड़ भाड़ का तो कुछ थल बेड़ा न मिला किधर गए और कहां थे। बस यहाँ की यहीं रहने दो। फिर सुनो। अब रानी

केतकी के बाप महाराजा जगतपरकास को सुनिये। उनके घर का घर गुरु जी के पांव पर गिरा और सब ने सर झुका कर कहा 'महाराज यह आप ने बड़ा काम किया। हम सब को रख लिया। जो आज आप न पहुँचते तो क्या रहा था। सब ने मर मिटने की ठान ली थी। इन पापियों से कुछ न चलेगी, यह जानते थे। राज पाट हमारा अब निछावर करके जिसको चाहिये दे डालिए। राज हमसे नहीं थम सकता। सूरजभान के हाथ से आपने बचाया। अब कोई उनका चचा चंदरभान चढ़ आवेगा तो क्या बचना होगा। आपने आप में तो सकत नहीं फिर ऐसे राज का फिट्टे मुँह कहाँ तक आपको सताया करें। 'जोगी महेन्दर गिर ने यह सुनकर कहा 'तुम हमारे बेटा हो, आनन्दें करो, दन दनावो, सुख चैन से रहो। अब वह कौन है जो तुम्हें आँख भर कर और ढब से देख सके। यह बघम्बर और यह भभूत हमने तुमको दिया। जो कुछ ऐसी गाढ़ पड़े तो इसमें एक रोंगटा तोड़ आग में फूँक दीजिये। यह रोंगटा फुकने न पावेगा जो बात की बात में हम आ पहुँचेंगे। रहा भभूत, लो इस लिये है जो कोई इसे अञ्जन करै वह सबको देखे और उसे कोई न देखे जो चाहे सो करै।

गुरु मेहन्दर गिर के पांव पूजे और 'धन धन महाराज' कहे। उनसे तो कुछ छिपाव न था। महाराज जगतपरसाद उनको मुर्छल करते हुए अपनी रानियों के पास ले गये। सोने रूपे के फूल गोद भर भर सबने निछावर की और माथे रगड़े। उन्होंने सबकी पीठें

ठोंकी। रानी केतकी ने भी गुरुजी के दण्डवत की पर जी में बहुत सी गुरुजी को गालियाँ दी। गुरुजी सात दिन सात रातें यहाँ रह कर जगतपरकास को सिंहासन पर बैठा कर अपने बघम्बर पर बैठ उसी डौल से कैलास पर आ धमके और राजा जगतपरकास अपने अगले ढब से राज करने लगा।

एक दिन रानी केतकी ने अपनी मां रानी कामलता को भुलावे में डाल कर यों कहा और पूछा—'गुरुजी गुसाईं महेन्दर गिर ने जो भभूत मेरे बाप को दिया है, वह कहां रखा है और उससे क्या होता है?' रानी कामलता बोल उठी 'तेरीवारी ! तू क्यों पूछती है ?' रानी केतकी कहने लगी 'आँखें मिचौवल खेलने के लिये चाहती हूं, अब अपनी सहेलियों के साथ खेलूँ और चोर बनूँ तो मुझको कोई पकड़ न सके'। महारानी ने कहा वह खेलने के लिये नहीं है। ऐसे लटके किसी बुरे दिन के सम्भालने को डाल रखते हैं क्या जाने कोई घड़ी कैसी है कैसी नहीं।" रानी केतकी अपनी मां की इस बात पर अपना मुँह थुथा कर उठ गई और दिन भर खाना न खाया। महाराज ने जो बुलाया तो कहा मुझे रुच नहीं। तब रानी कामलता बोल उठी 'अजी तुमने सुना भी, बेटी तुम्हारी आंख मिचौवल खेलने के लिए वह भभूत गुरुजी का दिया माँगती थी। मैंने न दिया और कहा लड़की वह लड़कपन की बातें अच्छी नहीं किसी बुरे दिन के लिए गुरुजी दे गए हैं इसी पर मुझसे रूठी है बहुतेरा बहलाती हूं मानती नहीं।'

महाराज ने कहा 'भभूत तो क्या मुझे तो अपना जी भी उससे प्यारा नहीं, उसके एक पहर के बहल जाने पर एक जी तो क्या जो करोर जी हों तो दे डालें।" रानी केतकी को डिबिया में से थोड़ा सा भभूत दिया। कई दिन तलक आँख मिचौवल अपनी माँ बाप के सामने सहेलियों के साथ खेलती सबको हँसाती रही जो सौ सौ थाल मोतियों के निछावर हुआ किए। क्या कहूँ! एक चुहल थी जो कहिये तो करोड़ों पोथियों में ज्यों की त्यों न आ सके।

एक रात रानी केतकी उसी ध्यान में मदनबान से यों बोल उठी 'अब मैं निगोड़ी लाज से कुट करती हूँ तू मेरा साथ दे।' मदनबान ने कहा 'क्योंकर'। रानी केतकी ने वह भभूत का लेना उसे बताया और यह सुनाया 'यह सब आँख मिचौवल के झाईं झप्पे मैंने इसी दिन के लिए कर रक्खे थे।' मदनबान बोली 'मेरा कलेजा थरथराने लगा। अरी यह माना कि तुम अपनी आँख में उस भभूत का अंजन कर लोगी और मेरे भी लगा दोगी तो हमें तुम्हें कोई न देखेगा और हम तुम सब को देखेंगी पर ऐसी हम कहाँ जी चली हैं जो बिन साथ जोबन लिए बन बन में पड़ी भटका करें और हिरनों की सींगों पर दोनों हाथ डाल कर लटका करें और जिसके लिए यह सब कुछ है सो वह कहाँ और होय तो क्या जाने यह रानी केतकी है और यह मदनबान निगोड़ी नोची खसोटी उजड़ी उनकी सहेली है। चूल्हे और भाड़ में जाय वह जिसके लिए आपको माँ बाप का राज पाट सुख नींद लाज छोड़ कर

नदियों के कछहरों में फिरना पड़े सो भी बेडौल जो वह अपने रूप में होते तो भला थोड़ा बहुत आसरा था। ना जी यह तो हम से न हो सकेगा जो महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता का हम जान बूझकर घर उजाड़ें और उनकी जो इकलौती लाड़ली बेटी है उसको भगा ले जावें और जहाँ तहाँ उसे भटकावें और बनासपत्ती खिलावें और अपने चोंड़े को हिलावें। जब तुम्हारे और उसके माँ बाप में लड़ाई हो रही थी और उन्ने उस मालिन के हाथ तुम्हें लिख भेजा था जो मुझे अपने पास बुलालो, महाराजों को आपस में लड़ने दो जो होनी हो सो हम तुम मिल के किसी देस को निकल चलें। उस दिन न समझीं तब तो वह ताव भाव दिखाया अब जो वह कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जी हिरनी हिरन बन गए। क्या जाने किधर होंगे। उनके ध्यान पर इतनी कर बैठिए जो किसी ने तुम्हारे घराने में न की अच्छी नहीं। इस बात पर पानी डाल दो नहीं तो पछतावोगी और अपना किया पाओगी। मुझ से कुछ न हो सकेगा। तुम्हारी जो कुछ अच्छी बात होती तो मेरे मुँह से जीते जी न निकलती पर यह बात मेरे पेट नहीं पच सकती। तुम अभी अल्हड़ हो तुमने अभी कुछ देखा नहीं जो ऐसी बात पर सचमुच ढलाव देखूँगी तो तुम्हारे बाप से कहकर वह भभूत जो वह मुआ निगोड़ा भूत मुछन्दर का पूत अवधूत दे गया है, हाथ मुरकवा कर छिनवा लूँगी।' रानी केतकी ने यह रूखाइयाँ मदनबान की सुनकर हँस कर टाल दिया और कहा 'जिसका जी ठिकाने में न हो उसे ऐसी लाखों सूझती हैं पर कहने और करने में बहुत सा फेर है। भला यह कोई अंधेर

है जो मैं माँ बाप राज पाट लाज छोड़कर हिरन के पीछे दौड़ती करछालें मारती फिरूँ पर अरी तू तो बड़ी बावली चिड़िया है जो यह बात सच जानी और मुझ से लड़ने लगी।'

दस पन्द्रह दिन पीछे एक दिन रानी केतकी बिन कहे मदनबान के वह भभूत आँखों में लगा के घर से बाहर निकल गई। कुछ कहने में आता नहीं जो माँ बाप पर हुई। सब ने यह बात ठहराई, गुरु जी ने कुछ समझ कर रानी केतकी को अपने पास बुला लिया होगा। महाराज जगतपरकास और महारानी कामलता राज पाट उस वियोग में छोड़ छाड़ के एक पहाड़ की चोटी पर जा बैठे और किसी को अपने लोगों में से राज थामने को छोड़ गये। बहुत दिनों पर पीछे एक दिन महारानी ने महाराज जगत-परकास से कहा 'रानी केतकी का कुछ भेद जानती होगी तो मदनबान जनती होगी। उसे बुलाकर पूछो तो'। महाराज ने उसे बुला कर पूछा तो मदनबान ने सब बात खोलियाँ। रानी केतकी के माँ बाप ने कहा 'अरी मदनबान जो तू भी उसके साथ होती तो हमारा जी भरता—अब जो वह तुझे ले जावे तो कुछ हचर पचर न कीजियो। उसके साथ हो लीजियो जितना भभूत है तू अपने पास रख। हम कहाँ इस राख को चूल्हे में डालेंगे। गुरु जी ने दोनों राज्य का खोज खोया। कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप दोनों अलग हो रहे। जगतपरकास और कामलता को यों तलपट किया। भभूत न होती तो यह बातें काहे को सामने

आतीं'। मदनबान भी उनके ढूँढ़ने को निकली। अंजन लगाये हुए 'रानी केतकी रानी केतकी' कहती हुई पड़ी फिरती थी। बहुत दिनों पीछे कहीं रानी केतकी भी हिरनों की दहाड़ों में 'उदैभान उदैभान' चिंघाड़ाती हुई आ निकली। एक ने एकको ताड़ कर पुकारा। 'अपनी तनी आँखें धो डालो'। एक डबरे पर बैठ कर दोनों की मुठभेड़ हुई। लग के ऐसी रोइयाँ जो पहाड़ों में कूक सी पड़ गई।

दोनों जनियाँ एक अच्छी सी छाँव को ताड़ कर आ बैठियाँ और अपनी अपनी दोहराने लगीं।

रानी केतकी ने अपनी बीती सब कही और मदनबान वही अगला झींकना झींका की और उनके माँ बाप ने जो उनके लिए जोग साधा या जो वियोग लिया था सब कहा।. जब यह सब कुछ हो चुकी तब फिर हँसने लगी।

पर मदनबान से कुछ रानी केतकी के आँसू पुछते चले। उन्ने यह बात कही 'जो तुम कहीं ठहरो तो मैं तुम्हारे उन उजड़े हुए माँ बाप को चुपचाप ले आऊँ और उन्हीं से इस नात को ठहराऊँ। गोसाईं महेन्दर गिर जिसकी यह सब करतूत है वह भी इन्हीं दोनों उजड़े हुए की मुट्ठी में है। अब भी जो मेरा कहा तुम्हारे ध्यान चढ़े तो गए हुए दिन फिर सकते हैं। पर तुम्हारे कुछ भावे नहीं हम क्या पड़ी बकती हैं। मैं इस पर बीड़ा उठाती हूँ'। बहुत दिनों पीछे रानी केतकी ने इस पर अच्छा कहा। और मदनबान को अपने माँ बाप के पास भेजा और चिट्ठी अपने

हाथों से लिख भेजी जो आप से हो सके तो उस जोगी से ठहरा के आवें।

मदनबान रानी केतकी को अकेली छोड़कर राजा जगतपरकाश और रानी कामलता जिस पहाड़ पर बैठी थीं झट से आदेश करके आ खड़ी हुई और कहने लगी 'लीजे आप राज कीजे आप का घर नए सिर से बसा और अच्छे दिन आए। रानी केतकी का एक बाल भी बाँका नहीं हुआ। उन्हीं के हाथों की लिखी चिट्ठी लाई हूँ, आप पढ़ लीलिए। आगे जो जी चाहे सो कीजिये'। महाराज ने उस बघम्बर में से एक रोंगटा तोड़कर आग पर रख के फूँक दिया। बात की बात में गोसाई महेन्दगिर आ पहुँचा और जो कुछ नया सवाँग जोगी जोगिन का आया आँखों देखा। सबको छाती लगाया और कहा 'बघम्बर तो इसीलिए मैं सौंपा गया था कि जो तुम पर कुछ हो तो इसका एक बाल फूँक दीजियो। तुम्हारी यह गत हो गयी। अब तक क्या कर रहे थे और किन नींदों में सोते थे। पर तुम क्या करो? यह खिलाड़ी जो रूप चाहै सो दिखावै, जो नाच चाहे नचावै। भभूत लड़की को क्या देना था। हिरन हिरनी उदैभान और सूरजभान उसके बाप और लछमीबास उसकी माँ का मैंने किया था। फिर उन तीनों को जैसा का तैसा करना कोई बड़ी बात न थी। अच्छा, हुई सो हुई। अब उठ चलो। अपने राज पर विराजो और ब्याह की ठाठ करो। अब तुम अपनी बेटी को समेटो। कुँवर उदैभान को मैंने अपना बेटा किया और उसको लेके मैं ब्याहने चढ़ूँगा'। महाराज यह सुनते ही अपनी गद्दी पर जा

बैठे और उसी घड़ी यह कह दिया 'सारी छतों और कोठों को गोटे से मढ़ो और सोने और रूपे के सुनहरे रुपहरे सेहरे सब झाड़ पहाड़ों पर बाँध दो और पेड़ों में मोती की लड़ियाँ बाँध दो और कह दो—चालीस दिन चालीस रात तक जिस घर में नाच आठ पहर न रहेगा उस घरवाले से मैं रूठ रहूँगा और यह जानूँगा यह मेरे दुःख सुख का साथी नहीं। और छः महीने कोई चलने वाला कहीं न ठहरे रात दिन चला जावे'। इस हेरफेर में वह राजा था। सब कहीं यही डौल था।

फिर महाराजा और महारानी और महेन्दर गिर मदनबान के साथ जहाँ रानी केतकी चुपचाप सुन खींचे हुए बैठी थी चुपचुपाते वहाँ आन पहुँचे। गुरु जी रानी केतकी को अपनी गोद में लेकर कुँवर उदैभान का चढ़ावा चढ़ा दिया और कहा 'तुम अपने माँ बाप के साथ अपने घर सिधारो अब मैं बेटे उदैभान को लिये हुए आता हूँ'। गुरु जी गोसाईं जिनको दण्डौत है सो तो वह सिधारते हैं। आगे जो होगी सो कहने में आवेगी। यहाँ पर धूम धाम फैलावा अब ध्यान कीजिये। महाराज जगतपरकास ने अपने सारे देश में कह दिया 'यह पुकार दे जो यह न करेगा उसकी बुरी गति होवेगी। गाँव गाँव में अपने सामने छिपोले बना बना के सूहे कपड़े उन पर लगा के गोट धनुष की और गोखरू रूपहले सुनहरे की किरनें और डाँक टाँक टाँक रक्खो और जितने बड़, पीपल नये पुराने जहाँ जहाँ पर हों उन के फूल के सेहरे बड़े बड़े ऐसे जिसमें सिर से लगा पैर तलक पहुँचे बाँधो।

चौतुका

पौदों ने रँगा के सूहे जोड़े पहने।
सब पाँव में डालियों ने तोड़े पहने॥

बूटे बूटे ने फूल फूल के गहने पहने।
जो बहुत न थे तो थोड़े थोड़े पहने॥

जितने डहडहे और हरियावल फूल पात थे, सबने अपने हाथ में चहचही मेंहदी की सजावट की सजावट के साथ जितनी समावट में समा सके, कर लिए और जहाँ जहाँ नवल ब्याही दुल्हने नन्हीं नन्हीं फलियों की और सुहागिनें नई नई कलियों के जोड़े पँखुड़ियों के पहने हुई थी। सबने अपनी अपनी गोद सुहाग और प्यार के फूल और फलों से भरी और तीन बरस का पैसा सारे उस राजा के राजभर में जो लोग दिया करते थे, उस ढब से हो सकता था खेती बारी करके हल जोत के और कपड़ा लत्ता बेंचकर सो सब उनको छोड़ दिया और कहा जो अपने अपने घरों में बनावट की ठाट करें। और जितने राजभर में कूँएँ थे खँडसालों की खँडसालें उनमें उड़ेल गई और सारे बनों और पहाड़ तलियों में लाल पटों की झमझमाहट को रातों दिखाई देने लगीं। और जितनी झीलें थीं उनमें कुसुम और टेसू और हारसिंगार पड़ गया और केसर भी थोड़ी थोड़ी घोले में आ गई। फुनगे से लगा जड़ तलक जितने झाड़ झङ्खाड़ों में पत्ते और पत्ती बँधी थी उन पर रुपहरी सुनहरी डाक गोंद लगा कर चिपका दिए और सभों को कह दिया जो सूही पगड़ी और सूहे बागे जिन कोई

किसी डौल किसी रूप से फिरे चले नहीं और जितने गवैये बजवैये भाँड भगतिए रहसधारी और सङ्गीत पर नाचने वाले थे सब को कह दिया जिस जिस गाँव में जहाँ हों अपने अपने ठिकानों से निकल कर अच्छे अच्छे बिछौने बिछाकर गाते नाचते कूदते रहा करें।

यहां की घात और चुहलें जो कुछ हैं सो यहीं रहने दो अब आगे सुनो। जोगी महेन्दर और उसके नब्बे लाख अतीत ने सारे बन के बन छान मारे पर कहीं कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप का ठिकाना न लगा तब उन्होंने राजा इन्दर को चिट्ठी लिख भेजी। उसे चिट्ठी में यह लिखा हुआ था—'इन तीनों जनों को हिरनी हिरन कर डाला था, अब उनको ढूँढता फिरता हूं कहीं नहीं मिलते और मेरी जितनी सकत थी अपनी सी बहुत कर चुका हूँ। अब मेरा मुँह से निकला कुँवर उदैभान मेरा बेटा मैं उसका बाप और ससुराल में सब ब्याह का ठाठ हो रहा है! अब मुझ पर बिपत्ती गाढ़ी पड़ी जो तुम से हो सके, करो।' राजा इन्दर चिट्ठी को देखते ही गुरु महेन्दर के देखने को सब इन्द्रासन समेट कर आ पहुँचे और कहा 'जैसा आपका बेटा वैसा मेरा बेटा। आपके साथ मैं सारे इन्द्रलोक को समेट कर कुँवर उदैभान को ब्याहने चढ़ूँगा।' गोसाँई महेन्दर गिर ने राजा इन्दर से कहा 'हमारी आप की एक ही बात है पर कुछ ऐसा सुझाइये जिससे कुँवर उदैभान हाथ आ जावे।' राजा इन्दर ने कहा 'जितने गवैए और गायने हैं, उन सबको साथ लेकर हम और आप सारे

बनों में फिरा करें कहीं न कहीं ठिकाना लग जायगा।' गुरु ने कहा 'अच्छा।'

एक रात राजा इन्दर और गोसाईं महेन्दर गिर निखरी हुई चांदनी में बैठे राग सुन रहे थे करोड़ों हिरन राग के ध्यान में चौकड़ी भूल आस पास सर झुकाए खड़े थे। इसी में राजा इन्दर ने कहा 'इन सब हिरनों पर—मेरी सकत गुरु की भगत फुरे मन्त्र ईश्वरोवाचा—पढ़ के एक एक छींटा पानी का दो।' क्या जाने वह पानी कैसा था छींटों के साथ ही कुँवर उदैभान और उसके माँ बाप तीनों जने हिरनों का रूप छोड़ कर जैसे थे वैसे हो गए। गोसाईं महेन्दर गिर और राजा इन्दर ने उन तीनों को गले लगाया और बड़ी आव भगत से अपने पास बैठाया और वही पानी घड़ा अपने लोगों को देकर वहाँ भेजवाया जहाँ सर मुँडवाते ही ओले पड़े थे। राजा इन्दर के लोगों ने जो पानी के छींटे वही ईश्वरोवाच पढ़ के दिए तो जो मरे थे सब उठ खड़े हुए और जो जो अधमुए भाग बचे थे, सब सिमट आए। राजा इन्दर और महेन्दर गिर कुँवर उदैभान और राजा सूरजभान और रानी लछमीबास को लेकर एक उड़न-खटोले पर बैठकर बड़ी धूम धाम से उनको उनके राज पर बिठा कर ब्याह के ठाठ करने लगे। बसेरियन हीरे मोती उन सब पर से निछावर हुए। राजा सूरजभान और कुँवर उदैभान और रानी लछमीबास चितचाही असीस पाकर फूली न समाई और अपने सारे राज को कह दिया 'जेवर भौंरे के मुँह खोल दो जिस जिस को जो जो उकत सूझे बोल दो।

आज के दिन का सा कौन सा होगा। हमारी आँखों की पुतलियों का जिस से चैन है उस लाडले इकलौते का ब्याह और हम तीनों का हिरनों के रूप से निकल फिर राज पर बैठना पहिले तो यह चाहिये, जिन जिन की बेटियाँ बिन ब्याहियाँ हों उन सब को उतना करदो जो अपने जिस चाव चोज से चाहे अपनी गुडियाँ सँवार के उठावें और जब तक जीती रहें सब की सब हमारे यहाँ से खाया पकाया रींधा करैं। और सब राज भर की बेटियां सदा सुहागिनें बनी रहें और सूहे राते छुट कभी कोई कुछ न पहना करैं। और सोने रूपे के केवाड़ गंगा जमुनी सब घरों में लग जाएँ और सब कोठों के माथों पर केसर और चन्दन के टीके लगे हों। और जितने पहाड़ हमारे देस में हों उतने ही पहाड़ सोने रूपे के सामने खड़े हो जायँ और डाँगों की चोटियाँ मोतियों की माँग से बिना माँगे ताँगे भर जायँ और फूलों के गहने और बन्धनवार से सब झाड़ फहाड़ लदे फँदे रहें और इस राज से लगा उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो और चप्पा चप्पा कहीं ऐसा न रहे जहाँ भीड़ भड़क्का धूम धड़क्का न हो जाय। फूल बहुत सारे खंड जाय जो नदियाँ जैसे सचमुच फूल की बहतियाँ हैं यह समझा जाय। और यह डौल कर दो जिधर से दूल्हा को ब्याहने चढ़ें सब लाडली और हीरे और पुखराज की उमड़ में इधर और उधर कँवल की टट्टियाँ बन जायँ और क्यारियाँ सी हो जायँ जिनके बीचोबीच से हो निकलें और कोई डाँग और पहाड़

तली का चढ़ाव उतार ऐसा दिखाई न दे जिसकी गोद पँखुरियों से भरी हुई न हो ।

राजा इन्दर ने कह दिया, 'वह रंडियाँ चुलबुलियाँ जो अपने मद में उड़ चलियाँ हैं उन से कह दो—सोलह सिंगार बाल गजमोती पिरो अपने अपने अचरज और अचम्भे के उड़न-खटोलों को इस राज से लेकर उस राज तक अधर में छत सी बाँध दो । कुछ उस रूप से उड़ चलो जो उड़न-खटोलियों की क्यारियाँ और फुलवारियाँ सैकड़ों कोस तक हो जायँ और अधर ही अधर मिरदंग बीन जलतरंग मुँहचङ्ग घुंघुरू तबले घंटताल और सैकड़ों इस ढब के अनोखे बाजे बजते आएँ और उन क्यारियों के बीच में हीरे पुखराज अनवेध मोतियों के झाड़ और लालपटों की भीड़भाड़ की झमझमाहट दिखाई दे और इन्हीं लालपटों में से हथफूल फूलझड़ियाँ जाही जुही कदम गेंदा चमेली इस ढब छूटने लगें जो देखने वालों की छातियों के केवाड़ खुल जाएँ और पटाखे जो उछल उछल फूटें उनमें से हँसती सुपारी और बोलती करौती ढल पड़े और जब हम सबको हँसी आवे तो चाहिए उस हँसी से मोतियों की लड़ियाँ झड़ें जो सब के सब उनको चुन चुन के राजे हो जायँ । डोमनियों के रूप में सारंगियाँ छेड़ छोड़ सोहलें गाओ, दोनों हाथ हिला के अँगुलियाँ नचावो, जो किसी ने सुनी हो । वह ताव भाव व चाव देखावो, ठुड्डियाँ गिनगिनावो, नाक भँवे तान तान भाव बतावो, कोई छुट कर रह न जावो । ऐसा चाव लाखों बरस में होता है' । जो जो राजा इन्दर ने अपने मुँह से निकाला था आँख

की झपक के साथ वही होने लगा। और जो कुछ उन दोनों महाराजों ने कह दिया था, सब कुछ उसी रूप से ठीक ठीक हो गया। जिस ब्याह की यह कुछ फैलावट और जमावट और रचावट ऊपर तले इस जमघटे के साथ होगी, और कुछ फैलावा क्या कुछ होगा, यही ध्यान कर लो।

जब कुँवर उदैभान को वे इस रूप से ब्याहने चढ़े और वह वाम्हन जो अँधेरी कोठरी में मुँदा हुआ था उसको भी साथ ले लिया और बहुत से हाथ जोड़े और कहा 'बाम्हन देवता हमारे कहने सुनने पर न जावो, तुम्हारी जो रीत चली हुई आई है बताते चलो'। एक उड़न-खटोले पर वह भी रीत बताके साथ हो लिया। राजा इन्दर और महेन्दरगिर ऐरावत हाथी पर भूलते झालते देखते भालते चले जाते थे। राजा सूरजभान दूल्हा के घोड़े के साथ माला जपता हुआ पैदल था। इसी में एक सन्नाटा हुआ। सब घबरा गए। उस सन्नाटे में जो वह ९० लाख अतीत थे सब जोगी से बने हुए सब माले मोतियों की लड़ियों के गले में डाले हुए और गातियाँ उसी ढब की बाँधे हुए मिरिगछालों और बघंबरों पर आ ठहर गए। लोगों के जियों में जितनी उमंग छा रही थी वह चौगुनी पचगुनी हो गई। सुखपाल और चंडोल और रथों पर जितनी रानियाँ थीं महारानी लछमीबास के पीछे चली आतियाँ थीं। सब को गुदगुदियाँ सी होने लगीं। इसी में भरथरी का सवाँग आया। कहीं जोगी जतियाँ आ खड़े हुए। कहीं कहीं गोरख जागे कहीं मुछन्दर नाथ भगे। कहीं मच्छ कच्छ बराह

सन्मुख हुए। कहीं परसुराम, कहीं बामन रूप, कहीं हरनाकुस और नरसिंह, कहीं राम लछमन सीता समेत आईं, कहीं रावन और लङ्का का बखेड़ा सारे का सारा सामने देखाई देने लगा। कहीं कन्हैया जी की जन्मअस्टमी होना और वसुदेव का गोकुल ले जाना और उनका बढ़ चलना, गाएँ चरानी और मुरली बजानी और गोपियों से धूम मचानी और राधिका-रहस और कुब्जा का बस कर लेना, कहीं करील की कुँजें, वंसीबट, चीरघाट, वृन्दावन, सेवाकुञ्ज, बरसाने में रहना और कन्हैया से जो जो हुआ था सब का सब ज्यों का त्यों आँखों में आना और द्वारिका जाना और वहां सोने का घर बनाना इधर बिरिज को न आना और सोलह सौ गोपियों का तलमलाना सामने आ गया। उनमें से ऊधो का हाथ पकड़ कर एक गोपी के इस कहने ने सबको रुला दिया जो इस ढब से बोल के उनसे रुँधे हुए जी को खोले थी—

चौतुक्का

जब छाँड़ि करील की कुंजन को हरि द्वारिका जीउ माँ जाय बसे।
कुलधूत के धाम बनाये घने महराजन के महराज भए॥
तज मोर मुकुट अरु कामरिया कछु औरहि नाते जोड़ लिए।
धरे रूप नए किये नेह नए अरु गइयाँ चरायबो भूल गए॥

कोई क्या कह सके, जितने घाट दोनों राज की नदियों में थे, पक्के चांदी के थक्के से होकर लोगों को हक्का बक्का कर रहे थे।

निबाड़े, भौलिये, बजरे, लचके, मोरपङ्खी, स्याम सुन्दर, रामसुन्दर और जितनी ढब की नावें थीं सनहरी रूपहरी, सजी सजाई कसी कसाई सौ सौ लचके खातियाँ आतियाँ जातियाँ ठहरातियाँ फिरातियाँ थीं। उन सभी पर खचाखच कंचनियाँ, राम-जनियाँ, डोमनियाँ भरी हुई अपने अपने करतबों में नाचती गाती बजाती कूदती फाँदती धूमें मचातियाँ अँगड़ातियाँ जँभातियाँ उँगुलियाँ नचातियाँ और ढुली पड़तियाँ थीं। और कोई नाव ऐसी न थी जो सोने रूपे के पत्तरों से मढ़ी हुई और सवारी से डटी हुई न हो। और बहुत सी नावों पर हिंडोले भी उसी ढब के थे। उन पर गायनें बैठी झूलती हुई सोहनी, केदारा, बागेसरी, कन्हड़ों में गा रही थीं। दल बादल ऐसे नेवाड़ों के सब झीलों में छा रहे थे।

इस धूम धाम के साथ कुँवर उदैभान सेहरा बाँध जब दुल्हन के घर तक आ पहुँचा और जो रीतें उनके घराने में चली आई थीं होने लगियाँ।

उस घड़ी मदनबान को रानी केतकी के बादले का जूड़ा और भीनाभीनापन और अँखड़ियों का लजाना और बिखरा बिखरा जाना भला लग गया तो रानी केतकी की बास सूँघने लगी और अपनी आँखों को ऐसा कर लिया जैसे कोई ऊँघने लगता है। सिर से लगी पाँव तक वारी फेरी होके तलवे सुहलाने लगी। तब रानी केतकी झट एक धीमी सी सिसकी लचके के साथ ले उठी। मदनबान बोली 'मेरे हाथ के ठोके से वही पाँव

का छाला दुख गया होगा जो हिरनों को ढूँढ़ने में पड़ गया था।' इसी दुख की चुटकी से रानी केतकी ने मसोस कर कहा 'काँटा अड़ा तो अड़ा, छाला पड़ा तो पड़ा, पर निगोड़ी न क्यों मेरी पनछाला हुई'।

दूल्हा उदैभान सिंहासन पर बैठा और इधर उधर राजा इन्दर और जोगी महेन्दर गिर जम गए और दूल्हा का बाप अपने बेटे के पीछे माला लिए कुछ गुनगुनाने लगा। और नाच लगा होने और अधर में जो उड़नखटोले राजा इन्दर के अखाड़े के थे सब उसी रूप से छत बाँधे हुए थिरका किए। दोनों महारानियाँ समधिन बन के आपस में मिलियाँ चलियाँ और देखने दाखने को कोठों पर चन्दन के किवाड़ों के आड़ तले आ बैठियाँ। सवाँग संगीत भँड़ताल रहस हँसी होने लगी। जितनी राग रागनियाँ थीं—ईमन कल्यान, सुद्ध कल्यान, झिंझोटी, कान्हड़ा, खम्माच, सोहनी, परज, बिहाग, सोरठ, कालंगड़ा, भैरवी, षट-ललित, भैरों रूप पकड़े हुए सचमुच के जैसे गाने वाले होते हैं उसी रूप में अपने अपने समय पर गाने लगे और गाने लगियाँ। उस नाच का जो ताव भाव रचावट के साथ हो, किसका मुँह जो कह सके। जितने महाराजा जगत परकास के सुख चैन के घर थे—माधो बिलास, रसधाम, कृष्णनिवास, मच्छीभवन, चन्द्रभवन-सबके सब लप्पे से लपेटे और सच्चे मोतियों की झालरें अपने अपने गांठ में समेटे हुए एक भेष के साथ झूम रहे थे।

बीचों बीच उन सब घरों के एक आरसी धाम बना था

जिसकी छत और किवाड़ और आंगन में आरसी छुट कहीं लकड़ी ईंट पत्थर की पुट एक उँगली के पोर बराबर न लगी थी। चांदनी का जोड़ा पहने जब रात घड़ी एक रह गई थी तब रानी केतकी सी दुल्हन को उसी आरसीभवम में बैठाकर दूल्हा को बुला भेजा। कुँवर उदैभान कन्हैया सा बना हुआ सिर पर मुकुट धरे सेहरा बांधे उसी तड़ावे और जमघट के साथ चांद सा मुखड़ा लिए जा पहुँचा, जिस जिस ढब से बाम्हन और पंडित कहते गये और जो जो महाराजों में रीतें होती चली आई थीं उसी डौल से उसी रूप से भँवरी गठ जोढ़ा हो लिया।

यह उड़नखटोलेवालियां जो अधर में छत सी बांधे हुए थिरक रही थीं, भर भर झोलियाँ और मूठियाँ हीरे और मोतियाँ से निछावर करने के लिये उतर आइयाँ और उड़नखटोले अधर में ज्यों के त्यों छत बांधे हुए खड़े रहे। और वह दूल्हा दूल्हन पर से सात सात फेरे वारी फेरे होने में पिस गइयां। सभों को एक चुपकी सी लग गई। राजा इन्दर ने दूल्हन की मुँह दिखाई में एक हीरे का एक डाल छपरखट और एक पेड़ी पुखराज की दी और एक पारिजात का पौधा जिसमें जो फल चाहो सो मिले दूल्हा दूल्हन के सामने लगा दिया। और एक कामधेनु गाय की पठिया बछिया भी उसके पीछे बांध दी और इक्कीस लौंड़ियां उन्हीं उड़नखटोले-वालियों में से चुन के अच्छी से अच्छी सुथरी से सुथरी गाती बजातियां सीतियां पिरोतियां और सुघर से सुघर सौंपी और उन्हें कह दिया 'रानीकेतकी छुट उनके दूल्हा से कुछ बात चीत न रखना नहीं तो सब की सब पत्थर की मूरतें हो जावोगी और

अपना किया पावोगी'। और गोसाईं महेन्दर गिर ने बावन तोले पाव रत्ती जो उसकी इक्कीस चुटकी आगे रक्खी और कही "यह भी एक खेल है जब चाहिए बहुत सा ताँबा गला के एक इतनी सी चुटकी छोड़ दीजे कंचन हो जायगा" और जोगीजी ने सभों से यह कह दिया 'जो लोग उनके ब्याह में जागे हैं उनके घरों में चालीस दिन चालीस रात सोने की नदियों के रूप में मनी बरसे। जब तक जिएँ किसी बात की फिर न तरसे।' नौ लाख निन्नानवे गाएँ सोने रूपे सिंगौरियों की जड़ाऊ गहना पहने हुए घुंघरू छमछमातियाँ महंतों को दान हुईं। और सात बरस का पैसा सारे राज को छोड़ दिया गया। बाइस सै हाथी और छतीस सै ऊँट रुपयों के तोड़े लादे हुए लुटा दिया। कोई उस भीड़भाड़ में दोनों राज का रहने वाला ऐसा न रहा जिसको घोड़ा जोड़ा रुपयों का तोड़ा जड़ाऊ कपड़ों के जोड़े न मिले हों। और मदनबान छुट दूल्हा दूल्हन पास किसी का हियाव न था जो बिन बुलाए चली जाय बिन बुलाए दौड़ी आए तो वही आए और हँसाय तो वही हँसाए। रानी केतकी के छेड़ने के लिए उनके कुँवर उदैभान को कुँवर क्योड़ाजी कहके पुकारती थी और ऐसी बातों को सौ सौ रूप से सँवारती थी।

सदलमिश्र (समय लगभग १८२४-१६०५)

सदलमिश्र आरे के रहने वाले शाकद्वीपीय ब्राह्मण थे। इनके एक पूर्वज शुकदेव मिश्र आरा के एक ग्राम में आकर वसे थे। किन्तु अपने सजातीयों के अत्याचार के कारण उन्हें वह ग्राम छोड़ कर भदवर ग्राममें जाना पड़ा।

उस ग्राम में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। पं० शुकदेव के पुत्र थे लक्ष्मण मिश्र। लक्ष्मण के पुत्र नंदमणि के ज्येष्ठ पुत्र सदलमिश्र थे। पं० सदल मिश्र संस्कृत के अच्छे पंडित थे। इसी विद्वत्ता के कारण इन्हें फ़ोर्ट विलीयम कालेज में नियुक्त किया गया और वहां के अध्यक्ष गिलक्रिस्ट साहेब के अच्छे कृपापात्र बन गये। उन्हीं के आदेश से इन्होंने 'नासिकेतोपाख्यान' की रचना की है।

पं० सदलमिश्र पं० लल्लूलाल के समकालीन थे और उन्हींके साथ फ़ोर्ट विलियम कालेज में थे। तथापि इनकी भाषा और उनकी भाषा में बहुत अन्तर है। लल्लूलाल की भाषा पर ब्रज-भाषा का काफी पुट चढ़ी है और अस्थिर और अपरिमार्जित है। उन्होंने पद्यों की तरह तुक मिलाने की ओर ध्यान अधिक दिया है। पर मिश्र जी की भाषा बोलचाल में आने वाली खड़ीबोली है, यद्यपि कहीं कहीं उसमें ब्रज और पूरबी हिन्दी की झलक आ जाती है। भाषा के लिहाज़ से इनका स्थान मुं० इँशाअल्ला खां के बाद और लल्लूलाल से पूर्व है।

नासिकेतोपाख्यान

तुरन्त द्वारपालों ने रघु से जा कहा कि महाराज! एक कोई ऋषि महातेजस्वी बाहर आय खड़े हैं।

सुनते ही वे मन्त्रियों को साथ ले दौड़े हुए आए। आवते ही मुनि जी के चरणों पर गिर पड़े और हाथ पकड़ भीतर ले जा अपने सिंहासन पर बैठाय कुशल क्षेम पूछ गङ्गाजल से ऋषि के पाँव पखार चरणोदक लिए। और जैसा कुछ चाहिए, वैसा आदर मान कर हाथ जोड़ कहने लगे कि महाराज! बड़ा अनुग्रह किया जो आके दर्शन दिया। अब हमारी सब क्रिया वो जन्म सुफल हुआ। चाहिए कि आज से मेरे राज में सब भला दिन हुवा करेगा, क्योंकि जहाँ तुम से ऋषियों की दया है, वहाँ सदा ही आनन्द विहार होता है। अब कहिए किस कारण से यहाँ आगमन हुआ, सो इस दास को सुनाइए।

ऐसी नृप की मीठी मीठी बातों से हर्षित हो बार बार आसीस कह उद्दालक बोले कि धन्य हैं तुम्हारी माता वो पिता कि जिन को तुमसा धर्म्मात्मा पुत्र हुआ। और स्वर्गलोक में देवतों की कन्या दिन रात घर घर तुम्हारा गुण गाती हैं। तुम्हें बड़ा दानी जान कन्या याचने को मैं आया हूँ। धर्म्मावतार! वेद की विधि से हमको उसे दीजिए तो लाख गोदान किए का फल पावोगे।

यह बात सुनके नरेश ने कहा कि स्वामी! अन्न वस्त्र हाथी

घोड़ा द्रव्य जितना चाहिए सो हमसे सब लीजिए, पर कन्या तो मेरे घर में नहीं जो आपको दूँ।

मुनि बोले कि सत्य, वह पतिव्रता कन्या बिना ब्याही हुई तुम्हारे मन्दिर में नहीं, पर कहीं होगी। कुल बढ़ाने के लिए मुझ को दीजिए, कोटिन्ह अश्वमेध यज्ञ का पुण्य सहज में होवेगा।

ऋषि की आश्चर्य्य बात सुन शोक से आकुल हो सकुचा कर राजा कहने लगे कि महाराज! प्राण से भी अधिक प्यारी एक पुत्री हमको थी सही, पर कुछ दोष सुनि मारे क्रोध से उसे घर से मैंने निकाल दिया। सो आपके योग्य नहीं। और ईश्वर जाने कि अब जीवती है कि मर गई।

तब उद्दालक मुनि पिछला समाचार भूपति को सुना दिया।

तब वे सुनकर बार बार पछिता पछिता रो रो कहने लगे कि हाय! हाय! यह देवचरित्र मैंने कुछ नहीं जाना। हम सा पापी अधर्म्मी दूसरा कोई नहीं जो बिना अपराध बेटी को वनबास दिया।

ऐसे कहते हुए वहाँ से तुरन्त हर्षित हो उठे। वो भीतर जा मुनि ने जो आश्चर्य्य बात कही थी, सो पहिले रानी को सब सुनाई। वह भी मोह से व्याकुल हो पुकार पुकार रोने लगी वो गिड़गिड़ा कहने कि महाराज! जो यह सत्य है तो अब ही लोग भेज लड़के समेत झट उसको बुला ही लीजिए, क्योंकि अब मारे शोक के मेरी छाती फटती है। कब मैं सुन्दर बालक सहित चन्द्रावती के मुँह, कि जो बन के रहने से भोर के चन्द्रमा सा मलीन हुआ होगा, देखोंगी। देखो यह कर्म्म का खेल, कहाँ इहाँ

नाना भाँति भोग विलास में वो फूलन्ह के बिछौने पर से सुख से दिन रात जिसके बीतते थे, सो अब जंगल में कन्द मूल खा कांटे कुश पर सो कर स्यारों के चहुंदिशि डरावन शब्द सुनि कैसे विपति को काटती होगी।

राजा बोले कि माता पिता से प्राणी का एक ज़न्म ही तो होता है। और सुख दुःख जो पूछो तो जब जैसा बदा तब तैसा, क्या राजा प्रजा, सब ही बड़े छोटे को होता है।

इतने में जहाँ से सखी सहेली और जात भाइयों की स्त्री सब दौड़ी हुई आईं, समाचार सुनि बहुत जुड़ाईं, मगन हो हो नाचने गाने बजाने लगीं, वो अपने अपने देह से गहना उतार उतार सेवकों को देने लगीं और अगणित रुपैया अन्न वस्त्र राजा रानी ने ब्राह्मण को बोला बोला दान दिया। आनन्द बधावा बाजने लगा। हर्षित हो नरेश ने वहाँ से सभा में जा ऋषि से कहा कि महाप्रभु! आपने मेरा बड़ा कलंक मिटाया है। इस आनन्द का कुछ पारावार नहीं। अब निचिन्त हो इहाँ विराजिए, कन्या मँगा आपको मैं दूँगा।

ऐसे कह अमृत पदार्थ भोजन करा अति आदर से मुनि को टिकाया, वो तुरन्त सेवकों के सहित पालकी भेज नाती समेत बेटी को बन से मँगा लिया। गले लगा सब रनिवास भेंट किया। बालक गोदी में ले मतारी लड़की को घर में बैठा रो रो बन की बात पूछने लगी। भाई गोतिया हित मीत नगर के लोग देखने को आए। भीतर बाहर नृप के मन्दिर में मारे भीड़ के उथल पथल हो गया। तब भूप ने पण्डितों को बुला

दिन विचार बड़ी [प्रसन्नता से सब] राजा वो ऋषियों को नेवत बोलाया। लगन के समय सबों को साथ ले मंडप में कि जहाँ सोनन्ह के थम्भ पर मानिक दीप बरते थे, जा पहुँचे। मोतिन्ह से पूरा हुआ चौक में रतन जड़ा पीढ़ा रखवा उस पर वर कन्या दोनों को पटम्बर वो गलों में हीरे की माला पहिरा बैठाया और वेदविधि से ब्याह आरम्भ किया। ब्राह्मण सब वेद पढ़ने लगे। भाँति भाँति के बाजन लगे बाजने, वो कथक गाने, बन ठन वेश्यागण जहाँ तहाँ नाचने, हर्षित हो राजा ने कन्यादान कर सहस्र हाथी, लाख घोड़े वो गौ, असंख्य बासन भूषण वस्त्र रुपया जँवाई को यौतुक दिया। फिर हाथ जोड़ बिनती किया कि सुनिये महाराज! आपने निपट हमको सनाथ किया। मेरे घर में ऐसी वस्तु नहीं कि जिस से तुम्हारी मैं पूजा करूँ। देखिये सागर को जल से, सूर्य्य को दीप से पूजते हैं, तिन्ह को क्या उनसे आनन्द होता है? नहीं, महात्मा लोग आदर मान ही से सन्तुष्ट होते हैं।

इतना कह ऋषि के चरण पर गिर पड़े। अति प्रसन्न हो मुनि उठा पीठ ठोंक आशीस दे बोले कि धन्य हो राजा रघु! क्यों न हो। मुँह पर कहाँ तक बड़ाई करें। भगवान ने तुमको बड़ी बुद्धि दी है। ईश्वर करे यों ही सदा फूले रहो और यह हमारे यौतुक के हाथी घोड़े द्रव्य तुम्हारे ही घर में रहें, क्योंकि बन के बसने वाले तपस्वियों को इन से क्या काज।

ऐसे कह धन छोड़ सब से मिल नासिकेत समेत भार्य्या ले उद्दालक मुनि वहाँ से अपने आश्रम पर आए।

तब राजा जनमेजय ने वैशम्पायन ऋषि से कहा "ऐ महाराज सुना है जो स्थान पर आके कुछ दिन के बीते पर पिता के शाप से जींवित ही नासिकेत यम के पास गए और आए सो सब कृपा कर हम को सुनाइए कि जिस से सन्देह मेरा दूर होए"।

वे बोले हे राजा! अति आश्चर्य्य कथा है, तुम्हारी भक्ति से बहुत प्रसन्न हो मैं कहता हूं, एक चित्त हो सुनो—

इस प्रकार राजा रघु की बेटी चन्द्रावती को ब्याह साथ ले फिर उद्दालक तपस्या करने लगे। और नासिकेत को योग की श्रद्धा हुई सो वे लगे योग करने।

एक दिन पिता ने उनको आज्ञा दी कि पुत्र! आज हमको अग्निहोत्र यज्ञ करना है, तुम कन्द मूल फूल फल जितना मिले सो शीघ्र जा ले आवो।

सुनते ही वे उठ खड़े भये और किसी घने बन में जा पहुंचे वहाँ हंस सारसों से सुशोभित ऐसा कोई सुन्दर सरोवर देखा कि जहाँ अच्छा निर्मल पानी, तिस में भांति भांति के कमल फूले थे, और उसके तट के वृक्ष सब अमृत समान फलों से फले थे। तब हर्षित हो उसके तट पर जा विधि से स्नान सन्ध्या कर शिव की पूजा करने लगे और समाधि लगाई, सौ बरस दिन उनको वहां बीत गया। पीछे जब ध्यान छूटा तो तुरन्त कन्द मूल फूल फल कुश वो ईंधन ले पिता के पास आन पहुँचे। देखते ही वे क्रोध से लाल आंख कर बोले—

चौपाई

इतना दिन कहो कहाँ लगाए । तेरे कारण बहु दुख पाए ॥
अग्निहोत्र वह यज्ञ हमारा । तुम बिन गया अकारथ सारा ॥

पुत्र करते हैं सुख पाने को, नहीं तो निपुत्र होना अच्छा । अब ही से पिता माता को दुःख देने लगा, न जाने आगे क्या करेगा । देखो अग्निहोत्र से ब्रह्मा आदि देवता और पितर सब सन्तुष्ट होते हैं, सो हमसे कुछ हो सका नहीं ।

पिता की बात सुनि नासिकेत बोले कि अग्निहोत्र कर्म्म केवल संसार के बन्धन के लिये है, मेरे जानने में तो योग समान कोई दूसरी क्रिया मुक्तिदायक नहीं, कि जिसको ब्रह्मा आदि देवता सब भी साधते रहते हैं।

उद्दालक बोले वेद पढ़ि अग्निहोत्र करके करोड़न्ह बरस सुरपुर में नाना भोगविलास करते हैं । योग से कहो क्या होता है ?

नासिकेत ने कहा वेद पढ़ि अग्निहोत्र करने से बार बार संसार में आते जाते हैं । योग साधने से इस देह से मुक्ति हो आनन्द विहार करते हैं ।

यह समाचार वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं कि इस प्रकार पुत्र को बरा बर उत्तरदायक जान उद्दालक ऋषि ने शाप दिया कि जाव, अब ही तुम यमलोक सिधारो । अब इहाँ तुम्हारे रहने से हम प्रसन्न नहीं । पहिले तो वे डरावने शाप से लगे काँपने, फिर धीरज कर योग के बल से तुरन्त यम के निकट चल खड़े भये ।

सुनते ही आस पास के मुनि सब हाय हाय करते दौड़ आए। सिर में जटा, अङ्ग में बभूत, केले के छिलके का लंगोट बाँधे, मृग का चर्म ओढ़े, छोटा सा लड़का जान, मीठी मीठी बात कहते देख कर बहुत पछताने लगे।

पाँव पकड़ कर मतारी रोने कलपने लगी। तब उद्दालक मुनि मोह से अकुला कर कहने लगे क्यों पुत्र! हमको बिसराए चले जाते हो। हम समान कुटिल कठोर निर्दयी दूसरा कौन जग में होगा जो तुमको शाप दे। क्योंकर पूत उस पुरी में जावोगे कि जहाँ राजा कहिये तो यम है, वो महाभयावनी वैतरनी नदी बहती है, बाट में कितने एक दूर तक सदा अग्नि ऐसी बरसती रहती है कि जहाँ पापी सब जा जा जलते हैं।

नासिकेत ने कहा पिता! कुछ खेद मत करो, आपके प्रताप से यमराज को देख शीघ्र मैं चला आऊँगा। तुम से पिता की बात जो सदा सत्य होती आई है, सो मैं झुठाने नहीं सकता हूँ। देखिए, सत्य ही से चन्द्रमा सूर्य्य नित्य भ्रमते हैं। सत्य ही स्वर्ग में है, नहीं तो बिना उसके नरक भोग होता है। इसलिये यम की पुरी को देखूँगा। पिता! मन को आकुल मत करो। इतना कह माता सहित पिता वो ऋषि को प्रणाम कर झट वहाँ से अन्तर्धान हो शिव का मन्त्र जपते वो ब्रह्मा का ध्यान करते चले, और बड़े सिद्ध थे इस कारण पल भर में यम की वह सभा में, कि जहाँ अत्री आदि अनेक ऋषि लोग अपनी अपनी पोथी खोल न्याय विचार यमराज से कहते थे, जा पहुँचे।

चौपाई

शिव स्वरूप अति सुन्दर बालक। निपट छोट देखत सुखदायक ॥
जटा मुकुट वो भस्म लगाए। जातेहि सकल सभा [मन] भाए ॥

तब सिर नवाय प्रणाम कहि हाथ जोर लगे धर्म्मराज की स्तुति करने।

वैशम्पायन मुनि राजा जनमेजय से कहते हैं, सूर्य्य समान तेजस्वी नसिकेत मुनि को, जिनके जाने से सभा शोभने लगी, देखते ही धर्म्मराज हर्षित हो तुरन्त उठ खड़े भए। आदर मानकर निकट अपने आसन पर ऋषि को बैठाया वो प्यार से समाचार पूछने लगे।

चौपाई

बालहिपन में बड़ी सिधाई। कहो मुनीश कैसे यह पाई ॥
धन्य पिता जिनके तुम भए। तुम्हें देख पातक सब गए ॥
कारण कौन यहाँ तुम आए। बार बार मेरे गुण गाए ॥
अमृत वाणी बहुत सुनाई। जो कहत सोहावनि अति सुखदाई ॥

इतनी यम की बातें सुन नासिकेत ने कहा दीनदयाल ! अपनी भूल कहाँ तक मैं आपको सुनाऊँ। जब कुमति आ घेरती है तब कैसहू कोई ज्ञानी होय, ज्ञान ठिकाने में नहीं रहता। एक तो पहिले आज्ञा में चूके ही थे, फिर ज्ञान की चर्चा में ढिठाई कर पिता को बराबर उत्तर दिया। इस अपराध से झट उनके मुख से यह बात निकल गई कि जा, अब ही यमपुरी को देख; तू हमारे साथ रहने योग्य नहीं। सो महाराज ! पिता का वचन

सत्य करने के लिए तुम्हारे समीप आया हूँ। जैसी कुछ आज्ञा होए सो मैं करूँ।

हँस के यम बोले कि महाप्रभु! तुम समान मुनि को, कि जो अब ही ऐसा योग में मगन हो संसार की माया मोह त्याग जो चाहे सो करे, जहाँ इच्छा आवे, तहाँ चला जाय, देख कर अति आनन्द हमको होता है। कहो क्या मन में है सो वर मुझसे माँगो।

नासिकेत बोले महाराज! ऐसी दया करते हो तो चित्रगुप्त समेत अपनी सारी पुरी वो धर्म्मात्मा लोग जहाँ पुण्य का अच्छा फल वो पापी जन नरक भोगते हैं, सो सब स्थान दिखावो। यही मेरे मन की लालसा है।

तुरन्त उनने दूतों को बुलाके कहा कि यह ऋषि बड़े सत्य-वादी मर्त्यलोक से पिता के शाप पाय यहाँ आए हैं। जाव, सगरे पुर का दर्शन इन्हें करा लावो, कि जिससे अपना मनोरथ पूरण कर हर्षित हों।

प्रभु की इतनी आज्ञा सुनि दूत सब वोंहीं उनको चित्रगुप्त के पास ले गए और कहा कि धर्म्मावतार। यमराज ने हमको भेजा है। बाप का वचन रखने के लिए ये महापुरुष यहाँ आए जो कुछ कहते हैं सावधान होकर सुनिए।

किंकरों की यह बात सुनि चित्रगुप्त ने मुनि से पूछा कि महाराज! तुम्हारे दर्शन से निपट हम सन्तुष्ट भए, कहो क्या अभिलाष है; सो मैं पूरण करूँ।

नासिकेत बोले, ईश्वर ने अति उत्तम तुमको बनाया है, सब

शास्त्र के ज्ञाता, धर्म्म अधर्म्म के विचार और तेज में देखते हैं कि यम के समान ही हो। और प्राणियों के सकल कर्म्म के जाननिहार बार बार मैं तुमको प्रणाम करता हूँ। पुण्य पाप के कारण से सुख दुख के जो जो स्थान इस नगर में हैं सो देखने की मेरी इच्छा है। कृपानिधान! दया करके हमारे मनोरथ को पुरावो।

वैशम्पायन कहते हैं, इस प्रकार से बिनती किए पर चित्रगुप्त की आज्ञा ले दूतों ने नासिकेत को लेजा स्वर्ग नरक, जहाँ पुण्य पाप के फल पावते हैं, दिखा सुना प्रसन्न कर फिर चित्रगुप्त को कहते हुए धर्म्मराज के पास ले आय खड़ा कर दिया।

महातेजस्वी व समर्थ जान उनके आवते ही वे उठ खड़े भए और आसन दे बैठाय प्रीति कर पूछने लगे कि कहो नासिकेत ऋषि! चित्रगुप्त समेत सारे पुर वो नाना भाँति के लोग जो अपने अपने कर्म्म का फल भोगते हैं, देख आए? श्रद्धा पूरी भई?

वे बोले महाराज! तुम्हारे प्रसाद से सब स्थान से मैं हो आया। अब माता पिता हमारे शोक से कलपते होंगे, आज्ञा करो तो उनका दर्शन करूँ।

तब इतना वचन सुनि धर्म्मराज निपट हर्षित भए, वो यह वर दे उनको अपने यहाँ से बिदा किया कि आज से तुम अपने योग के बल से सब दुःख से छूट और मृत्यु को जीत युवा स्वरूप हो सदा आनन्दविहार में मगन रहो। और जो तुम्हारे कुल में होगा सो हमारा कबहीं न मुँह देखेगा।

इस प्रकार से यह वर पाया नासिकेत मुनि मन के वेग समान से चले, सो पल भर में जहां माता पिता मारे मोह से दुबरा कर मरने योग्य हो रहे थे, वहां अचानक जा पहुँचे, वो जाते ही दोनों की प्रदक्षिणा की, वो चरण छू प्रणाम कर सन्मुख जा बैठे।

[पत्नी] सहित उद्दालक ऋषि पुत्र को कुशल से देख बहुत हर्षित भये वो तुरन्त गोदी में बैठा अति आनन्द से रो रो बार-बार मुँह चूमने लगे और कहने लगे कि नासिकेत! आज हमारा जन्म सारथ हुआ। हम समान क्रोधी दुराचारी पापी संसार में कौन होगा जो बिना अपराध शाप दे तुमको संकट में डाला। धन्य हो पुत्र, कि इसी देह से यमकी पुरी को देख ज्यों के त्यों फिर चले आए। जग में एक से एक सिद्ध हुए और हैं, पर मैं जानता हूँ कि तुम्हारे गुण वो तेज को कोई दशाँश भी नहीं पा सकता है। कहो कैसे धर्म्मराज का लोक व नगर है। कैसा यम का रूप, किस प्रकार की बाट कि जिससे इतना शीघ्र गए वो आए? क्या खाने पीने को पाया? किस रीति से बात चीत की? और जो कुछ अचरज देखा सुना हो सो हमसे कहो कि सन्देह मिटे, वो जो, करने को होय सो मैं करूँ।

नासिकेत बोले पिता! आपके पुण्य प्रताप से यम के मन्दिर हम गए। सब के संहारकर निहार दूतसहित यम-राज, पुण्य पाप के लिखने वाले चित्रगुप्त और भाँति भाँति के देवता अनगणित मैंने देखे। बड़ी स्तुति से रिझा कर यम से यह

वर पाया कि इसी देह से जाओ, अब तुम्हारा जन्म मरण न होवेगा और युवा वयस सब दिन सुख में भरे पुरे रहोगे।

वैशम्पायन कहते हैं, इतने में नासिकेत धर्म्मराज के पुर से हो आया, यह सुनि ऋषि लोग बहुत चकित हो अपने अपने आश्रम में जिस भाँति से तप करते थे, उसी प्रकार से यमलोक के समाचार पूछने के लिए चल खड़े भए। कितने एक तो नीचे माथे ऊपर पाँव किए और कितने एक ही चरण से खड़े, कोई दोनों, कोई एक ही हाथ उठाए, किसी को देखो तो मौन ही व्रत किए, कोई सूखे पत्ते ही खा, कोई निराहारी हुए, बहुतेरे संसार सागर पार होने को योग ही में मगन दिगम्बर वेष बनाए, कठिन से कठिन तपस्या में मन लगाए, जहाँ पिता के समीप नासिकेत बैठे थे वहाँ आन पहुँचे।

देखते ही वे हर्षित हो उठ खड़े भए वो प्रणाम कर मिल भेंट, कुशल क्षेम पूछ, आसन दे एक एक को अलग अलग बैठा, पाँव धुला, आचमन करा, अक्षत चन्दन फूल ले सबों को पूजने लगे।

तब समय जान ऋषि लोग बोल उठे कि नासिकेत! हम तुमसे अति प्रसन्न भए। शिष्टाचार तो जैसा कुछ चाहिये वैसा हो चुका वो होता रहेगा, अब यमलोक की बात सुनावो। कैसी वह पुरी है कि जहाँ सदा आप धर्म्मराज विराजते रहते हैं? कैसे यम के दूत हैं? क्या वहाँ की रीति रहन ज्ञान तपस्या वो कैसी वहाँ बैतरणी नदी है? और यहाँ जो करते सो वहाँ कैसे भोगते हैं? किस करम के फेर से यम के कोप में जा पड़ते

है ? कैसा उनका दंड व कैसे चित्रगुप्त हैं जो प्राणियों के धर्म्म अधर्म्म लिख धर्म्मराज को जनाते हैं ? पास में उनके कौन कौन मुनि लोग रहते हैं ? सो सब कृपा कर कहो कि जिससे अति संतुष्ट हो तुम्हारे गुण को गावें।

उनकी इतनी बात सुनि बीच में बैठ नासिकेत मुनि कहने लगे कि जितने तुम साधु सन्त हो सो अब सावधान हो सुनो। ऐसी आश्चर्य यह कथा है कि जिसके श्रवण से रोमाँच होते हैं।

———

राजा शिवप्रसाद (संवत् १८८०—सन् १८९५)

राजा शिवप्रसाद का संबन्ध रणथंभौरगढ़ के राजवंश से है। आप के पूर्वज दिल्ली में जौहरी का व्यवसाय करते थे। आपके पितामह काशी में बसे थे। वहीं पर राजा साहिब का जन्म माघ सुदी द्वितीया, संवत् १८८० को हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू गोपीचन्द था। आप उर्दू, फारसी, हिन्दी और संस्कृत जानते थे। पीछे आपने अंग्रेज़ी में भी अच्छी योग्यता पा ली थी।

शिक्षा प्राप्त करने पर आप भरतपुर दरबार में नौकर हुए और वहाँ के वकील होकर दरबार की बड़ी सेवा की। सन् १८४५ के अंग्रेज़ और सिक्खों के युद्ध में आपने अंग्रेज़ी राज्य की सहायता की थी।

सन् १९१२ में आप शिक्षाविभाग के इंसपेक्टर नियत हो गये। इस पद पर रह कर आपने हिन्दी की अच्छी सेवा की। आपने बाल-पाठ्य पुस्तकें कुछ खुद लिखीं और कुछ विद्वानों से लिखवाई।

आप ही के प्रभाव से उर्दूदानों के विरोध होते भी हिन्दी को शिक्षा-विभाग में स्थान मिला। हिन्दी में स्कूल शिक्षा की पाठ्य पुस्तकों का अभाव था। उसको दूर करने के लिये आपने कोई ३५ पुस्तकें लिखीं।

श्रीहरिश्चन्द्र जी आप को अपना विद्यागुरु कहते थे। इन सेवाओं के उपलक्ष्य में आपको सन् १८७२ में सी० एस० आई० की और सन् १८८७ में 'राजा' की उपाधि मिली। आपका देहान्त १३ मई, सन् १८९५ में हुआ।

राजा भोज का सपना

वह कौनसा मनुष्य है जिसने महाप्रतापी महाराजा भोज का नाम न सुना हो। उसकी महिमा और कीर्त्ति तो सारे जगत् में व्याप रही है। बड़े बड़े महीपाल उसका नाम सुनते ही काँप उठते और बड़े बड़े भूपति उसके पाँव पर अपना सिर नवाते, सेना उसकी समुद्र की तरंगों का नमूना और ख़ज़ाना उसका सोने चाँदी और रत्नों की खान से भी दूना। उसके दान ने राजा कर्ण को लोगों के जी से भुलाया और उसके न्याय ने विक्रम को भी लजाया। कोई उसके राज्य भर में भूखा न होता और न कोई उघाड़ा रहने पाता। जो सत्तू माँगने आता उसे मोतीचूर मिलता और गजी चाहता उसे मलमल दी जाती। पैसे की जगह लोगों को अशर्फियाँ बाँटता और मेह की तरह भिखारियों पर मोती बरसाता। एक एक श्लोक के लिये लाखों देता और ब्राह्मणों को षट्रस भोजन कराके तब आप खाने को बैठता, तीर्थ-यात्रा स्नान,दान और व्रत-उपवास में सदा तत्पर रहता। उसने बड़े बड़े चांद्रायण किये थे और बड़े बड़े जंगल पहाड़ छान डाले थे।

एक दिन शरद ऋतु में सन्ध्या के समय फुलवाड़ी के बीच स्वच्छ पानी के कुण्ड के तीर जिसमें कुमुद और कमलों के बीच जलपत्ती किलोलें कर रहे थे, रत्नजटित सिंहासन पर कोमल तकिये के सहारे स्वस्थचित्त बैठा हुआ वह महलों की सुनहरी कलसियाँ लगी हुई संगमरमर की गुमजियों के पीछे से उदय होता हुआ पूर्णिमा का चन्द्रमा देख रहा था और निर्जन एकान्त होने के कारण मन ही मन में सोचता था कि अहो! मैंने अपने

कुल को ऐसा प्रकाश किया जैसे सूर्य से इन कमलों का विकास होता है। क्या मनुष्य और क्या जीव जन्तु मैंने अपना सारा जन्म इन्हीं का भला करने में गँवाया और व्रत उपवास करते करते फूल से शरीर को काँटा बनाया। जितना मैंने दान किया उतना तो कभी किसी के ध्यान में भी न आया होगा। जो मैं ही नहीं तो फिर और कौन हो सकता है ? मुझे अपने ईश्वर पर दावा है, वह अवश्य मुझे अच्छी गति देगा। ऐसा कब हो सकता है कि मुझे कुछ दोष लगे ?

इसी अर्से में चोबदार ने पुकारा—"चौधरी इन्द्रदत्त निगाह रूबरू।" श्री महाराज सलामत भोज ने आँख उठाई, दीवान ने साष्टाँग दण्डवत् की, फिर सम्मुख जा हाथ जोड़ यों निवेदन किया—"पृथ्वीनाथ, सड़क पर वे कुएँ जिनके वास्ते आपने हुक्म दिया था बन कर तैयार हो गये। जो पानी पीता है, आप को असीस देता और जो उन पेड़ों की छाया में विश्राम करता है आपकी बढ़ती दौलत मानता है।" राजा अति प्रसन्न हुआ और बोला कि, "सुन, मेरी अमलदारी भरमें जहाँ जहाँ सड़कें हैं, कोस कोस पर कुएँ खोदवा के सदाव्रत बैठा दें और दुतरफा पेड़ भी जल्द लगवा दें।" इसी अर्से में दानाध्यक्ष ने आकर आशीर्वाद दिया और निवेदन किया कि "धर्मावतार! वह जो पाँच हज़ार ब्राह्मण हर साल ज़ाड़े में रज़ाई पाते हैं सो डेवढ़ी पर हाज़िर हैं।" राजा ने कहा—"अब पाँच के बदले पचास हज़ार को मिला करे और रज़ाई की जगह शाल दुशाले दिये जावें।" दानाध्यक्ष दुशालों के लाने के वास्ते तोशेखाने में गया। इमारत के दरोगा

ने आकर मुजरा किया और खबर दी कि 'महाराज! इस बड़े मन्दिर की, जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है, आज नींव खुद गई, पत्थर गड़े जाते हैं और लुहार लोहा भी तैयार कर रहे हैं।" महाराज ने तिउरियाँ बदल कर उस दरोगा को खूब घुड़का "अरे मूर्ख, वहाँ पत्थर और लोहे का क्या काम है? बिल्कुल मन्दिर संगमरमर और संगमूसा से बनवाया जावे और लोहे के बदले उसमें सब जगह सोना काम में आवे जिस में भगवान भी उसे देख कर प्रसन्न हो जावें और मेरा नाम इस संसार में अतुल कीर्ति पावे।"

यह सुन सारा दरबार पुकार उठा कि "धन्य महाराज! क्यों न हो? जब ऐसे हो तब तो ऐसे हो! आपने इस कलिकाल को सतयुग बना दिया, मानों धर्म का उद्धार करने को इस जगत में अवतार लिया है। आज आपसे बढ़कर और दूसरा कौन ईश्वर का प्यारा है? हमने तो पहले ही से आप को साक्षात् धर्मराज विचारा है।" व्यास जी ने कथा आरम्भ की, भजन कीर्तन होने लगा। चाँद सिर पर चढ़ आया। घड़ियाली ने निवेदन किया कि, महाराज! आधी रात के निकट है।" राजा की आंखों में नींद आ रही थी, व्यास कथा कहते थे, पर राजा की आंखों में ऊँघ आती थी। वह उठ कर रनवास में गया।

जड़ाऊ पलंग और फूलों की सेज पर सोया। रानियां पैर दाबने लगीं। राजा की आंख झप गई तो स्वप्न में क्या देखता है कि वह बड़ा संगमरमर का मन्दिर बनकर बिल्कुल तैयार हो गया, जहां कहीं उस पर नक्कासी का लाम किया है, वहां उसने

बारीकी और सफाई में हाथीदांत को भी मात कर दिया है, जहां कहीं पच्चीकारी का हुनर दिखलाया है, वहां जवाहिरों को पत्थर में जड़ कर तसवीर का नमूना बना दिया है। कहीं लालों के गुल्ललों पर नीलम की बुलबुलें बैठी हैं और आम की जगह हीरों के लोलक लटकाए हैं, कहीं पुखराजों की डंडियों से पन्ने के पत्ते निकाल कर मोतियों के भुट्टे लगाए हैं। सोने के चोवों पर शामियाने और उनके नीचे बिल्लौर के हौज़ों में गुलाब और केवड़े के फ़ुहारे छूट रहे हैं। मानों धूप जल रहा है। सैकड़ों कपूर के दीपक बल रहे हैं। राजा देखते ही मारे घमंड के फूलकर मशक बन गया। कभी नीचे कभी ऊपर, कभी दाहिने कभीं बायें निगाह करता और मन में सोचता कि अब इतने पर भी मुझे क्या कोई स्वर्ग में घुसने से रोकेगा या पवित्र पुण्यात्मा न कहेगा ? मुझे अपने कर्मों का भरोसा है, दूसरे किसी से क्या काम पड़ेगा ?

इसी अर्से में वह राजा उस सपने के मन्दिर में खड़ा खड़ा क्या देखता है कि एक ज्योति सी उसके सामने आसमान से उतरी चली आती है। उसका प्रकाश तो हजारों सूर्य से भी अधिक है, परन्तु जैसे सूर्य को बादल घेर लेता है उस प्रकार उसने मुँह पर घूँघट सा डाल लिया है, नहीं तो राजा की आंखें कब उस पर ठहर सकती थीं, इस घूँघट पर भी वे मारे चकाचौंध के झपकी चली जाती थीं, राजा उसे देखते ही कांप उठा और लड़खड़ाती सी जबान से बोला कि, "हे महाराज ! आप कौन हैं और मेरे पास किस प्रयोजन से आये हैं ?" उस पुरुष ने

बादल की गरज के समान गंभीर उत्तर दिया कि "मैं सत्य हूं, अंधो की आँखें खोलता हूँ, मैं उनके आगे से धोखे की टट्टी हटाता हूँ, मैं मृगतृष्णा के भटके हुओं का भ्रम मिटाता हूँ और सपने के भूले हुओं को नींद से जगाता हूं। हे भोज! अगर कुछ हिम्मत रखता है तो आ हमारे साथ आ और हमारे तेज के प्रभाव से मनुष्यों के मन के मन्दिरों का भेद ले, इस समय हम तेरे ही मन को जाँच रहे हैं।" राजा के जी पर एक अजब दहशत सी छा गई। नीची निगाह करके वह गर्दन खुजाने लगा। सत्य बोला, "भोज! तू डरता है, तुझे अपने मन का हाल जानने में भी भय लगता है?" भोज ने कहा, "नहीं, इस बात से तो नहीं डरता, क्योंकि जिसने अपने तईं नहीं जाना, उसने फिर क्या जाना? सिवाय इसके मैं तो आप चाहता हूँ कि कोई मेरे मन की थाह लेवे और अच्छी तरह से जाँचे। मारे व्रत और उपवासों के मैंने अपना फूल सा शरीर काँटा बनाया, ब्राह्मणों को दान दक्षिणा देते देते सारा ख़ज़ाना खाली कर डाला, कोई तीर्थ बाकी न रखा, कोई नदी या तालाब नहाने से न छोड़ा, ऐसा कोई आदमी नहीं कि जिस की निगाह में मैं पवित्र पुण्यात्मा न ठहरूँ।" सत्य बोला, "ठीक, पर भोज! यह तो बतला कि तू ईश्वर की निगाह में क्या है? क्या हवा में बिना धूप त्रसरेणु कभी दिखलाई देते हैं? पर सूर्य की किरण पड़ते ही कैसे अनगिनत चमकने लग जाते हैं! क्या कपड़े से छाने हुए मैले पानी में किसी को कीड़े मालूम पड़ते हैं? पर जब खुर्दबीन शीशे को लगा कर देखो तो एक एक घूंट में हजारों ही जीव सूझने लग जाते हैं। जो तू

उस बात के जानने से, जिसे अवश्य जानना चाहिए डरता नहीं तो आ मेरे साथ आ, मैं तेरी आँखें खोलूँगा।"

निदान सत्य यह कह राजा को उस बड़े मन्दिर के ऊँचे दरवाज़े पर चढ़ा ले गया जहाँ से सारा बाग़ दिखलाई देता था, और फिर वह उससे कहने लगा कि "भोज! मैं अभी तेरे पाप कर्मों की कुछ भी चर्चा नहीं करता। क्योंकि तूने अपने तईं निरा निष्पाप समझ रखा है, पर यह तो बतला कि तूने पुण्यकर्म कौन कौन से किये हैं कि जिन से सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर संतुष्ट होगा।" राजा यह सुन के अत्यन्त प्रसन्न हुआ। यह तो मानों उसके मन की बात थी। पुण्य कर्म के नाम ने उसके चित्त को कमल सा खिला दिया। उसे निश्चय था कि पाप तो मैंने चाहे किया हो चाहे न किया हो पर पुण्य मैंने इतना किया है कि भारी से भारी पाप भी उसके पासंग में न ठहरेगा। राजा को वहाँ उस समय सपने में तीन पेड़ बड़े ऊँचे अपनी आँख के सामने दिखाई दिये। फलों से वे इतने लदे हुए थे कि मारे बोझ के उनकी टहनियाँ धरती तक झुक गई थीं। राजा उन्हें देखते ही हरा हो गया और बोला कि "सत्य, यह ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया अर्थात् ईश्वर और मनुष्य दोनों की प्रीति के पेड़ हैं, देख, फलों के बोझ से यह धरती पर नये हैं! यह तीनों मेरे ही लगाये हैं। पहले में तो वे सब लाल लाल फल मेरे दान से लगे हैं और दूसरे में वे पीले पीले मेरे न्याय से और तीसरे में ये सब सफेद फल मेरे तप का प्रभाव दिखाते हैं।" मानों उस समय यह ध्वनि चारों ओर से राजा के कानों में चली जाती थी

कि 'धन्य हो ! आज तुम सा पुण्यात्मा दूसरा कोई नहीं, तुम साक्षात् धर्म के अवतार हो, इस लोक में भी तुमने बड़ा पद पाया है और उस लोक में भी इससे अधिक मिलेगा, तुम मनुष्य और ईश्वर दोनों की आँखों में निर्दोष और निष्पाप हो। सूर्य के मण्डल में लोग कलंक बतलाते हैं पर तुम पर एक छींटा भी नहीं लगाते।"

सत्य बोला कि "भोज, जब मैं इन पेड़ों के पास था जिन्हें तू ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया के बतला है, तब तो इनमें फल फूल कुछ भी नहीं थे, निरे ठूँठ से खड़े थे। ये लाल, पीले और सफेद फल कहाँ से आ गए ? ये सचमुच उन पेड़ों में फल लगे हैं या तुझे फुसलाने और बस करने को किसी ने उनकी टहनियों से लटका दिये हैं ? चल, उन पेड़ों के पास चल कर देखें तो सही। मेरी समझ में तो यह लाल लाल फल, जिन्हें तू अपने दान के प्रभाव से लगे बतलाता है, यश और कीर्त्ति फैलाने की चाह अर्थात् पाने की इच्छा ने इस पेड़ में लगाए हैं।" निदान ज्योंही सत्य ने उस पेड़ के छूने को हाथ बढ़ाया राजा सपने में क्या देखता है कि वह सारे फल जैसे आसमान से ओले गिरते हैं एक आन की आन में धरती पर गिर पड़े। धरती सारी लाल हो गई, पेड़ों पर सिवाय पत्तों के और कुछ न रहा। सत्य ने कहा कि "राजा ! जैसे कोई चीज़ को मोम से चिपकाता है उसी तरह तू ने अपने भुलाने की प्रशंसा की इच्छा से ये फल उस पेड़ पर लगा लिए थे सत्य के तेज से यह मोम गल गया, पेड़ ठूँठ का ठूँठ रह गया। जो तूने दिया और किया सब दुनिया के

दिखलाने और मनुष्यों से प्रशंसा पाने के लिये। केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से तो कुछ भी नहीं दिया। यदि कुछ दिया हो या किया हो तो तू ही क्यों नहीं बतलाता ? मूर्ख ! इसी के भरोसे पर तू फूला हुआ स्वर्ग में जाने को तैयार हुआ था ?" भोज ने एक ठण्डी साँस ली। उसने तो औरों को भूला समझा था, पर वह सब से अधिक भूला हुआ निकला ! सत्य ने उस पेड़ की तरफ़ हाथ बढ़ाया जो सोने की तरह चमकते हुए पीले पीले फलों से लदा हुआ था। सत्य बोला, "राजा, ये फल तू ने अपने भुलाने को, स्वर्ग की स्वार्थ सिद्धि करने की इच्छा से लगा लिये थे। कहने वाले ने ठीक कहा है कि मनुष्य मनुष्य के कर्मों से उसके मन की भावना का विचार करता है और ईश्वर मनुष्य के मन की भावना के अनुसार उसके कर्मों का हिसाब लेता है। तू अच्छी तरह जानता है कि यही न्याय तेरे राज्य की जड़ है। जो न्याय न करे तो फिर यह राज्य तेरे हाथ में क्यों कर रह सके ? जिस राज्य में न्याय नहीं वह तो बेनींव का घर है, बुढ़िया के दाँन्तों की तरह हिलता है, अब गिरा तब गिरा। मूर्ख, तू ही क्यों नहीं बतलाता कि यह तेरा न्याय स्वार्थसिद्धि करने और सांसारिक सुख पाने की इच्छा से है अथवा ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से ?"

भोज की पेशानी पर पसीना हो आया, उसने आँखें नीची कर लीं, उससे जबाव कुछ न बन पड़ा। तीसरे पेड़ की बारी आई। सत्य का हाथ लगते ही उसकी भी वही हालत हुई। राजा अत्यन्त लज्जित हुआ। सत्य ने कहा—"मूर्ख ! यह तेरे तप के फल

कदापि नहीं, इनको तो इस पेड़ पर तेरे अहङ्कार ने लगा रक्खा था। वह कौनसा व्रत व तीर्थयात्रा है जो तूने निरहङ्कार केवल ईश्वर की भक्ति और जीवों की दया से की हो? तूने यह तप केवल इसी वास्ते किया कि जिससे तू अपने तईं औरों से अच्छा और बढ़ कर विचारे। ऐसे ही तप पर गोबर-गनेस, तू स्वर्ग मिलने की उम्मेद रखता है?

पर यह तो बतला कि मन्दिर की उन मुंडेरों पर वे पक्षी से क्या दिखलाई देते हैं? कैसे सुन्दर और प्यारे मालूम होते हैं! पर तो उनके पन्ने के हैं और गरदनें फीरोज़ की, परन्तु पूँछ में तो सारे प्रकार के जवाहिर जड़ दिये हैं।" राजा के जी में घमंड की चिड़िया ने फिर फुरी फुरी ली, मानों बुझते हुए दीये की तरह जगमगा उठा, जल्दी से उत्तर दिया कि हे "सत्य, यह जो कुछ तू मन्दिर की मुंडेरों पर देखता है मेरे सन्ध्या-बन्दन का प्रभाव है। मैंने जो रातों जाग जाग कर और माथा रगड़ते २ इस मन्दिर की देहलीज को घिसाकर ईश्वर की स्तुति वन्दना और विनती प्रार्थना की वही अब चिड़ियों की तरह पंखे फैलाकर आकाश को जाती हैं, मानों ईश्वर के सामने पहुँच कर अब मुझे स्वर्ग का रास्ता बताती हैं।" सत्य ने कहा कि "राजा, दीनबन्धु, करुणासागर, श्रीजगन्नाथ जगदीश्वर अपने भक्तों की बिनती सदा सुनता रहता है, और जो मनुष्य शुद्ध हृदय और निष्कपट होकर नम्रता और श्रद्धा के साथ अपने दुष्कर्मों का पश्चात्ताप अथवा उनकी क्षमा होने का टुक भी निवेदन करता है, वह उसका निवेदन तत्काल सूर्य चाँद का

बेध कर पार हो जाता है। फिर क्या कारण कि यह सब अब तक मन्दिर की मुंडेर ही पर बैठे रहे? आ, चल देख तो सही, हम लोगों के पास जाने पर आकाश को उड़ जाते हैं या उसी जगह पर परकट कबूतरों की नाईं फड़फड़ाया करते हैं।" भोज डरा, लेकिन सत्य का साथ न छोड़ा। जब मुंडेर पर पहुंचा तो क्या देखता है कि वह सारे पक्षी जो दूर से ऐसे सुन्दर दिखलाई देते थे मरे हुए पड़े हैं। पंख नुचे खुचे और बहुतेरे सर्वथा सड़े हुए, यहाँ तक कि मारे दुर्गन्ध के राजा का सिर भिन्ना उठा। दो एक ने जिनमें कुछ दम अवशिष्ट था जो उड़ने का इरादा भी किया तो उनका पंख पारे की तरह भारी हो गया और उन्हें उसी ठौर दबा रखा। सत्य बोला "भोज, बस यही तेरे पुण्य कर्म्म हैं? इन्हीं स्तुति बन्दना और विनती प्रार्थना के भरोसे पर तू स्वर्ग में आया चाहता है? आकृति तो इनकी बहुत अच्छी है पर जान बिल्कुल नहीं। तूने जो कुछ किया केवल लोगों के दिखलाने को, जी से कुछ भी नहीं। जो तू एक बार भी जी से पुकारा होता कि—दीनबन्धु, दीनानाथ, दीनहितकारी, मुझ पापी महा अपराधी डूबते हुए को बचा और कृपादृष्टि कर—तो वह तेरी पुकार तीर की तरह तारों के पार पहुँची होती।" राजा ने सिर नीचा कर लिया उत्तर कुछ न बन आया।

सत्य ने कहा कि "भोज अब आ, फिर इस मन्दिर के अन्दर चलें और वहाँ तेरे मन के मन्दिर को जांचें। यद्यपि मनुष्य के मन के मन्दिर में ऐसे २ अंधेरे तहखाने और तलवरे पड़े हुए हैं कि उनको सिवाय सर्वदर्शी, घट २ अन्तर्यामी, सकल जगत्

स्वामी के और कोई भी नहीं देख अथवा जाँच सकता, तो भी तेरा परिश्रम व्यर्थ न जावेगा।"। राजा उस सत्य के पीछे खिंचा २ फिर मन्दिर के अंदर घुसा पर अब तो उसका हाल ही कुछ से कुछ हो गया। सचमुच सपने का खेल सा दिखलाई दिया। चांदी की सारी चमक जाती रही, सोने की दमक बिल्कुल उड़ गई, दोनों में लोहे की तरह मोर्चा लगा हुआ था, जहाँ जहां से मुलम्मा उड़ गया था भीतर का ईंट पत्थर कैसा बुरा दिखलाई देता था! जवाहिरों की जगह केवल काले २ दाग़ रह गये थे और संगमरमर की चट्टानों में हाथ २ भर गहरे गढ़े पड़ गये थे।

राजा यह देखकर भौचक सा रह गया, औसान जाते रहे, हक्का बक्का बन गया, धीमी आवाज़से पूछा कि "यह टिड्डीदल की तरह इतने दाग़ इस मन्दिर में कहां से आये? जिधर मैं निगाह उठाता हूँ सिवाय काले काले दाग़ो के और कुछ भी नहीं दिखलाई देता। ऐसा तो छिपी छीट को भी नहीं छापेगा और न शीतला से बिगड़ा किसी का चेहरा देख पड़ेगा।" सत्य बोला कि "राजा, ये दाग़ जो तुझे इस मन्दिर में दिखलाई देते हैं, वे दुर्वचन हैं जो दिन रात में सैंकड़ों बार तेरे मुख से निकले। याद तो कर तूने क्रोध में आकर कैसी कड़ी कढ़ी बातें लोगों को सुनाई हैं? क्या खेल में और क्या अपना अथवा दूसरे का चित प्रसन्न करने को, क्या रुपया बचाने अथवा अधिक लाभ पाने को, और क्या दूसरे का देश अपने हाथ में लाने अथवा किसी बराबरवाले से अपना मतलब निकालने और

दुश्मनों को नीचा दिखाने को, कितना झूठ बोला है। अपने दोष छिपाने और दूसरे की आंखों में अच्छा मालूम होने अथवा झूठी प्रशंसा पाने के लिये कैसी कैसी डींगें मारी हैं और किस किस प्रकार की अत्युक्तियां बघारी हैं! अपने को औरों से अच्छा और औरों को अपने से बुरा दिखलाने को कहां तक बातें बनाई हैं! सो तुझे अब कुछ भी याद न रहा सर्वथा एक बारगी भुल गया। पर वहां वह तेरे मुँह से निकलते ही वहीं में दर्ज हुआ। तू इन दाग़ों के गिनने में असमर्थ है, पर उस घटघटनिवासी, अनन्त, अविनाशी को एक एक बात जो तेरे मुँह से निकली है याद है और याद रहेगी। उसके निकट भूत और भविष्य दोनों वर्तमानसे हैं"। भोज ने सिर न उठाया पर दवी जबान से इतना मुँह से और निकाला कि "दाग़ तो दाग़ पर हाथ हाथ भर के गड़े क्योंकर पड़ गये? सोने चांदी में मोर्चा लग कर ये ईंट पत्थर कहां से दिखलाई देने लगे?" सत्य ने कहा कि "राजा, क्या तूने कभी किसी को कोई लगती हुई बात नहीं कही? अथवा बोली ठोली नहीं मारी? अरे नादान! यह बोली ठोली तो गोली से अधिक काम कर जाती है। तू तो इन गढ़ों ही को देख कर रोता है, पर तेरे ताने तो बहुतों की छातियों से पार हो गये। जब अहंकार का मोर्चा लगा तो फिर यह दिखलावे का मुलम्मा कब तक ठहर सकता है? स्वार्थ अश्रद्धा का ईंट पत्थर प्रगट हो आया।" राजा को इस अंतर में चिमगादड़ों ने बहुत तंग कर रक्खा था। मारे दुर्गन्ध के सिर फटा जाता था। भुनगे और पतंगों से सारा मकान भर गया था।

बीच २ में पंख वाले सांप और बिच्छू भी दिखलाई देते थे। राजा घबड़ा कर चिल्ला उठा कि "यह मैं किस आपत्ति में पड़ा! इन कमबख्तों को यहां किस ने आने दिया!" सत्य बोला "राजा, सिवाय तेरे इनको यहां और कौन आने देगा? तू ही तो इन सब को लाया है, यह सब तेरे मन की बुरी वासनाएँ हैं। तूने समझा था कि जैसे समुद्र में लहरें उठा और मिटा करती हैं, उसी तरह मनुष्य के मन में भी संकल्प की मौजें उठ कर मिट जाती हैं। पर रे मूढ़, याद रख कि आदमी के चित्त में ऐसा सोच विचार कोई नहीं आता जो जगत्कर्त्ता, प्राणदाता, परमेश्वर के सामने प्रत्यक्ष नहीं हो जाता। यह चिमगादड़ और भुनगे और साँप बिच्छू और कीड़े मकोड़े जो तुझे दिखलाई देते हैं वे सब काम, क्रोध, मोह, लोभ, मत्सर, अभिमान, मद, ईर्षा के संकल्प विकल्प हैं जो दिन रात तेरे अन्तःकरण में उठा किये और इन्हीं चिमगादड़ और भुनगे और सांप बिच्छू और कीड़े मकोड़ों की तरह तेरे हृदय के आकाश में उड़ते रहे। क्या कभी तेरे जी में किसी राजा की ओर कुछ द्वेष नहीं रहा, या उसके मुल्क माल पर लोभ नहीं आया, या अपनी बड़ाई का अभिमान नहीं हुआ?" राजा ने एक बड़ी लम्बी ठण्डी साँस ली और अत्यन्त निराश होके यह बात कही कि "इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो कह सके कि मेरा हृदय शुद्ध और मन में कुछ भी पाप नहीं। इस संसार में निष्पाप रहना बड़ा कठिन है। जो पुण्य करना चाहते हैं उन में भी पाप निकल

आता है। इस संसार में पाप से रहित कोई भी नहीं। ईश्वर के सामने पवित्र पुण्यात्मा कोई भी नहीं।" सारा मन्दिर बरन सारी धरती और आकाश गूंज उठा 'कोई भी नहीं, कोई भी नहीं।'

सत्य ने जो आँख उठाकर उस मन्दिर की एक भीत की ओर देखा तो वह उसी दम संगमरमर से काच बन गई। राजा ने कहा कि "अब टुक इस काच का भी तमाशा देख और जो कर्त्तव्य कर्मों के न करने से तुझे पाप लगे हैं उनका भी हिसाब ले"। राजा उस काच में क्या देखता है कि जिस प्रकार बरसात की बढ़ी हुई किसी नदी में जल के प्रवाह बह जाते हैं, उस प्रकार अनगिनत सूरतें एक ओर से निकलतीं और दूसरी ओर लीन होती चली जाती हैं! कभी तो राजा को वे सब भूखे और नंगे इस काच में दिखलाई देते जिन्हें राजा खाने पहिनने को दे सकता था, पर न देकर दान का रुपया उन्हीं हट्टे कट्टे मोटे मुष्टंडे खाते पीते हुओं को देता रहा, जो उसकी खुशामद करते थे, या किसी की सिफ़ारिश ले आते थे, या उस के कारदारों को घूंस देकर मिला लेते थे, सवारी के समय मांगते मांगते और कोलाहल मचाते मचाते उसे तंग कर डालते थे, या दर्बार में आकर उसे लज्जा के भंवर में गिरा देते थे, या झूठा छापा तिलक लगा कर उसे दम्भ के जाल में फंसा लेते थे, या जन्मपत्र में भले बुरे ग्रह बतला कर कुछ धमकी देते थे, या सुन्दर कवित्त और श्लोक पढ़ कर उसके चित्त को लुभाते थे। कभी वे दीन दुःखी दिखलाई देते

जिन पर राजा के कारदार जुल्म किया करते थे और उसने कुछ भी उसकी तहक़ीक़ात और उपाय न किया। कभी उन बीमारों को देखता जिनको नीरोग करा देना राजा के हाथ में था। कभी वे व्यथा के जले और विपत्ति के मारे दिखलाई देते, जिनका जी राजा के दो बात कहने से ठण्डा और सन्तुष्ट हो सकता था। कभी अपने लड़के लड़कियां को देखता जिन्हें वह पढ़ा लिखा कर अच्छी अच्छी बातें सिखा कर बड़े बड़े पापों से बचा सकता था। कभी उन गाँव और इलाके को देखता जिन में कूएं तालाब खुदवाने और किसानों को सहायता देने और उन्हें खेती बारी के नये २ प्रयोग बतलाने से हजारों गरीबों का भला कर सकता था। कभी उन टूटे हुए पुल और रास्तों को देखता जिन्हें ठीक करने से वह लाखों मुसाफिरों को आराम पहुंचा सकता था। राजा से अधिक देखा न जा सका। थोड़ी देर में घबरा कर हाथों से अपनी आँखों को ढांप लिया। वह अपने घमंड में उन सब कामों को तो सदा याद रखता था और उनकी चरचा किया करता जिन्हें वह अपनी समझ में पुण्य के निमित्त किये हुए समझे हुए था, पर उन कर्त्तव्य कामों का अभी टुक भी सोच न किया करता जिन्हें अपनी उन्मत्तता से अचेत होकर छोड़ दिया था। सत्य बोला "राजा, अभी से क्यों घबरा गया। आ इधर आ, इस दूसरे काच में मैं तुझे अब उन पापों को दिखलाता हूं जो तूने अपने जीवन में किये हैं"। राजा ने हाथ जोड़े और पुकारा "बस महाराज, बस कीजिये, जो कुछ देखा उसी में मैं मिट्टी हो गया, कुछ भी

बाक़ी न रहा अब आगे क्षमा कीजिये। पर यह तो बतलाइये कि आपने यहां आकर मेरे शर्बत में ज़हर घोला और पक्की पकाई खीर में सांप का विष उगला, और आपने मेरे आनन्द को इस मन्दिर में आके नाश में मिलाया जिसे मैंने सर्वशक्तिमान् भगवान् के अर्पण किया है। चाहे जैसा वह बुरा और अशुद्ध क्यों न हो पर मैंने तो उसी निमित्त बनाया है"। सत्य ने कहा "ठीक, पर यह तो बतला कि भगवान् इस मन्दिर में बैठा है ? यदि तूने भगवान् को इस मन्दिर में बिठाया होता तो फिर वह अशुद्ध क्यों रहता। तनिक आंख उठाकर उस मूर्त्ति को तो देख जिसे तू जन्म भर पूजता रहा है।" राजा ने जो आँख उठाई तो क्या देखता है कि वहां उस बड़ी ऊंची वेदी पर उसी की मूर्त्ति पत्थर की घड़ी हुई रक्खी है, और अभिमान की पगड़ी बांधे हुए है। सत्य ने कहा कि मूर्ख, तूने जो काम किये केवल अपनी प्रतिष्ठा के लिये किये। इसी प्रतिष्ठा के प्राप्त होने की सदा तेरी भावना रही है और इसी प्रतिष्ठा के लिये तूने अपनी आप पूजा की। रे मूर्ख ! सकल-जगत्-स्वामी, घट-घट अन्तर्यामी क्या ऐसे मनरूपी मन्दिरों में भी अपना सिंहासन बिछने देता है, जो अभिमान और प्रतिष्ठा प्राप्ति की इच्छा इत्यादि से भरा है ? ये तो उसकी बिजली पड़ने के योग्य हैं"। सत्य का इतना कहना था कि सारी पृथ्वी एक बारगी काँप उठी, मानों उसी दम टुकड़े २ हुआ चाहती थी। आकाश में ऐसा शब्द हुआ कि मानों प्रलयकाल का मेघ गरजा। भीत मन्दिर की चारों ओर से अर अरा कर गिर पड़ी, मानों उस पापी राजा को दबा ही लेना

चाहती थी और उस अहङ्कार की मूर्ति पर ऐसी एक बिजली गिरी कि वह धरती पर औंधे मुँह आ पड़ी। "त्राहि माँ, त्राहि माँ" कहके भोज जो चिल्लाया उसकी आंख खुल गई और सपना सपना हो गया।

इस अन्तर में रात बीत कर सवेरा हो गया था, आकाश में लाली दौड़ आई थी। चिड़ियाँ चहचहा रही थीं। एक ओर से शीतल मंद सुगन्ध हवा चली आती थी, दूसरी ओर बीन और मृदङ्ग की ध्वनि, बन्दीजन राजा का यश गाने लगे, हरकारे हर तरफ़ काम को दौड़े। कमल खिले, कुमुद कुम्हलाये, राजा पलंग से उठा, पर जी भारी, माथा थामे हुए, न हवा अच्छी लगती थी, न गाने बजाने की कुछ सुध बुध थी। उठते ही पहले यह आज्ञा दी कि इस नगर में जो अच्छे से अच्छे पण्डित हों शीघ्र उनको मेरे पास लाओ। मैंने एक सपना देखा है कि जिसके आगे अब वह सारा खटराग सपना मालूम होता। उस सपने के स्मरण ही से मेरे रोंगटे खड़े हुए जाते हैं।

राजा के मुख से आदेश निकलने की देर थी कि चोबदारों ने तीन पण्डितों को जो उस समय वसिष्ठ, याज्ञवल्क्य और बृहस्पति के समान प्रख्यात थे, बात की बात में राजा के सामने ला खड़ा किया। राजा का मुँह पीला पड़ गया, माथे पर पसीना हो आया। पूछा कि "वह कौनसा उपाय है जिससे यह पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पावे।" उनमें से एक बूढ़े पण्डित ने आशीर्वाद देकर निवेदन किया कि "धर्मराज, धर्म्मावतार यह भय तो आपके शत्रुओं को होना चाहिये। आपसे पवित्र पुण्यात्मा

के जी में ऐसा सन्देह क्यों उत्पन्न हुआ। आप अपने पुण्य के प्रभाव का कंचुक पहन के बेखटके परमेश्वर के सामने जाइये तब तो वह कहीं से न फटा कटा है और न किसी जगह से मैला कुचैला हुआ है।" राजा क्रोध करके बोला कि "बस, अधिक अपनी बाणी को परिश्रम न दीजिये और इसी क्षण अपने घर की राह लीजिये। क्या आप फिर उस पर्दे को डाला चाहते हैं जो सत्य ने मेरे सामने से हटाया, और बुद्धि की आँखों को बन्द किये चाहते हैं जिन्हें सत्य ने खोला ? उस पवित्र परमात्मा के सामने अन्याय कभी नहीं ठहर सकता। मेरे पुण्य का कंचुक उसके आगे निरा चीथड़ा है। यदि वह मेरे कामों पर दृष्टि डालेगा तो नष्ट होजाऊँगा, मेरा कहीं पता भी न लगेगा"। इतने में दूसरा पण्डित बोल उठा कि "महाराज, पारब्रह्म परमात्मा तो आनंदस्वरूप हैं। उसकी दया के सागर का कब किसी ने पार पाया। वह क्या हमारे इन छोटे छोटे कामों पर निगाह किया करता है। एक कृपादृष्टि से सारा बेड़ा पार लगा देता है"। राजा ने आँखे दिखलाके कहा कि "महाराज, आप भी अपने घर को सिधारिये। आपने ईश्वर को ऐसा अन्यायी ठहरा दिया कि वह किसी पापों का दण्ड ही नहीं देता। सब बाईस पंसेरी तोलता है, मानो हरभोगपुर का राज करता है। इसी संसार में क्यों नहीं देख लेते जो आम बोता है आम खाता है और जो बबूर लगाता है वह कांटे चुनता है। तो क्या इस लोक में जो जैसा करेगा, सर्वदर्शी घट २ अन्तर्यामी से उसका बदला वैसा ही न पावेगा ? सारी सृष्टि पुकारके कहती है और हमारा अन्तःकरण भी इस बात पर गवाही देता है कि

ईश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा जो जैसा करेगा वैसा ही उससे उसका बदला पावेगा।"

तब तीसरा पण्डित आगे बढ़ा और यों कहना आरम्भ किया "महाराजाधिराज, परमेश्वर के यहाँ से हम लोगों को वैसा बदला मिलेगा कि जैसा हम लोग काम करते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। आप बहुत यथार्थ कहते हैं, परमेश्वर अन्याय कभी नहीं करेगा पर यह इतने प्रायश्चित्त और होम और यज्ञ और जप तप तीर्थयात्रा किस लिये बनाये गये हैं? यह इसी लिये हैं कि जिस में परमेश्वर हम लोगों का अपराध क्षमा कर वैकुण्ठ में अपने पास रहने को ठौर देवे।" राजा ने कहा "देवता जी, कल तक तो मैं आपकी सब बात मान सकता था। लेकिन अब तो मुझे इन कामों में भी ऐसा कोई नहीं दिखलाई देता, जिसके करने से यह पापी मनुष्य पवित्र पुण्यात्मा हो जावे। कौन सा जप, तप, तीर्थयात्रा, होम, यज्ञ और प्रायश्चित है जिसके करने से हृदय शुद्ध हो और अभिमान न आजावे। आदमी को फुसला लेना तो सहज है पर उस घट २ के अन्तर्यामी को कोई क्योंकर फुसलावे? जब मनुष्य का मन ही पाप से भरा हुआ है तो फिर उससे पुण्य कर्म कोई कहाँ बन आवे? पहले आप उस स्वप्न को सुनिये जो मैंने रात को देखा है फिर पीछे वह उपाय बतलाइये जिससे पापी मनुष्य ईश्वर के कोप से छुटकारा पाता है"।

निदान, राजा ने जो कुछ रात को सपने में देखा था सब ज्यों का त्यों उस पण्डित को सुनाया। पण्डित जी तो सुनते ही अवाक़ हो गये। सिर झुका लिया। राजा ने निराश होकर चाहा कि

तुषानल में जल मरे पर एक परदेसी आदमी जो उन पण्डितों के साथ बिना बुलाये घुस आया था सोचता विचारता उठकर खड़ा हुआ और धीरे से यों निवेदन किया कि "महाराज, हम लोगों का कर्त्ता ऐसा दीनबन्धु, कृपासिन्धु है कि अपने मिलने की राह आपही बतला देता है। आप निराश न हूजिये पर उस राह को ढूँढ़िये। आप इन पण्डितों के कहने में न आइये पर उसी से उस राह पाने की सच्चे जी से सहायता माँगिये"। हे पाठक जनों, तुम भी भोज की नाईं उस राह को ढूँढ़ते हो और भगवान् से उसके मिलने की प्रार्थना करते हो? भगवान् तुम्हें शीघ्र ऐसी बुद्धि दे और अपनी राह पर चलावे, यही हमारा अन्तःकरण से अशीर्वाद है।

जिन ढूँढ़ा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।

रानी भवानी

रानी भवानी बङ्गाले के ज़िले राजशाही में छातिन गाँव में चौधरी आत्माराम की लड़की थी और नाठौर के ज़मींदार राजा रामजीवन राय के बेटे रामकान्त से ब्याही गई। जैसी वह सुन्दर थी वैसी ही सुलक्षणा भी थी। और धर्म और परोपकार में निष्ठा उसकी लड़कपन से रहती थी। दयाराम नाम राजा रामजीवन का पुराना खैरख्वाह नौकर था। राजा रामकान्त को ज़मींदारी के काम में ग़ाफ़िल देखकर वह एक दिन समझाने और नसीहत देने लगा। राजा रामकान्त ने इस बात पर ख़फ़ा होकर उसे अपने यहाँ से निकाल दिया। वह बड़ा चतुर और होशियार था। बङ्गाले के सूबेदार नवाब अलीवर्दीख़ाँ के दरबार में हाज़िर रहने लगा। एक दिन अर्ज़ की कि, जहाँपनाह! राजा रामकान्त ने बत्तीस लाख रुपया घर में जमा किया और दो लाख का सर-पेच मोल लिया है। पर आपका रुपया अदा नहीं करता, बाक़ी डालता चला आता है और सरकारी मालगुज़ारी को बातों में उड़ाना चाहता है! नवाब ने पूछा कि, तू बत्तीस लाख रुपये का उसके घर में निशान दे सकेगा। उसने कहा, बेशक। नवाब ने फिर पूछा कि राजा रामजीवन के कुटुम्ब में और कोई भी राज के लायक़ है? उसने कहा, उनका भतीजा देवी प्रसाद बड़ा ईमानदार ज़मींदारी के काम में होशियार है। नवाब ने उसी दम हुक्म दिया कि फ़ौज जावे और रामकान्त का घर-बार लूट लेवे और देवीप्रसाद उसकी जगह राजा होवे। मुसल्मानों की

अमलदारी में प्राय: ऐसा ही अंधेर मचा करता था। रामकान्त महलों में था। सुना कि नवाब की फ़ौज घर में घुस आई और लूट कर रही है। इज़्ज़त के खौफ से रानी भवानी को साथ ले पनाले की राह बाहर निकला। धन द्रव्य का ज़रा भी मोह न किया। रानी भवानी एक तो रानी, दूसरे गर्भवती। पावों काहे को कभी चली थी। ज्यों त्यों बैठती उठती रामकान्त के साथ गङ्गा के किनारे तक पहुँची। वहाँ से एक छोटी सी नाव पर बैठ कर दोनों मुर्शिदाबाद आये और जगतसेठ की शरण लेकर एक छोटी सी हवेली में रहने लगे। विपत की तकलीफ़ सहते सहते घबड़ा गये थे। एक दिन रामकान्त खिड़की में से दयाराम को पालकी पर जाते हुए देखकर बोला कि, दया भाई! अब इस विपत्ति में कब तक रक्खोगे? दयाराम, रामकान्त को देखते ही पालकी से उतरकर उसके पास चला आया और अपने मालिक की ऐसी दुर्दशा देख के आँखों में आँसू भर लाया। बोला कि पचास हज़ार रुपया होय तो तुम को तीन ही दिन में फिर राज दिलवा सकता हूँ। राजा ने कहा, मेरे पास इस समय रुपया कहाँ, रानी ने समझाया कि आप न घबड़ाइये और अपना सारा ज़ेवर उतार दिया। दयाराम ने उसे बेचकर जहाँ देवीप्रसाद रहता था, वहाँ से नवाब की ड्योढ़ी तक जितने बनिये और दुकानदार थे और जो जो नौकर-चाकर नवाब के आसपास और दरवाज़े पर हाज़िर रहा करते थे सब को पाँच से ले सौ तक रुपये बाँटे और कहा कि आप लोग जिस समय देवीप्रसाद दर्बार को जाय, उसे सुनाकर इतना कह देना कि "देखो यह वही

अभागा जाता है।" देवीप्रसाद यह सुनकर बड़ा दुखी हुआ और अपना सारा हाल नवाब से कहा। नवाब बोला कि जो तुझे सारी खिलकत अभागा कहती है तो तू ज़रूर अभागा है, मैं ऐसे अभागे को कभी राजा न बनाऊँगा और फिर दयारामसे पूछा कि रामजीवन राय के कुल में कौन दूसरा आदमी राज के लायक है? उसने कहा जहाँपनाह! उनका बेटा ही रामकान्त बड़ा ईमानदार और जमीदारी के काम में होशियार मौजूद है। निदान नवाब ने उसी दम रामकान्त को राजसी खिलअत बख्शी और देवीप्रसाद को दरबार से निकलवा दिया। तब से राजा रामकान्त दयाराम को बहुत मानता रहा और सोलह बरस राज्य करके परलोक को सिधारा। रानी भवानी के लड़का कोई न था—दो हुए थे, सो दोनों बालकपन में ही मर गये थे। सारा काम जमींदारी का आप देखती थी और दान और धर्ममें बड़े राजाओं को मात करती थी। एक लाख अस्सी हजार रुपया साल तो नक़द पण्डित और फ़कीरों को मुकर्रर था और प्रायः पांच लाख बीघे के लोगों को धरती माफ कर दी थी। घाट, धर्मसाला आदि के सिवाय, तीन सौ हवेली बनारस में मोल ली थीं कि जो लोग वहाँ काशीवास करने को आवें, बिना किराये उनमें रहा करें। बहुतेरे आदमी उसके देश के जो काशी में रहने को आते मकान के सिवाय जन्मभर परिवार समेत खाने पहनने को भी देती। पञ्चकोशी की सारी सड़क में थोड़ी-थोड़ी दूर पर धर्म्म के ढीहे बनवाकर और कुएँ खोदवाकर पेड़ लगवा दिये थे। कई जगह धर्म्मशाला बनवा के तालाब भी तैयार कर दिये थे। सदावर्त

जारी था। काशी में आठ मन भीगा चना और पचीस मन चावल नित भूखों को बाँटा जाता था और एक सौ आठ स्त्री-पुरुष इच्छा-भोजन करते थे। जब रानी भवानी काशी में आई तो कहते हैं सत्रह सौ नाव उसके साथ थीं। उसका रहना अक्सर मुर्शिदाबाद जिले में गङ्गा के तीर बड़नगर मेंहोता था और यह बात सोचकर कि सब जगह में सब समय मैं भूखे-नंगे उस तक नहीं पहुंच सकते और न वह उनको दान दे सकती थी—हुक्म था कि जब कोई भूखे-नंगे आवें तो दो रुपये तक पोद्दार, पाँच रुपये तक खज़ानची, दस रुपये तक मुत्सद्दी और सौ रुपये तक दीवान बिना पूछे दे दे। जब सौ रुपये से अधिक देना हो तो रानी से पूछे। जमींदारी भर में ब्राह्मण की कन्या का विवाह-ख़र्च रानी की सरकार से दिया जाता था। नवरात्र में दो हज़ार वस्त्र सधवा और कुमारियों को ँटता और उसके साथ एक-एक सोने की नथ भी दी जाती और पचास हज़ार रुपया पण्डितों को मिलता, रोगियों के देखने को आठ वैद्य नौकर थे—वे ज़मींदारी भर में गाँव-गाँव दवा लेकर घूमा करते। बीमारों की सेवा को उनके साथ नौकर भी रहा करते। रानी भवानी की दान-धर्म में कैसी निष्ठा थी इसी बात से मालूम हो जायगी। जब तक एक साल इलाकों की आमदनी आने में देर हुई तो आपने हुक्म दिया कि खत्तों में जो कुछ गल्ला है वेच डालो और जिस-जिस का जो-जो मैंने देने को कहा है तुरन्त देदो। कहते हैं कि वह गल्ला तीन लाख रुपये को बिका और खज़ाने में आने से पहले लोगों को बंट गया तो भी रा न पड़ा, तब अपने गहने बेचकर दिया। पर जिसे जो देने को

कहा था वह वचन न तोड़ा। वह नित चार घड़ी रात रहे उठती थी और ईश्वर का ध्यान और जप करती थी। भोर होने पर स्नान करके दोपहर तक ईश्वर का अर्चन-वन्दन करती और धर्मशास्त्र का श्रवण करती। फिर कुछ जलपान करके अपने हाथ से रसोई बनाती और उसमें से दश ब्राह्मणों को खिला के तब आप भोजन करती। फिर दिवानख़ाने में कुशासन पर बैठकर पान सुपारी खाती और जो कुछ कारदारों को आज्ञा देनी होती सो उन्हें लिखवा देती, तीसरे पहर को धर्म्मशास्त्र सुनती। दो घड़ी दिन रहे कारदार लोग कागज़ दस्तख़त कराने को लाते। रात को फिर चार घड़ी जप करती तब कुछ भोजन करके डेढ़ पहर रात तक राज-काज की सुध लेती और दर्बार करती। बत्तीस वर्ष की अवस्था में विधवा हुई थी, उन्नासी वर्ष की अवस्था में परलोक को सिधारी पर नियम उसका कभी नहीं टूटा।

राजा लक्ष्मणसिंह (सन् १८२६—१८९६)

राजा लक्ष्मणसिंह यदुवँशी क्षत्रिय थे। इनका जन्म आगरा में ९ अक्तूबर, सन् १८२६ को हुआ था।

बचपन से ही ये बड़े तीव्रबुद्धि थे, बारह साल की अवस्था में इन्हें संस्कृत और फारसी का अच्छा ज्ञान हो गया था। अंग्रेजी के ये अच्छे पण्डित थे।

पहलेपहल ये एक अंगरेज़ी दफ्तर में एक सौ रुपये मासिक पर नियुक्त हुए। अपनी प्रतिभा से उन्नति करते करते ये ८०० रु० मासिम की कलेक्टरी तक पहुँच गये। सन् १८५७ के गदर में इन्होंने अंगरेज़ों की बड़ी सहायता की थी। उसी के उपलक्ष्य में इन्हें इतना उच्च पद और फिर सन् १८७० के प्रथम दिल्ली दरबार में 'राजा' की उपाधि मिली थी।

हिन्दी से इनका बहुत अनुराग था। कलक्टरी जैसे उच्च पद पर रह कर भी हिन्दी की सेवा करते रहे। इन्हों ने अँगरेज़ी और फारसी की कतिपय अच्छी अच्छी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। ताजीरातहिन्द का अनुवाद 'दंडसँग्रह' इन्ही ने किया था। इसके अतिरिक्त कालीदास के मेघदूत, रघुवंश और शकुन्तला का हिन्दी में अनुवाद किया है। इनकी शकुन्तला की बहुत ख्याति हुई है। उससे इनका नाम हिन्दी के प्रसिद्ध लेखकों में लिया जाता है। शकुन्तला आज कल भी हिन्दी की कई उच्च परिक्षाओं में पाठ्यपुस्तक के रूप पढ़ाई जाती है। इनकी हिन्दीरचना की

एक बड़ी भारी विशेषता यह है कि इन्होंने कहीं पर भी उर्दू या फारसी का एक शब्द भी प्रयुक्त नहीं किया।

इनका देहान्त १४ जुलाई सन् १८९६ को हुआ।

शकुन्तला

(एक बालक सिंघ के बच्चे को घसीटता हुआ लाता है, और दो तपस्विनी उसे रोकती हुई आती हैं)

बालक—अरे सिंघ, तू अपना मुँह खोल, मैं तेरे दाँत गिनूँगा।

पहली तपस्विनी--हे अन्यायी, तू इन पशुओं को क्यों सताता है, हम तो इन्हें बाल-बच्चों के समान रखती हैं। हाय ! तेरा साहस बढ़ता ही जाता है। तेरा नाम ऋषियों ने सर्वदमन रक्खा है, सो ठीक ही है !

दुष्यंत—[आप-ही-आप] अहा ! क्या कारण है कि मेरा स्नेह इस बालक में ऐसा होता आता है, जैसा पुत्र में होता है। हो न हो, यह हेतु है कि मैं पुत्र-हीन हूँ।

दूसरी तपस्विनी—जो तू बच्चे को छोड़ न देगा, तो यह सिंघनी तुझपर दौड़ेगी।

बालक—[मुस्काकर] ठीक है, सिंघनी का मुझे ऐसा ही डर है ! [मुँह चिड़ाता है]

दुष्यंत—

दीखत बालक मोहि यह तेजस्वी बलवीर,
काठ काज जैसे अगिनि ठाड़ो है मतिधीर।

पहली तपस्विनी—हे प्यारे बालक, तू सिंघ के बच्चे को छोड़ दे, मैं तुझे और खिलौना दूँगी।

बालक—कहाँ है, ला, दे दे।

(हाथ पसारता है)

दुष्यंत—इसके तो लक्षण भी चक्रवर्तियों के-से हैं क्योंकि

मॉंग खिलौना लैन को जबहि पसारयो हाथ,
जालगुँथी-सी आंगुरी सब दीखीं इक साथ।
मनहुँ खिलायो कमल कछु प्रात अरुण ने आय,
नैंक न पखुरिन बीच में अँतर परत लखाय।

दूसरी तपस्विनी—हे सुव्रता, यह बातों से न मानेगा। जा, मेरी कुटी में एक मिट्टी का मोर ऋषिकुमार मारकंडेय के खेलने का रक्खा है, उसे ले आ।

पहली तपस्विनी—मैं अभी लिए आती हूँ।

[जाती है]

बालक—तब तक मैं इसी सिंघ के बच्चे से खेलूँगा।

[यह कहकर तपस्विनी की ओर हँसता है]

दुष्यंत—[आप-ही-आप] इसके खिलाने को मेरा जी कैसा ललचाता है।

हाँसी बिनहेत माहिं दीखत बतीसी कछू,
निकसी मनो है पाँति ओछी कलिकान की;
बोलन चहत बात टूटी-सी निकसि जात,
लागति अनूठी मीठी बानी तुतलान की।
गोदतें न प्यारी और भावे मन कोई ठाँव,
दौरि-दौरि बैठें छोड़ि भूमि अँगनान की।
धन्य-धन्य वे हैं नर मैले जो करत गात—
कनिया लगाई धूरि ऐसे सुवनान की।

दूसरी तपस्विनी—यह मेरी बात तो कान नहीं धरता। [इधर-

उधर देखकर] कोई ऋषिकुमार यहाँ है, [दुष्यंत को देखकर] हे महात्मा, तुम्हीं आओ, कृपा करके इस बली बालक के हाथ से सिंह के बच्चे को छुड़ाओ। यह इसे खेल में ऐसा पकड़ रहा है कि छुड़ाना कठिन है।

दुष्यन्त—अच्छा। [लड़के के पास जाकर और हँसकर]

आश्रम-वासिन की यह रीति, पशु-पालन में राखत प्रीति;
सो ऋषि-सुत दूषित तैं कीनी, उलटी वृत्ति यहाँ क्यों लीनी।
करत जन्म ही तें ये काजा, जो नहिं सोहत मुनिन-समाजा;
तैं यह कियो तपोधन ऐसो, कृष्ण सर्प-शिशु चन्दा जैसो।

दूसरी तपस्विनी—हे, बड़भागी यह ऋषिकुमार नहीं है।

दुष्यन्त—सत्य है, यह तो इसके आकार-सदृश काम ही कहे देते हैं परन्तु मैंने तपोवन में इसका वास देख ऋषि-पुत्र जाना था। [जैसी मन में लालसा है, लड़के का हाथ अपने हाथ में लेकर आप ही-आप]

ना जानूँ का बंश को अँकुर यहै कुमार;
मो तन ऐतौ सुख भयो जाहि छुअत इक बार।
वा बड़भागी के हिये कितो न होय उमँग;
उपज्यो जाके अँग तें ऐसो याको अँग।

तपस्विनी—[दोनों की ओर देखकर] बड़े अचंभे की बात है।

दुष्यन्त—तुमको क्या अचंभा हुआ ?

तपस्विनी—इसलिये हुआ कि इस बालक की और तुम्हारी उनहार बहुत मिलती है, और तुम्हें जाने बिना भी इसने तुम्हारा कहना मान लिया।

दुष्यन्त—[लड़के को खिलाता हुआ] हे तपस्विनी, जो यह ऋषि-पुत्र नहीं, तौ किसका वंश है ?

तपस्विनी—यह पुरुवंशी है।

दुष्यन्त—[आप-ही-आप] यह हमारे वंश का कैसे हुआ, इस भागवती ने मेरी उनहार का इसे क्यों कहा—हाँ, पुरुवंशियों में यह रीति तौ निश्चय है कि—

छितिपालन के कारने पहले लेत निवास ;
जाय भवन ऐसेन में जहँ सब भोग-विलास।
पाछें बन में बसत हैं लै तरवर की छाँह ;
इंद्री जीतन कौ नियम धरि एकहि मन माँह।

[प्रगट] परन्तु यह ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ मनुष्य अपने बल से आ सके।

दूसरी तपस्विनी—तुम सच कहते हो, इसकी मा मेनका नाम अप्सरा की बेटी है, उसी के प्रताप से इसका जन्म देव-पितर के इस तपोबन में हुआ है।

दुष्यन्त—[आप-ही-आप] यह दूसरी बात आशा उपजाने वाली हुई। [प्रगट] भला, इसकी मा किस राजर्षि की पत्नी है ?

दूसरी तपस्विनी—जिसने अपनी विवाहिता स्त्री को बिना अपराध छोड़ दिया, उसका नाम कौन लेगा ?

दुष्यन्त—[आप-ही-आप] यह कथा तौ मुझी पर लगती है। अब इस बालक की माँ का नाम पूछूँ। [सोचकर] परन्तु पराई स्त्री का वृत्तांत पूछना अन्याय है।

[तपस्विनी मिट्टी का मोर लिए हुए आती है]

तपस्विनी—हे सर्वदमन ! यह शकुन्तलावण्य देख ।

बालक—[बड़े चाव से देखकर] कहाँ है शकुन्तला मेरी मा ?

दोनों तपस्विनी—यह मा के प्यारे नाम से धोखा खा गया ।

दूसरी तपस्विनी—मुन्ना, मैंने तो यह कहा था कि इस मिट्टी के सुन्दर मोर को देख ।

दुष्यन्त—[आप-ही-आप] क्या इसकी मा का नाम शकुन्तला है । हुआ करे, एक नाम के अनेक मनुष्य होते हैं । कहीं मुझे दुःख देने को नाम का उच्चारण ही मृग-तृष्णा के समान न बना हो ।

बालक—मुझे यह मोर बहुत अच्छा लगता है ।

[खिलौने को लेता है]

पहली तपस्विनी—[घबराकर] हाय-हाय ! इसकी बाँह से रक्षा-बंधन कहाँ गया ।

दुष्यन्त—घबराओ मत, जब यह नाहर के बच्चे से खेल रहा था, इसके हाथ से गंडा गिर गया, सो यह पड़ा है ।

[गंडा उठाने को झुकता है]

दोनों तपस्विनी—मत उठाओ, मत उठाओ । हाय ! इसने क्यों उठा लिया ।

[दोनों अचंभे से छाती पर हाथ रखकर एक दूसरी की ओर देखती हैं]

दुष्यन्त—तुमने मुझे इसके उठाने से किस लिए बरजा ?

दूसरी तपस्विनी—सुनो महाराज, इस गंडे का नाम अपराजित है, जिस समय इस बालक का जात-कर्म हुआ, महात्मा मरीचि के पुत्र कश्यप ने यह दिया था । इसमें यह गुन है कि कदाचित् धरती

पर गिर पड़े, तो इस बालक को और इसके मा-बाप को छोड़ और कोई न उठा सके।

दुष्यन्त—और जो कोई उठा ले तो ?

पहली तपस्विनी—तौ वह तुरन्त साँप बनकर उसे डसता है।

दुष्यन्त—तुमने ऐसा होते कभी देखा है ?

दोनों तपस्विनी—अनेक बार।

दुष्यन्त—[प्रसन्न होकर आप-ही-आप] अब मेरा मनोरथ पूरा हुआ। मैं क्यों आनन्द न मनाऊँ।

[लड़के को गोद में लेता है]

दूसरी तपस्विनी—आओ सुव्रता, यह सुख का समाचार चल के शकुन्तला को सुनावें, वह बहुत दिन से वियोग के कठिन नेम कर रही है।

[दोनों जाती हैं]

बालक—मुझे छोड़ो, मैं अपनी मा के पास जाऊँगा।

दुष्यंत—हे पुत्र, तू मेरे संग चलकर अपनी मा को सुख दीजो।

बालक—मेरा पिता तो दुष्यन्त है, तुम नहीं हो।

दुष्यंत--[मुसकाकर] यह विवाद भी मुझे प्रतीत कराता है।

[एक बेनी धारण किए शकुन्तला आती है]

शकुन्तला—[आप-ही-आप] मैं सुन तो चुकी हूँ कि सर्वदमन के गंडे ने औसर पाकर भी रूप न पलटा, परन्तु अपने भाग्य का मुझे कुछ भरोसा नहीं। हाँ इतनी आशा है कि कदाचित सानुमती का कहना सच्चा हो गया हो।

दुष्यन्त--[शकुन्तला को देखकर] अहा ! यही प्यारी शकुन्तला है ?

नियम कर बीते दिवस दूबर अङ्ग लखात ;
सीस एक बेनी धरे बसन धूसरे गात।
दीरघ बिरहाव्रत सती साधति सुख बिसराय ;
मो निरदय के कारने अपने शील सुभाय।

शकुन्तला—[पछतावे में रूप बिगड़े हुए राजा को देखकर] यह तौ मेरा पति-सा नहीं है, और जो नहीं है, तौ कौन है, जिसने रक्षाबन्धन पहने हुए मेरे बालक को अङ्ग लगाके दूषित किया?

बालक—[दौड़ता हुआ माता के पास जाकर] माता, यह पुरुष कौन है, जिसने पुत्र कहकर मुझे गोद में ले लिया।

दुष्यंत—हे प्यारी, मैंने तेरे साथ निठुराई तौ बहुत की, परन्तु परिणाम अच्छा हुआ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि तैंने मुझे पहचान लिया।

शकुन्तला—[आप-ही-आप] अरे मन! तू धीरज धर, अब मुझे भरोसा हुआ कि विधाता ने ईर्षा छोड़ मुझ पर दया की है। [प्रकट] यह तौ निश्चय मेरा ही पति है।

दुष्यंत—हे प्यारी!

सुधि आई, सब भ्रम मिट्यो, सफल भए मम काज ;
धन्य भागि सुमुखी लखूँ सनमुख ठाड़ी आज।
अंधकार मिटि ग्रहण को दूर होत जब सोग ;
तुरत चन्द्र सों रोहिनी करति आय संयोग।

शकुन्तला—महाराज की—

[इतना कहकर गद्गद बानी हो आँसू गिराती है]

बालक—हे, मा यह पुरुष कौन है?

शकुन्तला—बेटा, अपने भाग्य से पूछो।

दुष्यंत—[शकुन्तला के पैरों में गिरता है]

मनतें प्यारी दूर अब डारि बिलग अपमान ;
वा छिन मेरे हिय रह्यो प्रबल कछू अज्ञान।
तामस-बस गति होति यह बहुतन की सुखबार ;
फेंकत जिमि अहि जानिके अंध दियो गलहार।

शकुन्तला—उठो प्राणपति, उठो ! उस दिनों मेरे पूर्वजन्म के पाप उदय हुए थे, जिन्होंने सुकर्मों का फल मेट मेरे दयावान पति को मुझ से निःस्नेह कर दिया। [राजा उठता है] अब यह कहो कि मुझ दुःखिया की सुध तुम्हें कैसे आई ?

दुष्यंत—जब संताप का काँटा मेरे कलेजे से निकल जायगा, तब सब कहूँगा।

शकुन्तला—[राजा की अँगुली में अँगूठी देखकर] क्या यह वही मुँदरी है।

दुष्यंत—हाँ, इसी के मिलते मुझे तेरी सुध आई।

शकुन्तला—इसने बुरा किया कि जब मैं अपने स्वामी को प्रतीत करती थी, यह दुर्लभ हो गई।

दुष्यंत—हे प्यारी, अब तू इसे फिर पहन। जैसे ऋतु के आने पर लता फिर फूल धारन करती है।

शकुन्तला—मुझे इसका विश्वास नहीं रहा, तुम्हीं पहने रहो।

[मातलि आता है]

मातलि—महाराज, धन्य है यह दिन कि आपने फिर धर्मपत्नी पाई, और पुत्र का मुख देखा।

दुष्यंत—हाँ, आज मेरा मनोरथ सफल हुआ। हे मातलि, तुम यह तौ कहो कि इस वृत्तांत को इन्द्र ने जान लिया था कि नहीं।

मातलि—[हँसकर] देवताओं से क्या छुपा है। अब आओ, महात्मा कश्यप आपको दर्शन देंगे।

दुष्यंत—प्यारी, तू पुत्र का हाथ थाम ले, मैं तुझे आगे लेकर महात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ।

शकुन्तला—तुम्हारे संग बड़ों के सन्मुख जाते मुझे सकुच लगती है।

दुष्यन्त—ऐसे शुभ अवसर पर ऐसा ही करना उचित है, आओ।

[सब घूमते हैं]

[आसन पर बैठे कश्यप और अदिति दीखते हैं]

कश्यप—[राजा की ओर देखकर] हे दक्षसुत !

है यह तेरे पुत्र कौ रन-अगमानी भूप;
नाम जासु दुष्यंत है कीरति जासु अनूप।
जाके धनुष-प्रताप तें लहि के अब विश्राम—
शोभा ही को रहि गयो इन्द्र-बज्र अभिराम।

अदिति—बड़ाई तौ इसके रूप ही से दीखती है।

मातलि—[दुष्यंत] हे राजा, ये देवताओं के माता-पिता आपकी ओर प्यार की दृष्टि से ऐसे देख रहे हैं, जैसे कोई अपने पुत्र को देखता है। आओ, इनके निकट चलो।

दुष्यंत—हे मातलि ! क्या कश्यप और अदिति यही हैं ?

इनहि दुहुन को ऋषि-मुनि धावें, द्वादस रवि के जनक बतावें;

हैं मरीचिसुत दक्षसुता के, नाती अरु नातिन ब्रह्मा के।
सुर-नायक इनहीं ने जायो, जो तिरलोकीनाथ कहायो ;
विधि ते परे पुरुष जो कोऊ, इनकी कोख अवतर्यो सोऊ।

मातलि—हाँ, ये ही हैं।

दुष्यंत—[प्रणाम करके] हे महात्माओ ! तुम्हारे पुत्र का आज्ञाकारी दुष्यंत प्रणाम करता है।

कश्यप—बेटा, तू चिरंजीव होकर पृथ्वी-पालन करे।

अदिति—बेटा, तू रण में अजित हो।

शकुं०—मैं भी आपके चरणों में बालक-समेत बंदना करती हूँ।

कश्यप—हे पुत्री !

भारत तेरौ इन्द्र सम सुत जयंत उपमान ;
और कहा बर देहुँ तुहि तू हो सची-समान।

अदिति—हे पुत्री, तू सदा पति की प्यारी हो और यह बालक दीर्घायु होकर दोनों कुल का दीपक हो। आओ, बैठो।

[सब प्रजापति के सामने बैठते हैं]

कश्यप—[एक एक की ओर देखकर दुष्यंत से]

नारि सती, सुत शुद्ध कुल, तुम राजन-सिर-मौर ;
श्रद्धा विधि अरु वित्त-सम मिले धन्य इक ठौर।

दुष्यंत—हे महर्षि, आपका अनुग्रह बड़ा अपूर्व है।

फूल लगे तब होत फल, घन आवे तब मेह ;
कारण कारज गति यही तामे नहिं संदेह।
पै अद्भुत तुम्हरी कृपा देखी मैंने काज ;
बर तुमने पाछे दियो पहले पुजयो काज।

मातलि—प्रजापतियों की कृपा का यही प्रभाव है।

दुष्यंत—हे भगवन्, आपकी इस दासी का विवाह मेरे साथ गांधर्व रीति से हुआ था, फिर कुछ काल बीते मायके के लोग इसे मेरे पास लाए। उस समय मेरी ऐसी सुध भूली कि इसे पहचान न सका, और इसका त्याग करके मैं आपके सगोत्री कन्व का अपराधी बना। पीछे अंगूठी देखकर मुझे सुध आई कि कन्व की बेटी से मेरा ब्याह हुआ था, यह वृत्तांत अचरज-सा दीखता है।

लखि सनमुख हाथी जिमि कोई कहे कि यह हाथी नहिं होई,
निकसि जाय तब शंका लावे, हाँ कबहूँ-कबहूँ ना गावे।
खोज देखि फिर हाथी जाने निश्चय भूल आपनी माने,
याही विधि गति मो मन केरी, उलटि-पलटि लीनी बहु फेरि।

कश्यप—हे बेटा, जो कुछ अपराध हुआ, उसका सोच अपने मन से दूर कर, क्योंकि तुझे उस समय भ्रम ने घेर लिया था, अब सुन।

दुष्यंत—मैं एकाग्र-चित्त होकर सुनता हूँ, आप कहें।

कश्यप—जब अप्सरा-तीर्थ पर जाकर मेनका ने शकुन्तला को व्याकुल देखा तो उसे लेकर अदिति के पास आई। मैंने उसी समय ध्यान-शक्ति से जान लिया कि तैंने अपनी पतिव्रता को केवल दुर्वासा के शाप-वश छोड़ा है, और इस शाप की अवधि मुंदरी के दर्शन तक रहेगी।

दुष्यंत—[आ-ही-आप] तो मैं धर्मपत्नी परित्याग के अपवाद से बच गया!

शकुं०—[आप-ही-आप] धन्य है कि स्वामी ने मुझे जान बूझ-कर नही त्यागा। परन्तु मुझे सुध नहीं है कि शाप कब हुआ, अथवा उस समय पतिवियोग के सोच में बेसुध हूँगी, क्योंकि मेरी सखियों ने मुझे जता दिया था कि अपने भरता को अंगूठी दिखा देना।

कश्यप—हे पुत्री, अब तू कृतार्थ हुई अपने पति का अपराध मत समझ।

निठुर भयो पति भूलि सुधि तू त्यागी बश शाप,
दई तोहि अब भ्रम मिटें सब बिधि प्रभुता आप।
छाया परति न मुकर में मैल कछू जो होई,
पै दीखत है सहज ही जब डार्यों वह धोई।

दुष्यंत—महात्मा, यह मेरे वंश की प्रतिष्ठा है।

[बालक का हाथ पकड़ता है]

कश्यप—यह भी जान लो कि यह बालक चक्रवर्ती होगा।

सुखगामी रथ पै चढ़्यो उतरि महोदधि पार,
जीतेगो यह बीर नर तीन दीप अरु चार।
किए पशू बस सब यहाँ सर्वदमन भौ नाम,
प्रजा भरण कर होयगो फेरि भरत अभिराम।

दुष्यंत—जिसके आपने संस्कार किये हैं उसमें हमको किस किस बड़ाई की आशा नहीं।

अदिति—हे भगवन, शकुन्तला के मनोरथ सिद्ध हुए इस लिए इसके पिता को भी यह वृत्तांत सुनाना चाहिये, और इसकी माता मेनका तो मेरे ही पास है वह सब जानती है।

शकुंतला—[आप-ही-आप] इस भगवती ने तौ मेरे ही मन की कही।

कश्यप—अपने तप के बल से कन्व मुनि सब वृत्तान्त जानते होंगे।

दुष्यंत—इसी से तो मुनि ने मुझ पर क्रोध न किया।

कश्यप—तौ भी हमें उचित है कि कन्व को यह मंगल-समाचार सुनावें। कोई है रे यहाँ?

चेला—महात्मा, क्या आज्ञा है?

कश्यप—हे गालव, तू अभी आकाश मार्ग से होकर कन्व के पास जा, और मेरी ओर से यह मंगल-समाचार सुना दे कि दुर्वासा का शाप मिट जाने पर आज दुष्यंत ने पुत्रवती शकुंतला पहचान कर अंगीकार कर ली।

चेला—जो आज्ञा। [जाता है]

कश्यप—अब पुत्र तुम भी स्त्री-बालक-समेत इन्द्र के रथ पर चढ़ आनन्द से अपनी राजधानी को सिधारो।

दुष्यंत—जो आज्ञा।

कश्यप—और सुन लो—

इंद्र मेह मुकतौ बरसावे, यातें तो परजा सुख पावे;
करि-करि यज्ञ तुहू बहुतेरे, तुष्ट करे मन देवन केरे।
या विधि साज परस्पर काजू, सौ जुग करत रहो तुम राजू,
दुहू लोक-वासी सुख पावें, तुम दोहुन के मिलि जस गावें!

दुष्यंत—हे महात्मा, जहाँ तक हो सकेगा, मैं इस सुख के निमित्त सब उपाय करूँगा।

कश्यप—कहो पुत्र, अब तुम्हें और क्या आशीर्वाद दूँ ?

दुष्यंत—जो आपने कृपा की है, इससे अधिक आशीर्वाद क्या होगा, और कदाचित् आप पूछते ही हैं, तो भरत का वचन पूरा होने दीजिए ।

प्रजा काजें राजा नित सुकृत पै उद्यत रहैं,
बड़े वेदज्ञानी हित-सहित पूजें सुरसुती ।
उमास्वामी शंभु जगतपति नीललोहित प्रभु—
छुटावें मोहू कों विपति अति आवागवन सों ।

कश्यप—तथास्तु ।

[सब बाहर जाते हैं]

स्वामी दयानन्द (सन् १८२४–१८८३)

स्वामी जी का जन्म सन् १८२४ में गुजरात देश के मोरवी नाम नगर में हुआ। आपका जन्मनाम मूलशंकर था। आपके पिता पं० अम्बाशंकर एक औदीच्य ब्राह्मण और जागीरदार थे।

आप की अवस्था जब १४ बरस की थी तो आपने पिता की आज्ञा से शिवरात्रि व्रत रक्खा। शिवपूजन के बाद रात को एक चूहे को शिवलिङ्ग पर चढ़ाई हुई मिठाई आदि को खाते देख आप को मूर्तिपूजा से घृणा सी आई और साथ ही सच्चे मार्ग की खोज की लगन हो गई।

बीस वर्ष की अवस्था में आप घर छोड़ निकल पड़े और योग्य गुरु की खोज करने लगे। अन्त में मथुरा में स्वामी विरजानन्द को अपना गुरु मान उनसे विद्याभ्यास करने लगे।

स्वामी विरजानन्द से वेदादि शास्त्र पढ़ कर अपने ध्येय का प्रचार करने को आप भारत के प्रान्त प्रान्त में घूमे और आर्य-समाजों का स्थापन किया। आप संस्कृत के अगाध पंडित थे। आपकी मातृभाषा गुजराती थी तो भी आपने अपने सब ग्रन्थ हिन्दी में ही लिखे। आप हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहते थे।

आपने सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि, वेदादिभाष्यभूमिका आदि अनेकों ग्रन्थ हिंदी में ही लिखे हैं।

आपका देहान्त सन् १८८३ में अजमेर में हुआ।

राजधर्म

जो दण्ड है वही पुरुष, राजा, वही न्याय का प्रचारकर्त्ता और सब का शासनकक्कर्त्ता, वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू अर्थात् ज़ामिन है। वही प्रजा का शासनकर्त्ता सब प्रजा का रक्षक सोते हुए प्रजास्थ मनुष्यों में जागता है इसीलिये बुद्धिमान लोग दण्ड ही को धर्म कहते हैं। जो दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है और जो विना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से राजा का विनाश कर देता है। बिना दण्ड के सब वर्ण दूषित और सब मर्यादा छिन्न भिन्न हो जायें। द०ड के यथावत् न होने से सब लोगों का प्रकोप हो जावे। जहां कृष्णवर्ण रक्तनेत्र भयंकर पुरुष के पापों का नाश करनेहारा दण्ड विचरता है वहाँ प्रजा मोह को प्राप्त न होके आनन्दित होती है परन्तु जो दण्ड का चलाने वाला पक्षपात रहित विद्वान् हो तो। जो उस दण्ड का चलाने वाला सत्यवादी विचार के करने हारा बुद्धिमान् धर्म अर्थ और काम की सिद्धि करने में पण्डित राजा है उसी को उस दण्ड का चलाने हारा विद्वान् लोग कहते हैं। जो दण्ड को अच्छे प्रकार राजा चलाता है वह धर्म अर्थ और काम की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय में लम्पट, टेढ़ा, ईर्ष्या करनेहारा क्षुद्र नीचबुद्धि न्यायाधीश राजा होता है, यह दण्ड से ही मारा जाता है। जब दण्ड बड़ा तेजोमय है उसको अविद्वान् अधर्मात्मा धारण नहीं कर सकता तब वह दण्ड धर्म

से रहित कुटुम्बसहित राजा ही का नाश कर देता है। क्योंकि जो आप्त पुरुषों के सहाय, विद्या, सुशिक्षा से रहित, विषयों में आसक्त मूढ़ है वह न्याय से दण्ड को चलाने में समर्थ कभी नहीं हो सकता। और जो पवित्र आत्मा सत्याचार और सत्पुरुषों का संगी यथावत् नीति शास्त्र के अनुकूल चलने हारा श्रेष्ठ पुरुषों के सहाय से युक्त बुद्धिमान् है वही न्याय रूपी दण्ड के चलाने में समर्थ होता है।

सब सेना और सेनापतियों के ऊपर राज्याधिकार, दण्ड देने की व्यवस्था के सब कार्यों का आधिपत्य और सब के ऊपर वर्त्तमान सर्वाधीश राज्याधिकार इन चारों अधिकारों में सम्पूर्ण वेद शास्त्रों में प्रवीण पूर्ण विद्या वाले धर्मात्मा जितेन्द्रिय सुशील जनों को स्थापित करना चाहिए अर्थात् मुख्य सेनापति, मुख्य राज्याधिकारी, मुख्य न्यायाधीश, प्रधान और राजा ये चार सब विद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें। न्यून से न्यून दश विद्वानों अथवा बहुत न्यून हों तो तीन विद्वानों की सभा जैसी व्यवस्था करे उस धर्म अर्थात् व्यवस्था का उल्लंघन कोई भी न करे। इस सभा में चारों वेद, न्यायशास्त्र, निरुक्त, धर्मशास्त्र आदि के वेत्ता विद्वान सभासद हों परन्तु वे ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों तब वह सभा [हो] कि जिसमें दश विद्वानों से न्यून न होने चाहियें। और जिस सभा में ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद के जानने वाले तीन सभासद् हो के व्यवस्था करें उस सभा की की हुई व्यवस्था को भी कोई उल्लंघन न करे। यदि एक अकेला सब वेदों का जानने हारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की

व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है क्योंकि अज्ञानियों के सहस्रों लाखों क्रोड़ों मिल के जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये। जो ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि व्रत वेदविद्या वा विचार से रहित जन्ममात्र से शूद्रवत् वर्त्तमान हैं उन सहस्रों मनुष्यों के मिलने से भी सभा नहीं कहाती। जो अविद्यायुक्त मूर्ख वेदों क न जानने वाले मनुष्य जिस धर्म को कहें उसको कभी न मानना चाहिये क्यों कि जो मूर्खों के कहे हुए धर्म के अनुसार चलते हैं उनके पीछे सैंकड़ों प्रकार के पाप लग जाते हैं। इस लिये तीनों अर्थात् विद्यासभा धर्मसभा और राजसभाओं में मूर्खों को कभी भरती न करे किन्तु सदा विद्वान् और धार्मिक पुरुषों को स्थापन करे।

ऐसे लोग राजा और राजसभा के सभासद् तब हो सकते हैं कि जब वे चारों वेदों की कर्मोपासना ज्ञान क्रियाओं के जाननेवालों से तीनों विद्या सनातन दण्डनीति न्यायविद्या आत्मविद्या अर्थात् परमात्मा के गुण कर्म स्वभावरूप को यथावत् जाननेरूप ब्रह्मविद्या और लोक से वार्ताओं का आरम्भ (कहना और पूछना) सीखकर सभासद् वा सभापति होसकें। सब सभासद् और सभापति इन्द्रियों को जीतने अर्थात् अपने वश में रख के सदा धर्म में वर्त्तें और अधर्म से हटे हटाए रहें इसलिए रात दिन नियत समय में योगाभ्यास भी करते रहे क्योंकि जो जितेन्द्रिय कि अपनी इन्द्रियों (जो मन, प्राण और शरीर प्रजा है इस) को जीते बिना बाहर की प्रजा को अपने वश में स्थापन करने को समर्थ कभी नहीं हो सकता। दृढ़ोत्साही होकर काम से दश और क्रोध से आठ

दुष्ट व्यसन कि जिनमें फँसा हुआ मनुष्य कठिनता से निकल सके उनको प्रयत्न से छोड़ और छुड़ा देवे। क्योंकि जो राजा काम से उत्पन्न हुए दश दुष्ट व्यसनों में फँसता है वह अर्थ अर्थात् राज्य धनादि और धर्म से रहित हो जाता है और जो क्रोध से उत्पन्न हुए आठ बुरे व्यसनों में फँसता है वह शरीर से भी रहित हो जाता है। काम से उत्पन्न हुए व्यसन गिनाते हैं देखो—मृगया खेलना, (अक्ष) अर्थात् चौपड़ खेलना, जुआ खेलनादि, दिन में सोना, काम कथा वा दूसरे की निन्दा किया करना, मादक द्रव्य अर्थात् मद्य, अफीम भाँग, गाँजा, चरस आदि का सेवन, गाना, बजाना, नाचना वा नाच कराना सुनना और देखना, वृथा इधर उधर घूमते रहना, ये दश कामोत्पन्न व्यसन हैं। क्रोध से उत्पन्न व्यसनों को गिनाते हैं—"पैशुन्यन्" अर्थात् चुगली करना, द्रोह रखना, ईर्ष्या अर्थात् दूसरे की बड़ाई वा उन्नति देखकर जला करना, "असूया" दोषों में गुण, गुणों में दोषारोपण करना, "अर्थदूषण" अर्थात् अधर्मयुक्त बुरे कामों में धनादि का व्यय करना, कठोर वचन बोलना और बिना अपराध कड़ा वचन वा विशेष दण्ड देना ये आठ दुर्गुण क्रोध से उत्पन्न होते हैं। जो सब विद्वान् लोग कामज और क्रोधजों का मूल जानते हैं कि जिससे ये सब दुर्गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े। काम के व्यसनों में बड़े दुर्गुण एक मद्यादि अर्थात् मदकारक द्रव्यों का सेवन, दूसरा पासों आदि से जुआ खेलना, तीसरा स्त्री व्यसन, चौथा मृगया खेलना ये चार महादुष्ट व्यसन हैं। और क्रोधजों में बिना अपराध दण्ड देना, कठोर वचन बोलना और धनादि का अन्याय में खर्च करना ये तीन क्रोध

से उत्पन्न हुए बड़े दुःखदायक दोष हैं। जो ये सात दुर्गुण दोनों कामज और क्रोधज दोषों में गिने हैं इनमें से पू॰ २ अर्थात् व्यर्थ व्यय से कठोर वचन, कठोर वचन से [अन्याय], अन्याय से दण्ड देना, इससे मृगया खेलना, इससे जुआ अर्थात् द्यूत करना और इससे भी मद्यादि सेवन करना बड़ा दुष्ट व्यसन है। इस में यह निश्चय है कि दुष्ट व्यसन में फँसनेसे मर जाना अच्छा है क्यों कि जो दुष्टाचारी पुरुष है वह अधिक जियेगा तो अधिक २ पाप करके नीच २ गति अर्थात् अधिक २ दुःख को प्राप्त होता जायगा और जो किसी व्यसन में नहीं फँसा वह मर भी जायगा तो भी सुख को प्राप्त होता जायगा इस लिये विशेष राजा और सब मनुष्यों को उचित है कि कभी मृगया और मद्यपानादि दुष्ट कामों में न फँसें और दुष्ट व्यसनों से पृथक् होकर धर्मयुक्त गुण कर्म स्वभावों में सदा वर्त के अच्छे २ काम किया करें। राजसभासद और मन्त्री कैसे होने चाहियें:—

स्वराज्य स्वदेश में उत्पन्न हुए, वेदादि शास्त्रों के जाननेवाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो और कुलीन, अच्छे प्रकार सुपरीक्षित, सात व आठ उत्तम धार्मिक चतुर "सचिवान" अर्थात् मन्त्री करे। क्यों कि विशेष सहाय के बिना जो सुगम कर्म है वह भी एक के करने में कठिन हो जाता है जब ऐसा है तो महान् राज्यकर्म्म एक से कैसे हो सकता है? इसलिए एक को राजा और एक की बुद्धि पर राज्य के कार्य्य का निर्भर रखना बहुत ही बुरा काम है। इससे सभापति को उचित है कि नित्यप्रति उन राज्यकर्मों में कुशल विद्वान् मन्त्रियों के साथ सामान्य करके किसी से (सन्धि) मित्रता किसी से (विग्रह) विरोध

[स्थान] स्थिति समय को देख के चुपचाप रहना अपने राज्य की रक्षा करके बैठे रहना (समुदयन्) जब अपना उदय अर्थात् वृद्धि हो तब दुष्ट शत्रु पर चढ़ाई करना (गुप्तिम्) मूल राजसेना कोश आदि की रक्षा (लब्धप्रशमनानि) जो २ देश प्राप्त हों उस उस में शान्तिस्थापन उपद्रवरहित करना इन छः गुणों का विचार नित्यप्रति किया करें। विचार करना कि उन सभासदों का पृथक् २ अपना २ विचार और अभिप्राय को सुनकर बहुपक्षानुसार कार्यों में जो कार्य अपना और अन्य का हितकारक हो वह करने लगना। अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान, निश्चितबुद्धि, पदार्थों के संग्रह करने में अतिचतुर, सुपरीक्षित मन्त्री करे। जितने मनुष्यों से राज्यकार्य्य सिद्ध हो सके उतने आलस्यरहित बलवान् और बड़े २ चतुर प्रधान पुरुषों को अधिकारी अर्थात् नौकर करे। इनके आधीन शूरवीर बलवान् कुलोत्पन्न पवित्र भृत्यों को बड़े २ कर्मों में और भीरु डरनेवालों को भीतर के कर्मों में नियुक्त करे। जो प्रशंसित कुल में उत्पन्न चतुर, पवित्र, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय और भविष्यत् में होने वाली बात को जानने-हारा सब शास्त्रों में विशारद चतुर है, उस दूत को भी रक्खे। वह ऐसा हो कि राज काम में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर, बहुत समय की बात को भी न भूलने वाला, देश और कालानुकूल वर्त्तमान का कर्त्ता, सुन्दर रूपयुक्त, निर्भय और बड़ा वक्ता हो वही राजा का दूत होने में प्रशस्त है। किस २ को क्या २ अधिकार देना योग्य है :—

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया अर्थात् जिससे अन्यायरूप दण्ड न होने पावे, राजा के आधीन कोश और राज-कार्य्य तथा सभा के आधीन सब कार्य्य और दूत के आधीन किसी से मेल व विरोध करना अधिकार देवे। दूत उसको कहते हैं जो फूट में मेल और मिले हुए दुष्टों को फोड तोड़ देवे। दूत वह कर्म करे जिससे शत्रुओं में फूट बड़े। वह सभापति और सब सभासद् वा दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जान के वैसा प्रयत्न करे कि जिससे अपने को पीड़ा न हो। इस लिये सुन्दर जङ्गल धन धान्ययुक्त देश में (धनुर्दुर्गम) धनुर्धारी पुरुषों से गहन (महीदुर्गम्) मट्टी से किया हुआ (अब्दुर्गम्) जल से घेरा हुआ (वार्त्तम) अर्थात् चारों ओर वन (नृदुर्गम्) चारों ओर सेना रहे (गिरिदुर्गम्) अर्थात् चारों ओर पहाड़ों के वीच में कोट वना के इसके मध्य में नगर बनावे। और नगर के चारों ओर (प्राकार) प्रकोट वनावे, क्यों कि उसमें स्थित हुआ एक वीर धनुर्धारी शस्त्रयुक्त पुरुष सौ के साथ और सौ दश हज़ार के साथ युद्ध कर सकते हैं इसलिए अवश्य दुर्ग का बनाना उचित है। वह दुर्ग शस्त्रास्त्र, धन, धान्य, वाहन, ब्राह्मण जो पढ़ाने उपदेश करनेहारे हों (शिल्पी) कारीगर, यन्त्र नाना प्रकार की कला, (यवसेन) चारा घास और जल आदि से सम्पन्न अर्थात् परिपूर्ण हो। उसके मध्य में जल वृक्ष पुष्पादिक सब प्रकार से रक्षित सब ऋतुओं में सुखकारक श्वेतवर्ण अपने लिये घर जिसमें सब राज-कार्य्य का निर्वाह हो वैसा बनवावे। इतना अर्थात् ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ के यहाँ तक राजकाम करके पश्चात् सौन्दर्य रूप गुणयुक्त

अपने हृदय को अतिप्रिय बड़े उत्तम कुल में उत्पन्न सुन्दर लक्षणयुक्त अपने क्षत्रियकुल की कन्या जो कि अपने सदृश विद्यादि गुण कर्म स्वभाव में हो उस एक ही स्त्री के साथ विवाह करे दूसरी सब स्त्रियों को अगम्य समझ कर दृष्टि से भी न देखे। पुरोहित और ऋत्विज् का स्वीकार इसलिये करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राजघर के कर्म किया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात दिन राजकार्य्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना।

सत्यधर्मपरीक्षा

जो पुरुष (अर्थ) सुवर्णादि रत्न और (काम) में नहीं फँसते हैं उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है जो धर्म के ज्ञान की इच्छा करें वे वेद द्वारा धर्म का निश्चय करें क्योंकि धर्माऽधर्म का निश्चय बिना वेद के ठीक २ नहीं होता।

इस प्रकार आचार्य अपने शिष्य को उपदेश करे और विशेष कर राजा इतर क्षत्रिय, वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। क्योंकि जो ब्राह्मण हैं वे ही केवल विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। क्योंकि ब्राह्मण तो केवल पढ़ने पढ़ाने और क्षत्रियादि से जीविका को प्राप्त होके जीवन धारण कर सकते हैं। जीविका के आधीन और क्षत्रियादि के आज्ञादाता और यथावत् परीक्षक दण्डदाता न होने से ब्राह्मणादि सब वर्ण पाखण्ड ही में फँस जाते हैं और जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और उन क्षत्रियादि विद्वानों के सामने पाखण्ड झूठा व्यवहार भी नहीं कर सकते और जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे जैसा अपने मन में आता है वैसा ही करते कराते हैं। इसलिये ब्राह्मण भी अपना कल्याण चाहें तो क्षत्रियादि को वेदादि सत्य शास्त्र का अभ्यास अधिक प्रयत्न से करावें। क्योंकि क्षत्रियादि ही विद्या, धर्म, राज्य और लक्ष्मी की वृद्धि करने हारे हैं, वे कभी भिक्षावृत्ति नहीं करते इसलिये वे विद्याव्यवहार में पक्षपाती भी नहीं हो सकते। जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है तब कोई

भी पाखण्डरूप अधर्मयुक्त मिथ्याव्यवहार को नहीं चला सकता इससे क्या सिद्ध हुआ कि क्षत्रियादि को नियम में चलाने वाले ब्राह्मण और संन्यासी तथा ब्राह्मण और संन्यासी को सुनियम में चलाने वाले क्षत्रियादि होते हैं। इसलिये सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिये। अब जो २ पढ़ना पढ़ाना हो वह वह अच्छे प्रकार परीक्षा करके होना योग्य है—परीक्षा पाँच प्रकार से होती हैं। एक-जो २ ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव और वेदों से अनुकूल हो वह २ सत्य और उससे विरुद्ध असत्य है। दूसरी जो २ सृष्टि क्रम से अनुकूल वह २ सत्य और जो २ सृष्टिक्रम से विरुद्ध है वह सब असत्य है। तीसरा—"आप्त" अर्थात् जो धार्मिक विद्वान्, सत्यवादी, निष्कपटियों का संग उपदेश के अनुकूल है वह २ ग्राह्य और जो २ विरुद्ध वह २ अग्राह्य है। चौथी—अपने आत्मा को पवित्रता विद्या के अनुकूल अर्थात् जैसा अपने को सुख प्रिय और दुःख अप्रिय है वैसे ही सर्वत्र समझ लेना कि मैं भी किसी को दुःख वा सुख दूँगा तो वह भी अप्रसन्न और प्रसन्न होगा। और पाँचवां—आठों प्रमाण अर्थात् प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव और अभाव

जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राणका शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध के साथ अव्यवहित अर्थात् आवरण रहित सम्बन्ध होता हैं, इन्द्रियों के साथ मन का और मन के साथ आत्माके संयोग से ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं परन्तु जो व्यपदेश अर्थात् संज्ञासंज्ञी के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है वह ज्ञान न हो। जैसा किसी

ने किसी से कहा कि "तू जल ले आ" वह लाके उसके पास धर के बोला कि "यह जल है" परन्तु वहाँ "जल" इन दो अक्षरों की संज्ञा लाने वा मंगाने वाला नहीं देख सकता है। किन्तु जिस पदार्थ का नाम जल है वही प्रत्यक्ष होता है और जो शब्द से ज्ञान उत्पन्न होता है वह शब्द प्रमाण का विषय है। "अव्यभिचारी" जैसे किसी ने रात्रि में खम्भे को देख के पुरुष का निश्चय कर लिया जब दिन में उसको देखा तो रात्रि का पुरुषज्ञान नष्ट होकर स्तम्भ-ज्ञान रहा ऐसे विनाशी ज्ञान का नाम व्याभिचारी है सो प्रत्यक्ष नहीं कहाता। 'व्यवसायात्मक" किसी ने दूर से नदी की बालू को देख के कहा कि "वहाँ वस्त्र सूख रहे हैं वहाँ जल है वा और कुछ है" "वह देवदत्त खड़ा है वा यज्ञदत्त" जब तक एक निश्चय न हो तबतक वह प्रत्यक्षज्ञान नहीं है किन्तु जो अव्यपदेश्य, अव्यभिचारी और निश्चयात्मक ज्ञान है उसी को प्रत्यक्ष कहते हैं।

जो प्रत्यक्षपूर्वक अर्थात् जिसका कोई एक देश वा सम्पूर्ण द्रव्य किसी स्थान वा काल में प्रत्यक्ष हुआ हो उसका दूर देश से सहचारी एक देश के प्रत्यक्ष होने से अदृष्ट अवयवी का ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। जैसे पुत्र को देख के पिता, पर्वतादि में धूम को देख के अग्नि, जगत् में सुख दुःख देख के पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। वह अनुमान तीन प्रकार का है। एक "पूर्ववत्" जैसे बादलों को देख के वर्षा, विवाह को देख के सन्तानोत्पत्ति, पढ़ते हुए विद्यार्थियों को देख के विद्या होने का निश्चय होता है, इत्यादि जहाँ २ कारण को देख के कार्य का ज्ञान हो वह "पूर्ववत्"। दूसरा "शेषवत्" अर्थात् जहाँ कार्य को देख के कारण का ज्ञान हो जैसे

नदी के प्रवाह की बढ़ती देख के ऊपर हुई वर्षा का,पुत्र को देख के पिता का,सृष्टि को देख के अनादि कारण का तथा कर्त्ता ईश्वर का और पाप पुण्य के आचरण देख के सुख दुःख का ज्ञान होता है इसी को "शेषवत्" कहते हैं। तीसरा "सामान्यतोदृष्ट" जो कोई किसी का कार्य कारण न हो परन्तु किसी प्रकार का साधर्म्य एक दूसरे के साथ हो जैसे कोई भी बिना चले दूसरे स्थान को नहीं जा सकता वैसे ही दूसरों का भी स्थानान्तर में जाना बिना गमन के कभी नहीं हो सकता। अनुमान शब्द का अर्थ यही है कि "अनु अर्थात् प्रत्यक्षस्य पश्चान्मीयते ज्ञायते येन तदनुमानम्" जो प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न जैसे धूम के प्रत्यक्ष देखे बिना अदृष्ट अग्नि का ज्ञान कभी नहीं हो सकता।

जो प्रसिद्ध प्रत्यक्ष साधर्म्य से साध्य अर्थात् सिद्ध करने योग्य ज्ञान का सिद्धि करने का साधन हो उसको उपमान कहते हैं। "उपमीयते येन तदुपमानम्" जैसे किसी ने किसी भृत्य से कहा कि "तू विष्णुमित्र को बुलाला" वह बोला कि "मैंने उसको कभी नहीं देखा" उसके स्वामी ने कहा कि "जैसा यह देवदत्त है वसा ही वह विष्णुमित्र है" वा जैसी यह गाय है वैसी ही गवय अर्थात् नीलगाय होती है, जब वह वहाँ गया और देवदत्त के सदृश उसको देख निश्चय कर लिया कि यही विष्णुमित्र है उसको ले आया। अथवा किसी जङ्गल में जिस पशु को गाय के तुल्य देखा उसको निश्चय कर लिया कि इसी का नाम गवय है।

जो आप्त अर्थात् पूर्ण विद्वान्, धर्मात्मा, परोपकारप्रिय,

सत्यवादी, पुरुषार्थी, जितेन्द्रिय पुरुष जैसा अपने आत्मा में जानता हो और जिससे सुख पाया हो उसी के कथन की इच्छा से प्रेरित सब मनुष्यों के कल्याणार्थ उपदेष्टा हो अर्थात् [जो] जितने पृथिवी से लेके परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होकर उपदेष्टा होता है। जो ऐसे पुरुष और पूर्ण आप्त परमेश्वर के उपदेश वेद हैं उन्हीं को शब्द प्रमाण जानो।

जो इतिह अर्थात् इस प्रकार का था उसने इस प्रकार किया अर्थात् किसी के जीवन चरित्र का नाम ऐतिह्य है।

जैसे किसी ने किसी से कहा कि "बद्दल के होने से वर्षा और कारण के होने से कार्य उत्पन्न होता है" इससे बिना कहे यह दूसरी बात सिद्ध होती है कि बिना बद्दल वर्षा और बिना कारण के कार्य कभी नहीं हो सकता।

कोई कहे कि "माता पिता के बिना सन्तानोत्पत्ति, किसी ने मृतक जिलाये, पहाड़ उठाये, समुद्र में पत्थर तराये, चन्द्रमा के टुकड़े किये, मनुष्य के सींग देखे और बन्ध्या के पुत्र और पुत्री का विवाह किया" इत्यादि सब असम्भव हैं क्यों कि ये सब बातें सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। और जो बात सृष्टिक्रम के अनुकूल हो वही सम्भव है।

जैसे किसी ने किसी से कहा कि "हाथी ले आ" वह वहाँ हाथी का अभाव देखकर जहाँ हाथी था वहां से ले आया। ये आठ प्रमाण हैं। इनमें से जो शब्द से ऐतिह्य और अनुमान में अर्थापत्ति सम्भव और अभाव की गणना करें तो चार प्रमाण रह जाते हैं।

इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से सत्यासत्य का निश्चय मनुष्य कर सकता है अन्यथा नहीं।

जब मनुष्य धर्म के यथायोग्य अनुष्ठान करने से पवित्र होकर "साधर्म्य" अर्थात् जो तुल्य धर्म हैं जैसा पृथिवी जड़ और जल भी जड़ "वैधर्म्य" अर्थात् पृथिवी कठोर और जल कोमल इसी प्रकार से द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय इन छः पदार्थों के तत्वज्ञान से अर्थात् स्वरूपज्ञान से "निःश्रेयसम्" मोक्ष को प्राप्त होता है।
